

प्राणनाथ
सम्प्रदाय
एवं
साहित्य

प्राणनाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य

[गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध]

डॉ० नरेश पंड्या, एम.ए., पी-एच डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गुरुकुल महिला महाविद्यालय,
पोरबन्दर (गुजरात)

पंचशील प्रकाशन, जयपुर-३

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कॉलोनी, चौडा गम्वा,
जयपुर-३०२००३

प्रकाशनवर्ष : नवम्बर, १९७३

मूल्य : पैंतीस रुपया

मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स
फिल्म कॉलोनी, जयपुर-३०२००३

स्वर्गीय पूज्य पिता बलवन्तराय
और
पूज्य माता सावित्री
तथा
धर्म प्रेरक आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज
को
सादर

—नरेश

प्राक्कथन

मध्यकालीन सन्तो एवम् भक्तों ने भारत की विभिन्न भाषासाहित्यों के सहारे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक नेताओं के रूप में अपूर्व योगदान दिया है। हिन्दी-साहित्य में उनमें से कई सन्तो या भक्तों की हिन्दीभाषी का अध्ययन हो चुका है, हो रहा है। लेकिन स्वामी प्राणनाथ की समग्र बानियों को लेकर हिन्दी-साहित्य में आलोचनात्मक एवम् सशोधनात्मक अध्ययन आज तक नहीं हुआ। इस शोध-प्रबन्ध से उस कमी को दूर करने का मेरा विनम्र प्रयत्न रहा है।

प्रेरणा

स्वामी प्राणनाथ की भाषी से मेरा परिचय भले ही वयस्क होने पर हुआ। लेकिन, जामनगर का प्रणामी मंदिर—खिजडा मंदिर और स्वामी प्राणनाथ मेरे लिए अपरिचित नहीं थे। सयोग की बात है कि उनकी जन्म भूमि जामनगर मेरी भी जन्म भूमि है। अतः साहित्य का विद्यार्थी होने के नाते उनके प्रति मेरा आकर्षित होना अस्वाभाविक नहीं है।

हिन्दी साहित्य में सूरदास, तुलसीदास, कबीर आदि को लेकर अनुसन्धान कार्य बहुत ही हुआ है। इन सशोधन कार्यों ने मुझे इस विषय का सुभाव दिया। फिर भी मेरे अस्पष्ट मस्तिष्क को प्रकाशित-पथ दिखाने का श्रेय डा० विजयेन्द्र स्नातक के अधिनिबन्ध “राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य” को ही दिया जा सकता है। उक्त ग्रन्थ ने मुझे स्वामी प्राणनाथ और उनके सम्प्रदाय पर अनुसन्धान कार्य करने की प्रेरणा दी।

सामग्रीसंकलन के सूत्र

स्वामी प्राणनाथ का अध्ययन करने के लिए इसी सम्प्रदाय के महन्तो, आचार्यों, भक्तों आदि के प्रकाशित एवम् अप्रकाशित भाषी-सग्रह, छोटी-मोटी किताबें और उनके ग्रन्थागार तथा अन्य विद्वानों की गवेयगुात्मक और आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध होती है।

स्वामी प्राणनाथ की बानियों को भक्त या मन्तवाणी-सग्रहों में विशेषतः स्थान नहीं मिला। गुजराती भाषा के “वृहद काव्य दोहन” और “प्राचीन काव्य

मुद्रा "जैमे काव्य-संग्रहो मे "इन्द्रामयी" नाम मे उनकी रचनाओं के ग्रंथों को स्थान मिला है। लेकिन उनकी समग्र वाणी आज तक मंदिरों के ग्रन्थागारों मे सजती ही रही। यह बात स्पष्ट है कि प्रणामी सम्प्रदाय के प्राचार्यों एवम् अनुयायियों ने उनकी वाणी को पूजनीय मानने हुए छिपाए रखा है। इनका अवश्य हुआ कि दुर्दशा में भी उनका समग्र वाणी साहित्य विरोधनः साम्प्रदायिक मन्दिरों मे सुरक्षित रहा है।

प्रो० विनयन ने अपने "हिन्दू धर्म" (Religions of the Hindus) नामक प्रबन्ध मे स्वामी प्राणनाथ या उनके सम्प्रदाय का नामोल्लेख तो किया है। लेकिन, एफ० एम० घाउज ने ही सर्वप्रथम स्वामी प्राणनाथ की रचना "व्यासननामा" किमी करकदाम नामक व्यक्ति में प्राप्त होने पर "एम्पिरिक मोमाइटी आव बगान" को रिपोर्ट में इस विषय पर प्रकाश डाला। हिन्दी के विद्वानों में मे मिश्रबन्धु, डा० होगलाम, डा० श्याममुन्दरदाम, डा० बड़प्वान, डा० रामकुमार वर्मा, प० परशुराम चतुर्वेदी, प्रो० मातोबदल जायसवाल, डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डा० मुदगंनमिह मजीठिया, डा० मरोजिनी कुलश्रेष्ठ, डा० गोवर्द्धन शर्मा, डा० अम्बाशकर नागर, डा० रामकुमार गुप्त आदि ने स्वामी प्राणनाथ या प्रणामी सम्प्रदाय पर थोडा-बहुत लिखा है। लेकिन उनके समग्र जीवन और साहित्य को लेकर सब गुद नामची कही नहीं मिलती : विरोधतः डा० बड़प्वान ने सब प्रथम विस्तार में उनके जीवन और साहित्य पर आलोचनात्मक सामग्री देकर हिन्दी के कई विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। गुजराती साहित्य मे श्री डाह्याभाई देरासरी, श्री जयानन्द दवे, प्रो० अमृत पंढ्या, श्री दुर्गाशकर शास्त्री, श्री के० का० शास्त्री, श्री रमणिक देमाई आदि ने बहुत ही अलग-अलग में उनके विषय में अनेक-अनेक और आलोचनात्मक सामग्री दी है। उक्त समग्र उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने का सुभवसर इन पक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है। तत्सम्बन्धी हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी में समग्र उपलब्ध साहित्य का गहरा अध्ययन करने की चेष्टा मैंने की है और साम्प्रदायिक साहित्य-प्रकाशित व अप्रकाशित भी मैंने परखा है। यही नहीं स्वामी प्राणनाथ और उनके सम्प्रदाय के बारे में जानकारी रखने वाले विद्वानों तथा सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त पण्डितों, साम्प्रदायिक-परम्परा को जानने और जीने वाले भाविक भक्तों तथा साम्प्रदायिक मन्दिरों के अधिष्ठाताओं में भी मैंने प्रत्यक्ष और पत्र द्वारा पहुँच कर जानकारी हासिल करने की चेष्टा की है और इस कठिन कार्य में सफल हुआ हूँ। मैंने अपने प्रस्तुत अध्ययन का आधार मूल सामग्री को ही बनाया है और यथार्थतः वैज्ञानिक-दृष्टि से तौरदार-विवेक का यत्न किया है। किसी भी सम्प्रदाय पर काम करते समय बल्यना और तथ्य, इतिहास और अनुसृष्टि, वास्तविकता और धर्म-भावना के ब्युह से बचना सरल नहीं होता। मेरा प्रयत्न यही रहा है कि अध्ययन पूर्णतः वैज्ञानिक बन सके।

स्वामी प्राणनाथ के जीवन और कृतित्व उनके मिद्धान्त, साहित्य व धार्मिक उपलब्धि पर पहले पहल ही विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। यद्यपि गुजराती हिन्दी में कतिपय विद्वानों ने इस दिशा में थोड़ा-बहुत कार्य किया भी है जिनसे प्रस्तुत नेत्रक ने साभार लाभ भी उठाया है। किन्तु सर्वांगपूर्ण अध्ययन को चेष्टा पहली बार की जा रही है। यही मेरा प्रयास रहा है।

प्रपत्न और कठिनाइयाँ

इस अध्ययन का कार्य प्रारम्भ करने के साथ ही स्वामी प्राणनाथ की बाणी और प्राणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से जानने का प्रश्न मेरे लिए उपस्थित हुआ। लेकिन साम्प्रदायिक साहित्य उपलब्ध करना अध्ययन से कठिन निकला। अन्यत्र कहा गया है कि प्रणामी सम्प्रदाय और स्वामी प्राणनाथ का सम्पूर्ण साहित्य ग्रन्थागार में मड रहा है। परन्तु सम्प्रदाय के आचार्यों और अनुयायी अन्य धर्मों के हाथों में अपने पूज्य साहित्य को नहीं जाने देने। लेकिन मैं पूजनीय आचार्य श्री धर्मदासजी महाराज, श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी महाराज, पंडित प्यारेलालजी, श्री मोहनमुकुन्द प्रणामी, श्री रणछोटेदाम वीरजी, श्री मंगलदासजी महाराज, श्री कन्हैयालाल भट्ट आदि उदारमतवादी साम्प्रदायिक विद्वानों से स्वामी प्राणनाथ की रचनाएँ और सम्प्रदाय का साहित्य प्राप्त कर सका हूँ। वैसे भी इस सम्प्रदाय का साहित्य अधिक प्रकाशित नहीं हुआ और जो प्रकाशित हुआ भी है उसे कहीं तक प्रामाणिक माना जाए यह भी समस्या बनी रही। स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के लिए मैं मूलतः जामनगर, भरोड़ा-श्रीड़ और कणजरी के मन्दिरों पर ही आधारित रहा हूँ। इन रचनाओं के प्रतिनिधिकारों ने अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ा। हाँ, शब्दों का थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ है। लेकिन पाठभेद की कोई विशेष परेशानी मुझे नहीं उठानी पड़ी। उनकी रचनाओं के विभिन्न अंश "प्रेमपाठ" "प्रकाश" "कलश" "पट्टञ्जु" "रास" के रूप में प्रकाशित हुए हैं। अभी-अभी प्रो० माताबदल जायसवाल और श्री मोहनमुकुन्द प्रणामी ने परिश्रम के साथ "श्री प्राणनाथ वचनामृत" नामक ग्रन्थ में उनकी रचनाओं को ग्रन्थस्थ किया है। अतः मैंने जहाँ से उनकी रचनाएँ मिली हैं उन सभी का उपयोग किया है।

सोमाएँ और विशेषताएँ

जैसा कि अन्यत्र निर्देशित किया जा चुका है, प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय पर प्रकाशित साहित्य बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध होता है। अत्यल्प समीक्षात्मक साहित्य, अधिकृत सामग्री का अभाव और साम्प्रदायिक कट्टरता ने काम को दुरूह बना दिया है। प्रस्तोता ने यथाशक्ति कोई भी क्षेत्र अस्पर्शित नहीं छोड़ा।

सम्प्रदाय में धर्म मन्तो एवम् भक्तों द्वारा भी साहित्य-रचना विपुल परिमाण में हुई है। इस सम्प्रदाय की "वीथक" परम्परा-स्वामी प्राणनाथ की काव्यमय जीवनी की पद्धति उन्लेखनीय है। शायद ही अन्य किसी सम्प्रदाय में जीवनी-साहित्य इतना समृद्ध हो। हमें अपने विषय की परिमीमा के अनुसार इस परम्परा का यथास्थान उल्लेख करके ही सन्तोप कर लेना पडा है। इसी प्रकार हमें प्राणनाथ-परवर्ती सन्तो एवम् भक्तों के साहित्य की परम्परा को विकासोन्मुख एवम् ऐतिहासिक आधार पर ही ग्रहण करना पडा है। फिर भी साहित्यिक दृष्टि से उस साहित्य का विधिवत् भूल्याकन करने के लिए अभी भी अवकाश है।

प्रबन्ध-परिचय

प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में स्वामी प्राणनाथ के जीवन-चरित्र पर विस्तार से विचार किया गया है और उनके जीवन से सम्बद्ध सभी उपलब्ध सामग्री, साम्प्रदायिक मान्यताएँ और अनुश्रुति के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं। यह अध्याय ११ उपविभागों में—(अ) जन्म स्थान और जन्म समय, (आ) मिहिरराज प्राणनाथ, इन्द्रावती, महामति, (इ) जाति, पारिवारिक जीवन और शिक्षा, (ई) गुरु देवचन्दजी में मुलाकात, (उ) प्रारम्भिक मेधाकार्य (ऊ) यात्राएँ धर्म प्रचार और प्रसार, (ए) चमत्कारी प्रसंग, (ऐ) विहारो-प्राणनाथ मुलाकात, (ओ) अन्तिम समय और मृत्यु स्थान, (औ) प्रमुख शिष्य, (ध) प्राणनाथ की रचनाएँ—विभक्त किया गया है। उक्त सभी तत्त्वों पर विभिन्न विद्वानों के मतों का परीक्षण करते हुए यथासाध्य निष्पक्ष रङ्ग कर अपना मत देने का दुस्साहम भी किया है। सभी तत्त्वों को वैज्ञानिक दृष्टि में सोच-समझ कर देखा-परखा गया है।

द्वितीय अध्याय में स्वामी प्राणनाथ की पूर्ववर्ती एवम् समकालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा विभिन्न धर्ममन और सनमत का दिग्दर्शन कराते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि उक्त विभिन्न परिस्थितियों का आलोच्य सन्त-कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर कैसा और किन्ना प्रभाव पडा है। यह अध्याय प्रमुख रूप से दो उपविभागों—(अ) प्रेरणाएँ और परिस्थितियाँ, और (आ) प्रणामी सम्प्रदाय और उसका विकास—में विभक्त किया गया है।

तृतीय अध्याय प्रणामी सम्प्रदाय के साहित्य का परिचयक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में इस सम्प्रदाय के स्वामी प्राणनाथ के अनिर्दिष्ट अन्य भक्त-कवियों का सामान्य नामोल्लेख हुआ है या धर्म सम्प्रदाय के रूप में उनको मान लिया गया है। उन भक्तों-मन्तों के समय साहित्य का परिचय आज तक एक ही स्थान पर कही भी नहीं मिलता। इस अध्याय में यह सर्व प्रथम मौलिक प्रयत्न

किया गया है। यह अध्याय भी दो उपविभागों—(अ) प्राणनाथ पूर्व साहित्य, और (आ) प्राणनाथ-परवर्ती साहित्य—में विभक्त किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के आधार पर उनकी दार्शनिक विचारधारा को विविध दर्शनों के साथ तुलनात्मक ढंग से देखा-परखा गया है। इस सदर्म में भारतीय अद्वैतमतदर्शन, इस्लाम धर्म, सूफीमत, यहूदी धर्म आदि पर विवेचन करते हुए प्रणामी और प्राणनाथ के दार्शनिक विचारों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उनके दार्शनिक विचारों के बारे में प्रचलित मान्यताओं का सप्रमाण खडन भी करना पड़ा है। साथ-ही-साथ उनकी रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन भी इसी अध्याय में किया गया है। भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि में उनकी रचनाओं में क्या साहित्यिकता है—यही निष्पक्ष दृष्टि से देखा गया है। यह अध्याय भी मुख्य रूप से दो उपविभागों—(अ) स्वामी प्राणनाथ की दार्शनिक विचारधारा, और (आ) स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन—में विभक्त किया गया है।

पंचम अध्याय में स्वामी प्राणनाथ का समग्र रूप में अवलोकन किया गया है तथा उनके योगदान का मूल्यांकन किया गया है। उनके योगदान को सामाजिक विचारधारा, धार्मिक सहिष्णुता, राजनीतिक आदर्श, साहित्य एवम् भाषा का महत्त्व इन पाँच तत्वों पर से स्पष्ट किया है।

परिशिष्ट १, २ और ३ में प्रणामी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रों जामनगर, सूरत और पन्ना में से जामनगर और सूरत की गद्दी परम्परा, प्रणामी सम्प्रदाय के मंदिरों की सूची तथा प्रणामी सम्प्रदाय के भक्त-कवियों की ग्रन्थ-सूची दी गई हैं।

इस अध्ययन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

- (१) साम्प्रदायिक साहित्य, अनुश्रुति, इतिहास और परम्परा के आलोक में सबसे प्रथम स्वामी प्राणनाथ के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इस क्षेत्र में हमें अनेक भ्रामक धारणाओं का खडन करना पड़ा है और हमने सप्रमाण मान्यताएँ स्थापित की हैं। अब तक अज्ञात ऐसे अनेक तथ्यों का उद्घाटन हुआ है।
- (२) स्वामी प्राणनाथ पर दार्शनिक दृष्टि से सम्पूर्ण रूप में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।
- (३) स्वामी प्राणनाथ के सम्पूर्ण साहित्य का साहित्यिक और सांस्कृतिक घरातल पर तत्कालीन परिवेश के सदर्म में मूल्यांकन किया गया है।

- (४) प्रस्तुत अध्यायन में प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक और साहित्यिक परम्परा का विस्तृत परिचय दिया गया है। ऐसा कार्य अन्यत्र किसी ने सम्भवतः नहीं किया और इस दिशा में यह गद में पहना प्रदान है।

आभार प्रकाशन

मेरे इस अध्यायन-कार्य में जिन विद्वानों एवम् छात्रार्थी-भक्तों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सहायता दी है, - न सभी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। फिर भी जामनगर के छात्रार्थी श्री धर्मदासजी महाराज, गुरुन के परमपाम वामी श्री मंगलदासजी महाराज, भाटा पारा के श्री रणछोइदाम बीरजी, इलाबाद के श्री मोहनमुकुन्द प्रणामी, मरोहा-घोड़ के श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी महाराज, पं० प्यारेलालजी और श्री कनैयालाल भट्ट का मैं विशेष ऋणी हूँ क्योंकि उनके सहयोग के बिना सांस्कृतिक साहित्य प्राप्त करना मुश्किल हो जाता। मैं अटके डा० गोवर्द्धनजी शर्मा के प्रति हृदय में कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ क्योंकि उन्हीं के कुशल निर्देशन, परिश्रम और उत्साह प्रेरक स्वभाव का ही यह शोध प्रबन्ध एक परिणाम है। उनके आरम्भिक पूरा निर्देशन के लिए उनका हृदय में आभारी हूँ। अन्त में, पचशील प्रकाशन जयपुर के सचालक श्री मूलचन्दजी गुप्ता का आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य आरम्भिकता पूर्ण ढंग में किया है।

—नरेश पंड्या

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

१-७७

प्राणनाथ : जन्म-जीवन-धामगमन

- (अ) जन्म स्थान और जन्म समय ।
- (आ) मिहिरराज, प्राणनाथ, इन्द्रावती, महामति ।
- (इ) जाति, पारिवारिक जीवन और शिक्षा ।
- (ई) गुरु देवचन्द जी से मुलाकात ।
- (उ) प्रारम्भिक सेवा कार्य ।
- (ऊ) यात्राएँ : धर्म प्रचार और प्रसार ।
- (ए) चमत्कारी प्रसंग ।
- (ऐ) महाकवि बिहारी—प्राणनाथ मुलाकात ।
- (ओ) अन्तिम समय और मृत्यु स्थान ।
- (औ) प्रमुख शिष्य ।
- (अं) प्राणनाथ की रचनाएँ ।

द्वितीय अध्याय

७८-१४६

प्रणामी सम्प्रदाय : उद्भव और विकास

- (अ) प्रणामी सम्प्रदाय का उद्भव—प्रेरणाएँ और परिस्थितियाँ
 - (क) राजनीतिक पृष्ठभूमि ।
जामनगर राज्य की स्थिति ।
बुन्देलखंड की स्थिति ।
 - (ख) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ।
सामाजिक जीवन ।
 - (ग) भारतीय धर्म दर्शन ।
विदेशी धर्म दर्शन ।

(घा) प्राणामी सम्प्रदाय और उमका विकास

(क) प्राणनाय-पूर्व स्थिति ।

(ख) प्राणनाय-सम्प्रदाय संबंधक ।

तृतीय अध्याय

१४७-१६८

प्राणामी संप्रदाय की साहित्यनिधि

(अ) प्राणनाय और प्राणनाय-पूर्व साहित्य

१७-१

(क) गुरु देवचन्द्रजी द्वारा लिखित मूल तारतम्यवाणी ।

(ख) स्वामी प्राणनाय की जोगवाणी और होश वाणी ।

(ग) कल्यावनी कृत तारतम्य सागर ।

(आ) प्राणनाय-परिधेती साहित्य

(क) स्वामी लालदाम ।

(ख) नवरत्न स्वामी ।

(ग) ब्रजभूषण ।

(घ) वक्ती हमराज ।

(ङ) लखनुरी महाराज-लालमखी ।

(च) महाराजा छत्रमाल ।

(छ) पञ्चमामिह ।

(ज) महाचार्यजी ।

(झ) मुकुन्द स्वामी ।

(ञ) जुगुनदास ।

(ट) चेतनदाम ।

(ठ) जीवन मस्ताना ।

(ड) गोपालदाम ।

(ढ) मोहनदाम ।

(ण) ज्ञानदाम ।

(त) महन्त गोगालदाम ।

(थ) गुलाबदाम ।

(द) मुरलीदाम ।

(ध) अर्जुनदाम ।

(न) सुखलालदाम ।

आधुनिक युग के सतविद्वान ।

चतुर्थ अध्याय
सिद्धान्त और साहित्य

३१६-३६६

(घ) प्राणनाथ का दार्शनिक पक्ष । १३३-१३४

(क) यहूदी, ईसाई, इस्लाम, भारतीय अद्वैत दर्शन (१)
सिद्धान्त और प्रणामी संप्रदाय का तुलनात्मक अध्ययन ।

(ख) प्राणनाथ और स्वामी अद्वैत । १३५-१३६

सिद्धान्त पक्ष । १३७-१३८

१. ब्रह्म, लोलारहस्य, अवतार निरूपण । १३९-१४०

२. जीव । १४१

३. जगत । १४२

४. माया । १४३

साधनापक्ष । १४४

१. कर्म, ज्ञान और भक्ति । १४५-१४६

२. भक्ति के प्रकार और प्रेमलक्षणा भक्ति का महत्त्व ।

३. सारतम्यज्ञान और मोक्ष ।

४. गुरु महिमा और नीतिनियम ।

(ग) प्राणनाथ की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन—

(क) भावपक्ष

शान्त रस; शृंगार रस, वीर रस; करुण रस; अद्भुत रस। वीरभक्त रस

(ख) कलापक्ष

अलंकार; छन्द; भाषा ।

पंचम अध्याय

३००-३०६

स्वामी प्राणनाथ के योगदान का मूल्यांकन

(अ) सामाजिक विचारधारा ।

(आ) धार्मिक दृष्टिविन्दु ।

(इ) राजनीतिक आदर्श ।

(ई) साहित्य एवम् भाषा का महत्त्व ।

परिशिष्ट

३१०-३२१

१. जामतगर-मूक्त की गद्दी परम्परा ।

२. प्रणामी मन्दिरों की सूची ।

३. प्रणामी मन्त-भक्त कवियों की सूची ।

प्रमुख सहायक ग्रन्थ सूची

३२२-३३२

- (अ) संस्कृत ।
 (आ) हिन्दी ।
 (इ) गुजराती ।
 (ई) अंग्रेजी ।
 (उ) हस्तलिखित ग्रन्थ ।
 (ऊ) पत्र पत्रिकाएँ—
 हिन्दी ।
 गुजराती,
 अंग्रेजी ।
 (ए) अप्रकाशित शोधप्रबन्ध ।

प्राणनाथ : जन्म-जीवन-धामगमन

युगों से मनुष्य धर्म को प्राणस्वरूप मानता रहा है उसी धार्मिकता को लेकर वह ईश्वर के अस्तित्व एवम् स्वरूप के सदर्थ में अपने मन्तव्य व्यक्त करता रहा है । डा० राधाकृष्णन ने कहा है, ' धार्मिक अनुभूतियाँ उतनी ही पुरातन हैं, जितना मुस्कराना और रोना, धार करना और धाम करना । विचारों की कोई भी गम्भीर साधना, विश्वासों की कोई भी खोज, सद्गुणों के अभ्यास का कोई भी प्रयत्न, ये सब उन ही श्रोतों से उत्पन्न होते हैं, जिनका नाम धर्म है । अदृष्ट के प्रति पूज्यभाव और श्रद्धा के फलस्वरूप भक्ति ने जन्म लिया । विशेषतः भारतीय जनमानस पर भक्ति और भक्तिगीतों ने गहरा प्रभाव डाला है । यह अत्युक्ति नहीं होगी कि धर्म ही भारतवर्ष का प्राण है । भारतीय सन्तों एवम् भक्तों ने समय के प्रवाह के अनुरूप ही धर्म के प्रवाह को भी विविध चिन्तनों से परिपुष्ट किया है ।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के हृदयस्थान पर धर्म-चिन्तन की धारा बहाने-वाले भक्त-सन्त ही विराजित हैं । मूरदान, तुलसीदास, भीरावाई, कवीर, नानक, आदि मध्यकालीन गणों एवम् भक्तों की कोटि में प्रणामी सम्प्रदाय के प्रचारक एवम् प्रसारक स्वामी प्राणनाथ का भी महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन प्राचीन मध्यकालीन अन्य भक्त-सन्तों की भाँति उनके जीवन के मन्दर्भ में भी थोड़ी-बहुत गलतफहमियाँ कुछ भावनाशील भक्तों की महिमा कथाएँ गौर आत्मिक-ऐश्वर्यकामी संनो की लौकिक जगत् विशेषतः निज के सम्बन्ध में उपेक्षा रही हैं, अतः उनकी सर्वशुद्ध जीवनी पाना कठिन है । फिर भी स्वामी प्राणनाथ की जीवनी के लिए उनकी खुद की रचनाएँ, साम्प्रदायिक ग्रन्थ और मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ सहायक

होने हैं। विनेपन प्रणामी सम्प्रदाय की 'वीतरु' २ (पद्यमय जीवनचरित्र) परम्परा विद्वमनीय जानकारी प्रदान करती है।

(घ) जन्मस्थान और जन्मसमय

स्वामी प्राणनाथ के जन्मस्थान के मन्दर्भ में जामनगर और पन्ना का उल्लेख किया जाता है। इतिहासकार सर वान्मले हेग ने उनको पन्ना का शत्रिय बताया है।^३ संभवतः उन्ही का आधार लेकर चन्दन बाने डा० विजयमिह चावडा ने भी उनको पन्ना निवामी ठहराया है।^४ डा० सावित्री मिन्हा ने धामी सम्प्रदाय के संस्थापक और पन्ना निवामी के रूप में स्वामी प्राणनाथ का उल्लेख किया है।^५ संभव है कि उन्होंने जार्ज ग्रियर्सन^६ और मिश्रबन्धु के^७ उल्लेखों को प्रमाणिक मान लिया हो। भागीरथप्रसाद दीक्षित ने क्विदन्नी का आधार लेकर कहा है कि गुजाघ (औरंगजेब का भाई) ही अराकान में भागकर निग्व पहुँचा था और वहाँ ने बुन्देलखण्ड में आकर महाराजा छत्रनाथ के गुरु के रूप में उक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ था।^८ माधव ने इनकी जन्मभूमि के रूप में सिर्फ काठियावाड़ का उल्लेख किया है।^९ बाबू नरेन्द्रनाथ बट्टोपाध्याय ने बुन्देलखण्ड को ही इनका आविर्भाव स्थान बताया है।^{१०} बन्तुतः प्राणनाथ का जन्मस्थान जामनगर होने पर भी कर्मक्षेत्र पन्ना-बुन्देलखण्ड ही रहा। इमीलिए आ० अग्निमोहन सेन ने कहा है, प्राणनाथ का जन्म काठियावाड़ में हुआ। किन्तु वे सं० १७०० में १७५० के बीच बुन्देलखण्ड में रहे और वहीं पर उन्होंने धर्मप्रचार का कार्य किया।^{११} स्वामी प्राणनाथ के जिय स्वामी लालदाम ने लिखा है-

२. सम्प्रदाय में लगभग १७ वीतकें मानी जाती हैं किन्तु उनमें से स्वामी लालदामकृत वीतक, ब्रजभूपणकृत वीतक-वृत्तान्तमुक्तावली, नवरत्न स्वामीकृत वीतक, हसराम बकसीकृत वीतक-श्री मिहाराज चरित्र, स्वामी लल्लूजी महाराजकृत वीतक "वर्तमान दीपक", जयरामदामकृत वीतक और बहुरत्न स्वामीकृत वीतक वृत्त प्रचलित हैं।
३. रिचर्ड बर्न, केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग-४, पृ० २०१
४. डा० विजयमिह चावडा, भारतनो नाट्वृतिक इतिहास, पृ० ४२०
५. डा० सावित्री मिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवविधिया, पृ० ८३
६. डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन वृत्त हिन्दी माहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६
७. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु-विनोद (द्वितीय म०), प्र० भाग, पृ० ४३६
८. भागीरथप्रसाद दीक्षित, महाकवि भूपल, पृ० १६८
९. बन्त्याल - मत अथ, अगस्त १९३७, पृ० ६०७
१०. नरेन्द्रनाथ बट्टोपाध्याय, पन्ना राज्ज का इतिहास, पृ० ३
११. हरिदाम नट्टाचार्य, द कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया, वा० ४ (लिखविशेष, द मिडिलन मिन्टीकम आफ नोर्थ इंडिया), पृ० ३६२

हानार देस पुरी नौतन, उदर वार्ई घन ।

केसो पिताकी कहियत, तहा राज उतपन ।।^{१२}

इतना निश्चित होता है कि स्वामी प्राणनाथ का जन्म मौराष्ट्र (गुजरात) के हानार जनपद में जामनगर में हुआ था। जाम रावल ने सं० १५६६ श्रावण शुक्ल ७ बुधवार के दिन नवानगर शहर बसाया था और इसे जामनगर, नवानगर, नौतमपुर, नूतनपुर, नूतनपुरी, नौतनपुरी आदि रूप में पुकारा जाता रहा है।

सम्बत पनर छनवे, श्रावण मास सुवार ।

नगर रच्यो रावल नृपन, सुद मानम बुधवार ।।

× × ×

वरणी न जाय कविता वचन, शोभा नौतम शहर की ।

लख लख माहे लखपनी, नौतमपुरी मुभार ।

धोक धोक वजना नवल, नौतनपुरी मुभार ।।

श्रोवण कलर्जे जल भरे, नवतनपुरी मुभार ।

घडिया घाट सुघाटरा, नुतनपुरी मुभार ।।^{१३}

अतः जामनगर में आज कहे जाने वाले “नौतनपुरी” (प्राणामी मंदिर) स्थान पर ही प्राणनाथ का जन्म नहीं हुआ। एक मन्तव्य है कि आज उनका जो जन्मशुह बताया जाता है कि वह किंगो चारण का घर था और सभजन. सं० १६३२ के बाद उससे खरीद लिया गया है।^{१४} प्राणनाथ के जन्मशुह के सम्बन्ध में निरर्थक लेना कठिन है।

प्राणनाथ के जन्म के सम्बन्ध में सर्वे श्री मातावदल जायसवाल,^{१५} डा० गोवर्द्धन शर्मा,^{१६} आ० परशुराम चतुर्वेदी,^{१७} डा० श्यामसुन्दर शुक्ल,^{१८}

१२. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ११, ची० ३६

१३. जामनगरनो इतिहास, पृ० ११४, १७६

१४. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी, श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका, (पादटीप), पृ० ६५

१५. सं० धीरेन्द्र वर्मा-त्रजेववर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) (श्री मातावदल जायसवाल : “हिन्दवी साहित्य”), पृ० ५८६

१६. डा० गोवर्द्धन शर्मा, सप्तसिंधु (पत्रिका), पृ० २२

१७. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सतपरम्परा, ५६५

१८. डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, (लेकिन “इन्द्रामती” के उल्लेख में सं० १७७६ का उल्लेख किया है। दे० पृ० २२) पृ० ३२

डा० बडश्वान,^{१६} डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ,^{२०} डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित,^{२१} डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया,^{२२} डा० रामकुमार गुप्त,^{२३} प्रो० अमृत पड्या^{२४} आदि एक मत है और वे प्राणनाथ का जन्म ग० १६७५ मानते हैं। डा० प्रियवंश ने उनका जन्मसमय निम्नलिखित रूप में बताया है, १६५० ई० में उपस्थित होने का ही संकेत किया है।^{२५} मिश्रबन्धु ने उनको पूर्वोक्त हिन्दी (१६८१-१७६०) प्रकरण के अन्तर्गत रखते हुए कहा है, "भक्तशिरोमणि प्राणनाथ, सुदरदास, गुरु गोविन्द सिंह, ध्रुवदास आदि ने इसी समय को पुनीत किया।" मिश्रबन्धु उनका समय स० १७०७ मानते हैं।^{२६} लेकिन विजयाभिनन्दन दा, (जो प्राणनाथ को दिया गया खिताब है) रचनाकाल ग० १७६७ स्वीकार करते हैं और महाप्रति का (प्राणनाथ की साम्प्रदायिक साधनावस्था - प्राप्ति की अवस्था) उसी छाप के कवि के रूप में उल्लेख किया है।^{२७} श्री डाह्याभाई पीताम्बरदास देरामरी और श्री कचरालाल शवजीभाई गोनी ने उनका जन्मसमय ग० १७२५ माना है।^{२८} श्री रमणिक श्रीपतराय देसाई ने उनका जन्मकाल स० १७२० लगभग बताया है।^{२९} प्रथम मुन्दरदास ने प्राणनाथ का ग० १७३७ के लगभग बनमाना होना बताया है जबकि इन्द्रावती की (परमधाम की जिग वामना स्वरूप के यहाँ प्रवर्तित हुए वे) प्राणनाथ से भिन्न मानते

१६. डा० पीताम्बरदास बडश्वान, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३३
 २०. डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ६८
 २१. डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ० ७२-७४
 २२. डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, गंगासाहित्य, पृ० ६४
 २३. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य की गुजरात के सन्तकवियों की देव, पृ० ४१
 २४. प्रो० अमृत पड्या, गुजराती साहित्य परिपद, २० मु० सम्मेलन, हेरान, पृ० २२१
 २५. डा० अब्राहम जोर्ज प्रियसंस्कृत हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६, २०१
 २६. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु-विनोद, भा० २, पृ० ४३६
 २७. वही, पृ० ६८६, ८८७
 २८. (अ) डाह्याभाई पीताम्बरदास देरामरी, गुजरातीओ ए हिन्दी साहित्यमा आपेनो फालो, पृ० १२
 (ब) श्री फार्वस महोत्सव ग्रन्थ, वेस-गुजरातना प्राचीन अने अर्वाचीन साहित्यनारो, पृ० ३१७
 २९. रमणिक श्रीपतराय देसाई, प्राचीन कविशा अने तेमरी कृतिओ, पृ० २६५

हृदय सं० १७०७ के लगभग वर्तमान बताया गया है । १० डा० रामकुमार वर्मा ने उनके सम्बन्ध में लिखा है, वे बुन्देलखण्ड के सब से बड़े और प्रभावशाली सन्त थे । इनका जन्म सं० १७१० में हुआ था ।^{३१} डा० उपा पाण्डेय ने उनका जन्मसमय सं० १६७७ माना है ।^{३२} "माधव" में इनका जन्मसमय सं० १७०० बताया है ।^{३३} डा० सावित्री सिन्हा के अनुसार, प्राणनाथ और पद्मा-नरेश छत्रसाल समसामयिक थे । छत्रसाल का जन्म सन् १६४६ और मृत्यु सन् १७२६ माना जाता है । इन्द्रामलिक के समय के अनुमान में इस प्रकार कोई कठिनाई नहीं पड़ती ।^{३४} ए० वार्ध और डा० भोलानाथ तिवारी के अनुसार इनका उपस्थितिकाल १७ वीं शताब्दी रहा है ।^{३५} फकुंहर ने इनका उपस्थितिकाल १८ वीं शताब्दी का प्रारम्भिक खण्ड माना है ।^{३६}

- अंग्रेजी माल के अनुसार प्राणनाथ का जन्म सन् १६१८ ई० में हुआ है ।^{३७} लेकिन डा. अम्बाशंकर नागर ने उनका जन्म समय ई. १६१६ बताया है ।^{३८}

१ - उपरिलिखित सूचनाओं के आधार पर प्राणनाथ का जन्मसमय निम्न है— ॥१॥
सं० १६७५-प्रौ० माताबदल जायसवाल, डा० गोवर्द्धन शर्मा आदि-विद्वानों
-के अनुसार ।

सं० १६९७ - डा० उपा पाण्डेय के मतानुसार ।

सं० १७०० - श्री "माधव" के अनुसार ।

सं० १७०७ - मिश्रबंशु के अनुसार प्राणनाथ का उपस्थितिकाल ।

सं० १७१९ - डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार ।

सं० १७२० - श्री रमणिक शीपतराय देसाई के अनुसार ।

३०. सं० श्यामगुन्दरदास वी० ए०, हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भा० १, पृ० १३, ६१
३१. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७८
३२. डा० उपा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, पृ० ७८-७९
३३. कल्याण, सत श्रृंख, अगस्त, १९३७, पृ० ६०७
३४. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० ८४
३५. (अ) ए० वार्ध, द रीजिंस आफ इण्डिया, पृ० २४१
(ब) डा० भोलानाथ तिवारी, हिन्दी नीतिकल्प,
३६. फकुंहर-प्रिन्साल्ड, द रिलिजस क्वेस्ट ऑफ इंडिया, पृ० २६१-२६२
३७. (अ) हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ३३१
- (ब) धर्मसुग, ५ अक्टूबर, १९६५ (शशिकान्त शर्मा का लेखविषय), पृ० ४५
३८. (अ) डा० अम्बाशंकर नागर, मुजरात में हिन्दी मेधा, पृ० २१६
(ब) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, व. ६३, अंक २, पृ० १३८

उनके कहे जाने वाले ग्रन्थों में "इन्द्रावती" या "इन्द्रामति" की छाप मिलती है। क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग भी है। वगैरे इन दो तथ्यों के सहारे कल्पना कर ली गई कि इन्द्रावती प्राणनाथजी की परिणीता थी, जो वामदेव में गहराई की कमी की छोक है। उनके ग्रन्थों में 'महामति' की छाप है, क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग वाले अनेक पद मिलते हैं, ४५ क्या इनसे यह मान लिया जाए कि उनकी दो पत्नियां थीं - इन्द्रावती और महामति। ऐसा करना निरानुचित होगा। सभी सम्प्रदाय के साधकों ने अपने अपने मन्त्रीवाचक रूपों में और कविता के भी, क्रियापदों में स्त्रीलिंग का प्रयोग किया था, हमने क्या वे कवि न रह कर कवयित्री हो जाएंगे ?

प्रा० अमृत पट्टा का मतव्य है कि प्राचीन एवं अर्वाचीन गुजराती पद्यग्रंथों में प्राणनाथ का नामोल्लेख नहीं हुआ। ४६ यन्मृत वृहद् वाच्यदोहन, प्राचीन काव्य-सुधा, प्राचीन वाग्-मजरी जैसे पद्यग्रंथों में 'इन्द्रावती' नामक कवि के रूप में ही उनका उल्लेख हुआ है। ४७ प्राणनाथ की गुजराती रचनाओं में 'भारा हो प्राणनाथ' अर्थात् 'तमगी प्राणनाथ' आदि प्रयोगों को देखकर इन्हे कवयित्री मान लेने का या प्राणनाथ की पत्नी मान लेने का भ्रम होता है। लेकिन इन रचनाओं में "प्राणनाथ" का प्रयोग "प्राणनी नाथ" अर्थात् प्राणों का स्वामी के रूप में ही हुआ है। श्री के० का० शास्त्री ने गुजराती हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में भी "इन्द्रामती" का उल्लेख अन्य स्वतन्त्र कवि के रूप में ही किया है। ४८ "चरो-तर सर्व सग्रह" ग्रन्थ में प्रणामी-पंथ का परिचय देते हुए कहा है कि जामनगर के दीवान केशवजी ने ही बाद में अपना नाम प्राणनाथ रखा था। ४९ गुजराती में

४५ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरन्तन, प्र० ५, चौ० ११

श्री महामति कहे भावचैत होइयो, मित्या है प्रकुरो आई।

भूठी छूटे साची पादये, सतगुरु लीजै रिभाई ।।

४६ गुजराती माहित्य परिपद, २० मुं गम्मेलन-हेवान, (प्रा० अमृत पट्टा का निबन्ध छत्रमान गुरु प्राणनाथ अने तेनी गुजराती कविग्रो), पृ० २१६

४७- (अ) स० इच्छाराम सूर्यराम देसाई, वृहद्-वाच्य-दोहन, भाग ८

(ब) स० छगनलाल रावण, प्राचीन काव्य सुधा, भाग ३ उ० २४१, भाग ४ पृ० २५७ २८६

(क) स० जेठालाल त्रिवेदी, प्राचीन काव्य मजरी, पृ० २६, ३३ (प्रवेशक)

४८ स० के० का० शास्त्री, गुजराती हाथप्रतौनी सङ्कलित यादी, पृ० ११

४९. स० पुहरोनम छ० शाह - चन्द्रमन्त्र फू० शाह, चरोतर सर्वसग्रह, भाग १, पृ० ८२४

सम्भवतः इनके “मेहराज” (मिहिरराज) नाम का सर्वप्रथम उल्लेख डाढ्याभाई देरासरी ने किया है।^{५०} इन्हीं के आघार पर “फार्वंस महोत्सवग्रन्थ” में भी प्राणनाथ का परिचय “मेहराज” नाम में दिया गया है।^{५१} सम्भवतः श्री जनक दवे ने भी उसी आघार पर “मेहराज” का उल्लेख किया है।^{५२} लेकिन रमणिक श्रीपतराय देसाई ने इन्द्रावती, “मेहराज” और महामतीबाई का उल्लेख तीन भिन्न-भिन्न कवि के रूप में किया है। उन्होंने इन्द्रावती का जीवन परिचय नहीं दिया, किन्तु मेहराज का दिया है। “महामतीबाई” के सदर्भ में लिखा है कि महमद ही महामती का अर्थ होता है।^{५३} डा० रामकुमार गुप्त ने कहा है, साम्प्रदायिक ग्रन्थों एवम् गुजराती के विवेचन ग्रन्थों में उनका नाम मेहराज श्रीजी, प्राणनाथ आदि मिलता है।^{५४} सच तो यही है कि साम्प्रदायिक ग्रन्थों में इन नामों का उल्लेख होना स्वाभाविक है, लेकिन गुजराती के विवेचन-ग्रन्थों में “इन्द्रावती” और “मेहराज” नाम का उल्लेख ही हुआ है। ई० सन् १९५६ की गुजराती साहित्य परिषद में प्रो० अमृत पड्या ने ही सर्वप्रथम उनके “प्राणनाथ” नाम का उल्लेख किया है।

स्वामी प्राणनाथ का जन्ममय और बाल्यावस्था का नाम मिहिरराज या मेहराज था।^{५५} सस्कृत में सूर्य का समानार्थी शब्द है मिहिर। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, ज्योतिषियों ने उनके पैदा होने ही भविष्यवाणी की थी कि यह बालक प्राणीमात्र को जन्ममरण के चक्र में बचाने वाला, पहुँचा हुआ ब्रह्मज्ञानी होगा और इसका भविष्य सूर्य की तरह प्रोजपूर्ण है।^{५६} डा० मुदर्शनसिंह मजीठिया ने उनका

५०. डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी, “गुजरातीश्रीमे हिन्दी साहित्यमा आपेलो फालो, पृ० १२
५१. स० अम्बालाल बुलाभीराम जानी, फार्वंस महोत्सव ग्रन्थ, (कचराताल सोनी, का निबन्ध), पृ० २१७
५२. जनकशंकर भनुशंकर दवे, हिन्दीस विकासमा गुजरातीश्रीमे फालो, पृ० १४१
५३. स० रमणिक श्रीपतराय देसाई, प्राचीन कविश्री अने तेमती वृत्तिश्री, पृ० २२, २६५ १५१
५४. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य को गुजरात के सतकवियों की देन पृ० ११३
५५. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २७७
५६. (ध) मुरलीदास घामो, धर्म अभियान, पृ १०
(व) गणेशोदयस वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० २५६
(क) कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी, महर्षि स्वामी प्राणनाथ जी याने श्री विजयाभिनन्दन निष्कलंक बुद्धजीनु जीवन चरित्र पृ० ५

पूर्वनाम "महागज" मानने हुए बताया है कि ये गुरु की गद्दी पर "महागज ठाकुर" के नाम से धरे।^{१३} वास्तव में इसमें उल्टा ही प्रयत्न रहा है। गुरु देवचन्द्रजी का गिणद्वय प्रह्लाद कर्म के बाद ही वे प्राग्नाथ नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रो० प्रमृत्त पट्ट्या ने भी अन्वय ऐसा कहा है कि केतवजी ने गुरु देवचन्द्र का गिणद्वय प्रह्लाद करके 'प्राग्नाथ' नाम धारण किया।^{१४} साम्प्रदायिक मान्यता यही है, जब वे बड़े हुए और गुरु में भेंट हुई तब दीक्षा मंत्र दान में पहले उनके गिर पर गुरु ने प्रणाम कर दिया था और प्रो० एकराज ध्यानपूर्वक देखकर कहा, यह वाचक पश्यत्य परमात्मा का साक्षात् स्वरूप है। भूमी मट्टी ब्रह्म प्रजापतियों को मन्वेत्कर मन्मथ पर जाने का महाव्रत पूरा करेगा, मन्मथ के प्राग्नाथ को जन्ममर्त्य की पुनर्गवृत्ति में मुक्त करने हेतु स्वर्नानादर्वन ब्रह्मासद का मुक्त मूत्र दान पर प्रमत्तशुभा भक्ति का मार्ग प्रस्तुत करेगा, और मन्मथ में "प्राग्नाथ" के नाम से विख्यात होगा।^{१५} अर्थात् प्राग्नाथ गुरु की ओर में मिला हुआ नाम है। गोरेशान निवारी के अनुसार वैराग्य में लेने के पश्चात् इनका नाम प्राग्नाथ हुआ।^{१६} प्रो० प्रमृत्त पट्ट्या ने बताया है, उनके मूलतः तब के भ्रमणकाल में "महागज" नाम ही प्रचलित रहा, लेकिन मूल में वे प्राग्नाथ नाम से प्रसिद्ध हुए।^{१७} लेकिन लोगों की जवान पर एक नाम धारण के बाद इनका नाम इनकी आत्मा में प्रचार में आना अस्वाभाविक लगता है। उन्होंने भ्रमणकाल शुरू किया तब में प्राग्नाथ नाम ही उनका विल प्रचार में रहा होगा। अतः प्रो० मानावदन ज्ञानवदन का मन्त्र^{१८} उक्ति लगता है कि महेश्वर के धर्मानुगामी "मुन्दरनाथ" कहवाने थे। 'मुन्दरनाथ' के द्वारा ही उन्हें यदापूर्वक "प्राग्नाथ" की उपाधि दे दी गई थी।

प्राग्नाथ के ही अन्य दो नाम इन्द्रावनी और महामति को लेकर हिन्दी माहिष्य में फँसे हुए भ्रम को दूर करने का सर्वप्रथम प्रयत्न काशी नागरी प्रचारिणी

१३. डा० मुदगंनसिंह मन्नीठिया, मन्मथ-माहिष्य, पृ० ६३

१४. अन्वय ज्ञानन्द (मानिक पत्रिका), प्रो० प्रमृत्त पट्ट्या का निबन्ध, भारतनाथ सर्व धर्मनाथ सम्प्रदाय प्रथम प्रयत्न करताना मत्त प्राग्नाथ, बुनाई १९५६ पृ० ५०

१५. मुरलीदान धामी, धर्म अभिधान, पृ० ११

१६. गोरेशान निवारी, मुन्दरनाथ का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२१

१७. मुदरगनी माहिष्य परिषद, २० मुं मन्मथ - हेवान, पृ० २२३

१८. हिन्दी माहिष्यकोश, भाग २, पृ० ३३१

पत्रिका^{६३} और डा० गोवर्द्धन शर्मा ने किया है। वस्तुतः इन्द्रावती और महामति प्रणामी साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अनुसार प्राणनाथ के गुरु देवचन्द्र स्वयं ब्रह्मप्रिया "श्यामसुन्दरी के अवतार थे।^{६४} इसी प्रकार प्राणनाथ की अन्य ब्रह्मप्रिया 'इन्द्रावती' का स्वरूप माना गया है।^{६५} गुरु ने दीक्षामन्त्र देकर अपनी "श्यामाजी स्वरूप" आत्मा के साथ प्राणनाथ के शरीर में "इन्द्रावती स्वरूप" प्रवेश किया। सम्प्रदाय के स्वरूपदर्शन के अनुसार श्रीकृष्ण-श्रीराजजी, देवचन्द्रजी श्यामारूप श्री श्यामाजी, प्राणनाथ तारतम्यस्वरूप श्रीजी तथा इन्द्रावती की वासना हैं। ब्रजभूपण ने कहा है—

घन्य सखी इन्द्रावती तारतम्य पति सग ।
लं उतगी धवलं तहा बंठे सुन्दर अंग ।।
श्री इन्द्रावती वासना, मिल्यो निज आवेश ।
कहणाबधु केशवसदन, ठर्यो महा नरवेश ।।^{६६}

इन्द्रावती के धामदिल में धामधनी के सत्सग से निजबुद्धि और तारतम दोनों अवतरित हुए। अक्षर भी जाग्रत बुद्धि ने तारतम को धारण किया, जिस के फल-स्वरूप बुद्धि, आवेश, तारतम, आज्ञा और दया इन्द्रावती के हृदय में स्थित हुए। इसी संदर्भ में नवरम स्वामी ने लिखा है^{६७}—

इन्द्रावती पर आज्ञा भई, श्रीधाम चलन सनमुख ये रही ।
श्री इन्द्रावती देखी निजरूप, श्रीदेवचन्द्रजी आप स्वरूप ॥
कियो इन्द्रावती अन्तरप्रवेश, लं तारतम बुद्ध हुकम आवेश ।
ये सरूप श्री देवचन्द्रजी लिए, श्री देवचन्द्रजी विराजे हिये ॥

तो तारतम सरूप श्री इन्द्रावती कही, ये स्वरूप पंचमिल महामति भई ।
ये पंच स्वरूप को निरनय भयो, सो श्रीजीयें कलशमें कहयो ॥

"कलश" से बाद वाली उनकी रचनाओं में "महामति" की छाप मिलती है। लेकिन रूप में पांच दिव्य आधार बुद्धि, आवेश, तारतम, आज्ञा और दया समाहित हो जाने पर उसका वह स्वरूप महामति कहलाता है। अतः अब स्पष्ट हो जाता है

६३. प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज - नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००८, वर्ष ५६, पृ० २१
६४. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २७०
६५. वही, पृ० ३०२
६६. ब्रजभूपण वृत्तान्त मुक्तावली, प्र० ३२
६७. नवरम स्वामी, लीलाप्रकाश, प्र० २३

कि उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ धरने नाम से, मध्याह्निक रचनाएँ इन्द्रावती के नाम से और बाद में महामनि नाम से लिखी गई है। अन्तिम दो छाप अधिक मिनती हैं। सम्प्रदाय में उनके लिए "श्रीजी" जैसा प्राण मूचक सम्बोधन होता है। डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने इन नामों के मद्दे में कहा है सम्प्रदाय में प्राणने नाम श्री मिहिरराज श्रीजी साहब, इन्द्रावती, इन्दिरा, महामनि आदि नाम भी प्रचलित हैं।^{१८} मिहिरराज प्राणनाथ, इन्द्रावती और 'महामनी' नाम विवेकानन्दियों में और 'श्रीजी' नाम ही साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्रचलित है। अन्तर्गत सभी नाम प्राणनाथ से अभिन्न हैं।

(इ) जाति, पारिवारिक जीवन और शिक्षा

उनकी जाति के मद्दे में क्षत्रिय, त्रयवर्णीय क्षत्रिय और लोहाणा का उल्लेख किया जाता है। डा० जार्ज ग्रियर्सन, डा० गीताम्बर दत्त बट्टखान, डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, एफ० एम० ब्राउन, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया के अनुसार उनका जन्म क्षत्रिय जाति में हुआ था।^{१९} गुजराती ग्रन्थों में उनकी "लोहाणा" जानी बनायी गई है।^{२०} मुरलीदास घामी, ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द आदि ने उनकी लववर्णीय क्षत्रिय जाति मानी है।^{२१} लॉरेन्स गुजरत में - काठियावाड़ में - यह जाति "लोहाणा" नाम से ही प्रचलित है। सम्भवतः इंगितिए एष गुजराती साम्प्रदायिक ग्रन्थ में उनकी क्षत्रिय लोहाणा जाति बनायी गई है।^{२२} उनका जन्म लोहाणा ठक्कर परिवार में हुआ था।^{२३}

- ६८ डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में शृष्ण, पृ० ६८
- ६९ (अ) एफ० एम० ब्राउन, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, बाल्युम ४८ भाग १, पृ० १८०
- (ब) डा० ग्रियर्सन, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६
- (स) डा० बट्टखान, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३२
- (ड) डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३१
- (इ) स० रिचर्ड बर्न, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, बाल्युम, ४, पृ० २२१
७०. (अ) जनकशंकर दवे, हिन्दीना विकासमा गुजर तीर्थोनी कालो, पृ० १४१
- (ब) रामजीभाई प्रणामी प्राणनाथ जीनु जीवनचरित्र, पृ० १
- (स) केशवजी विश्वनाथ शिवेदी, चरित्रचंद्रिका, पृ० ५८१
७१. (अ) मुरलीदास घामी, धर्म अभिधान, पृ० १०
- (ब) स० ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द, पट्टच्छतु, (भूमिका), पृ० ६
७२. रणछोडदास कीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ३५५
७३. लोहाणा जाति के व्यक्ति धरने को लववर्णीय क्षत्रिय मानते हैं।

तीसरे श्री गजबहादुर के शासनकाल दरम्यान जामनगर में राज्य करने वाले प्रामक ही मनाजी होने चाहिए।^{१०} जाम मनाजी का शासनकाल स० १६२५ से १६६४ (ई० सन् १५६६ से १६०८) तक रहा।^{१०} लेकिन प्रधानप्रमाथ के रूप में केशवराय का नामोल्लेख नहीं मिलता। केशवराय गरीब परिवार में पैदा हुए थे, किन्तु अपनी कार्यकुशलता के फलस्वरूप प्रधानप्रमाथ का स्थान उन्होंने प्राप्त किया था ऐसी किंवदन्ती है। ऐतिहासिक उल्लेखों के अभाव में यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्राणनाथ के पिता केशवराय का जाम-नरेश के दरबार में मित्र का सम्बन्ध रहा होगा। गोरेलाल निवारी के अनुसार प्राणनाथ एक धनी पुरुष के लड़के थे।^{११} संभव है प्राणनाथ का जन्म श्री श्री सरस्वतीमुक्त घर में हुआ हो।

केशवराय की मन्त्राणां की संख्या निश्चय रूप में नहीं बतायी जा सकती। सम्भवतः स्वामी लालदामजी की बीनक के आधार पर^{१२} श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी ने केशवराय के छ पुत्रों में से प्राणनाथ (मिहिरराज) को सबसे छोटा पुत्र माना है। उन्होंने कहा है, मामलजी, चतुर्वृज, गोविंदजी, गोधवजी, गोवर्द्धनजी ये सब श्रीजी (प्राणनाथ) के बड़े भाई थे।^{१३} प्रो० मानाबदन जायमवाल, प्रा० परशुराम चतुर्वेदी मुख्तीदाम धामी और कवि रामजीभाई नागरदान प्रणामी ने पाँच पुत्रों की संख्या में श्यामल, गोवरधन, हरवश, मिहिरराज (प्राणनाथ) और ऊधव के नाम गिनाये हैं।^{१४} प्रो० मानाबदन जायमवाल ने गोवरधन को धिष्ट भ्राता माना है।^{१५} लेकिन, पं० कृष्णदत्त शास्त्री, रणछोडदास खोरजी और ब्रजभूपण ने पुत्रों का नाम-क्रम हरिवंश, प्रामलिया, गोवर्द्धन, मिहिरराज (प्राणनाथ) और ऊधव रखने हुए

१०. The Gazetteer of Bombay Presidency, Vol. 1, Part 1, p. 273

११. कवि भावदानजी, श्रीधनुवंशप्रकाश, द्वितीय खंड, पृ० १७६

१२. गोरेलाल निवारी, बुन्देलखण्ड का साक्षिण इतिहास, पृ० १६३

१३. स्वामी लालदामजी की बीनक, प्र० ६, चौ० २५-२६

१४. श्रीकृष्णप्रियाचार्य, श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका, पृ० ६४

१५. (घ) प्रो० मानाबदन जायमवाल, दूमरा प्रणाम, पृ० ४

(ब) प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की मूल परम्परा, पृ० ५६५

(स) मुख्तीदाम धामी, धर्म अभिदान, पृ० १७

(द) कवि रामजीभाई नागरदान प्रणामी, प्राणनाथजीनुं जीवनचरित्र, पृ० ३

१६. प्रो० मानाबदन जायमवाल, दूमरा प्रणाम, पृ० ४

हरिवंश को ज्येष्ठभ्राता बताया है।^{८७} नवरंग स्वामी की बीतक में गोबरधन ऊघो और सामल का ही उल्लेख "जी साहेब के भाई" के रूप में हुआ है।^{८८} स्वामी लालदास की बीतक अधिक विश्वसनीय होने पर भी प्राणनाथ के परिवारवर्णन में अधिक अस्पष्ट है। इस दृष्टि से ब्रजभूषण का कथन स्पष्ट और उचित मालूम होता है।

माता प्राणनाथ के बालचरित्रों को देख-देख कर बहुत प्रसन्न रहती थी। कभी-कभी अलौकिक चरित्रों को देखकर आश्चर्य में भी पड़ जाती थी। साम्प्रदायिक मान्यतानुसार, पाँच वर्ष पर्यन्त उनके अनेक अलौकिक चरित्र दृष्टिगोचर होते थे। किन्तु पाँच वर्ष के बाद साक्षात् स्वरूप मिहिरराज (प्राणनाथ) ने अपने अलौकिक चरित्रों का मन्वरण कर लिया और अन्य बालकों की भाँति आप भी खेल कूद और बालक्रीडा करने लगे।^{८९} सम्प्रदाय की इन अतिशयोक्तिपूर्ण मान्यताओं को हटा देने पर, इतना सम्भवित है कि वात्स्यायन्या में ही उन्होंने हिन्दूधर्मशास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की हो। मातापिता राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।^{९०} अतः बाल्यकाल से ही उनके जीवन में धार्मिक सस्कारों की समावेश स्वाभाविक है। किन्तु उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के सद्बर्ण में विश्वमनीय जानकारी नहीं मिलती।

- ८७ (अ) पं कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २८०
 (ब) रणछोडदास बीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ३५६
 (स) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, पृ० ३६ चौ० २६-३०-३१

"केशव ठाकुर पंच सुत, जेठे श्री हरिवस ।

मझने सामलजू कहे, गोबरधन अबतंस ।।

तिन लघु श्रीमहेराज है, धाम घनीको रूप ।

लघु तिनमें उद्धव कहे, लखी सु पंच प्रमान ।।

८८. नवरंग स्वामीकृत बीतक, प्र० १०, चौ० ३५, ४१

८९. (अ) पं कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २७७-२७९

- (ब) सनेहसखीकृत लीलारससागर, प्र० ३६

"कबहूक लाल पौडायके जब जाय बाहर मात ।

तब भवन में होई धूम भारी लीला आय साक्षात ।।

कबहूक रास विलास लीला होइ पेई पेई कार ।

अये पांच बरस के लालन तब ली लीला कीन्ह ।।

ता उपरान्त विचार के बालक चेष्टा लीन्ह ।।

९०. श्री प्राणनाथ संदेश, वर्ष १३, अंक ३, पृ०.१७

प्राणनाथ के दाम्पत्यजीवन के बारे में निम्निरूप में कहना कठिन है। साम्प्रदायिक ग्रन्थों में — बीतको में — भी इन सदर्भ में गमान उल्लेख नहीं मिलते। माना जाता है कि प्राणनाथ की फूलवाई के साथ बाल्यावस्था में ही शादी हो गई थी। रणछोडदास धीरजी के अनुसार, गुफ-यात्रा में अरबस्तान गये हुए प्राणनाथ स० १७०८ में जामनगर वापस आ गये और वहाँ के तुरन्त ही स० १७०८, फाल्गुन शुक्ल पंचमी के दिन फूलवाई की मृत्यु हो गई।^{६१} प० वृष्णदत्त शास्त्री ने इस सदर्भ में सभवतः ब्रजभूषण पर आधारित ग्रन्थ है। गुरु ध्यानगमन के बाद, प्राणनाथ ने गुरुपुत्र विहारी में हुए अन्तर्गत को कम करने के लिए जामनगर राज्य का बजौर पद ग्रहण कर लिया था। लेकिन हर रोज सुबह-शम सम्प्रदाय के अनुयायियों के समक्ष धर्मवर्चा करते थे। इस प्रकार अनुयायियों में उनके बढ़ते हुए प्रभाव ने विहारी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न की। उन दिनों में विहारी ने अनुयायियों में धर्म-जाग्रति उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक अनुयायी के लिए धर्मवर्चा में सुबह-शाम नियमित रूप में उपस्थित होने का नियम बना दिया था। यात्रा-भंग करने वाले को धर्मवहिष्कृत की सजा मिलती थी। एक बार, दूर गात्र में आनेवाले अनुयायी को इसी हेतु धर्म वहिष्कृत कर दिया गया। नव दिन तक वह अनुयायी विहारी के द्वार पर अन्न-जल त्यागकर खड़ा रहा और दसवें दिन प्राणनाथ के घर पर गया। उस समय प्राणनाथ दरबार में थे। अतः उनकी पत्नी फूलवाई ने उसको मगझाया और भोजन दिया। इस बात को सुनकर विहारी भोवित हो गया और उन्होंने द्वारपाल को प्राणनाथ के मंदिर में प्रवेश नहीं करने देना ही आज्ञा दी। शाम को वहाँ पहुँचने पर प्राणनाथ को बताया गया कि अब आप हमसे चहो तो अपनी धर्म-पत्नी का परि-त्याग कर दीजिए। उन्होंने गुरुपुत्र की यात्रा का पाना लिया। अन्त फूलवाई ने पतिवियोग में अन्न-जल का त्याग किया और छ मास पूर्ववत् उनका निरन्तर स्मरण कर अपनी निर्मलात्मा को पतिस्वरूप में मिला दिया। मृत्युसमय पर अपनी इच्छा व्यक्त की कि अन्तिम संस्कार का स्थान पति के चरणों से पवित्र किया जाए।^{६२} लेकिन इस प्रसंग में ब्रजभूषण ने इनकी पत्नी का नाम फूलवाई नहीं दिया, “नाइबू” दिया है।^{६३} कवि रामजीभाई नागरदास प्रणामी ने बताया है कि उनकी प्रथम पत्नी का नाम तेजवाई था और उनकी मृत्यु १४ साल की उम्र में ही हुई थी। प्राणनाथ वमरा गये उमरे पहले तेजवाई के साथ उनकी शादी की गई थी। और तेजवाई की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् वाईजीराज के साथ उनकी दूसरी शादी

६१. रणछोडदास धीरजी, श्रीपरमधाम प्रणानिका, पृ० ३७३

६२. प० वृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३७६-३८०

६३. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४१, चौ० ४२

तेजवाई के साथ व्यतीत हुआ था । सम्प्रदाय के अनुयायी तेजवाई को ही आदरमूचक "बाईजीराज" के नाम से पुकारने थे ।^{१००} लेकिन तून्वार्टी पीर तेजवाई के साथ उन्होंने कब विवाह किया, यह प्रमाण नहीं कहा जा सकता । "बाईजीराज" नाम तो सम्मान मूचक है ।

उनके माता पिता की मृत्यु के सदम में साम्प्रदायिक ग्रन्थ मौन है । कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु स० १७१२ में जामराज का मन्त्रीपद उन्होंने ग्रहण किया था वंसी साम्प्रदायिक मान्यता है । इसी आधार पर कहा जा सकता है कि स० १७१२ में पहले उनके पिता केशवराय की मृत्यु हुई होगी । कहा जाता है कि पिता के स्थान पर ही तुरन्त उनको नियुक्त किया गया था ।^{१०१} साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार उनके माता पिता की मृत्यु के बीच विशेष समय नहीं रहा । स० १७०० में गोवरधनभाई, जो उनसे बड़े थे, उनकी मृत्यु हुई ।^{१०२} इस प्रमाण ने प्राणनाथ के मन में गहरी उदामी ला दी और लौकिक विषय में उनको गह्वरम स्तानि होने लगी ।

(ई) गुप्तेव चन्द्रजी से मुलाकाते

श्री० परशुराम चतुर्वेदी, डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डा० मुदशंनसिंह मजीठिया, डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, प्रो० मानावदन जायसवाल, प्रो० अमृत पट्टण, केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री और डा० गोवर्द्धन शर्मा ने स्वामी प्राणनाथ के गुरु के रूप में देवचन्द्र महाराज को माना है ।^{१०३} जनकशंकर दत्त

१००. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ६८५

१०१. श्री० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरा भाग की मन परम्परा, पृ० ५६६

१०२. (अ) ब्रजभूषण वृत्तान्तमुत्तावली, प्र० ३८, चौ० ५

गोवरधन सेवा करें, निजानन्द प्रभु जान ।

या समयें उनकी भयो, देहत्याग मुप्रमान ॥

(ब) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३१२

१०३. (अ) श्री० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की मनपरम्परा, पृ० ५६३

(ब) डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, हिन्दी मतमाहित्य

(ग) डा० मुदशंनसिंह मजीठिया, मतमाहित्य, पृ० ६४

(द) डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, हिन्दी माहित्य में कृष्ण, पृ० ६८

(इ) प्रो० मानावदन जायसवाल, हमरा प्रणाम, पृ० ४

(ई) गुजराती माहित्य परिषद - २० मु अघिवेदन - हेवाल, पृ० २२२

(उ) केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, चरित्रचन्द्रिका, पृ० ५८१

(ऊ) दुर्गाशंकर केवलराय शास्त्री, वैष्णव धर्मनो मक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१२

(ए) मत्तसिधु (पत्रिका), अगस्त, ६४ पृ० २१

ने प्राणनाथ के मंदिर में लिया है, रहा जाता है कि राधावल्लभों सम्प्रदायवाले देवचन्द्रजी वागम्य के रहा वे नौकर थे वही रह कर उन्होंने गुजराती, फारसी, घरबी, ब्रजभाषा आदि का अध्यास किया ।^{१०४} सम्भवतः उन्होने डाह्याभाई देरासरी के विधान को प्रक्षरश मान्य रखा है ।^{१०५} डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित और डा० मुदरंनसिंह मजीठिया के अनुसार स्वामी प्राणनाथ ने कुछ ही दिनों में जन्मस्थान का त्याग करके साधुओं के साथ भ्रमण करना शुरू किया और इन्हे किसी देवचन्द्र साधु में प्रेरणा प्राप्त हुई थी ।^{१०६} वास्तव में स्वामी प्राणनाथ को गुरु देवचन्द्र की प्राप्ति जामनगर में ही हुई थी ।

प्राणनाथ के गुरु देवचन्द्रजी अर्थात्, निजानन्द स्वामी आनी २४ वर्ष की अवस्था में जामनगर आये थे । यहाँ १४ वर्ष तक एकनिष्ठा में भागवत का श्रवण, मनन, निदिध्यासन किया । कहा जाता है कि अन्न में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने साक्षात् दर्शन देकर इन्हे तारकमन्त्र की दीक्षा दी ।^{१०७} कृष्ण साक्षात्कार के निजानन्द में वे भावविभोर रहने लगे कि वे जगत् निजानन्द स्वामी के नाम में विख्यात हो गये । कृष्णदर्शन और कृष्णाज्ञा के बाद उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना की और सम्प्रदाय के तत्त्वों का प्रचार कथा-कीर्तन द्वारा किया । गुरु देवचन्द्र को जीवनों का उल्लेख अन्त्यष्ट किया जाएगा ।

श्याममुन्दर के मन्दिर में कथाश्रवण के लिए देवचन्द्रजी के साथ गागजीभाई नामक एक लोहाणा सेठ भी जाते थे । जब देवचन्द्रजी ने कृष्णदर्शन की बात उन्हें बतायी तब वे प्रसन्न हुए और देवचन्द्रजी को अपने घर ले गये । गागजीभाई ने तारकमन्त्र की दीक्षा ली और वे देवचन्द्र के प्रथम शिष्य हुए ।^{१०८} उनका सारा परिवार दीक्षित हुआ । और देवचन्द्रजी के कथाचमत्कार की बातें शहर में फैलती गई । गांग-

१०४. जनकशकर मनुशकर दवे, हिन्दीना विकासमा गुजरातीश्रीनो फालो, पृ० १४१

१०५. डाह्याभाई देरासरी, गुजरातीश्रीनो हिन्दीसाहित्यमा आपेली फालो पृ० १२

१०६. (अ) डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सत साहित्य पृ० ७२-७४

(ब) डा० मुदरंनसिंह मजीठिया, सत साहित्य, पृ० ६७

१०७. (अ) कल्याण, सत अंक, अगस्त, १९३७, पृ० ६०७

(ब) लालदासवृत्त, बीतक, प्र० ७, चौ० ८

मुनत भागवत देहुरे, तथा कहा तारतम ।

तुम आये हो धरमसें, जगाम्रो अपनी आत्मम । ।

१०८. (अ) पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २५७

(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ५६५

जीभाई के पुत्र सामजी की पत्नी यजवार्द जो प्राणनाथ के बड़े भाई हरवण के साने की लडकी थी उसने प्राणनाथ के घर में ये नागी बानें बनायीं । १०३ ये बानें मुन कर प्राणनाथ के बड़े भाई गोवरधन भाई देवचन्द्रजी के दर्शन करने गाएजीभाई के घर गये । १०४ इस प्रकार देवचन्द्रजी के अनुयायी बढने गये । इस बात को लेकर जिमी ने कोतवाल से घुगर्ली की । अतः आज जा खिजडा मंदिर के नाम से प्रख्यात है उस म्यान पर आजकल देवचन्द्रजी कथाकीर्तन करने लगे । इस कथाकीर्तन में उलम्बित रहने वाले गोवरधनभाई धर्मकथा की बानें घर में करते थे । १०५ इन बातों का प्रभाव प्राणनाथ (मिमिरराज) पर होने पर और एक दिन उन्होंने गोवरधनभाई से देवचन्द्रजी के पास आने काय ले जान के लिए कहा । गोवरधनभाई मना करते रहे, लेकिन एक दिन प्राणनाथ रो-बोकर उनके पीछे-पीछे गए । गोवरधनभाई ने गुरु में यह बात बतलाई और उनकी साने की आज्ञा मानी । १०६ गुरु आज्ञा होने पर वे प्राणनाथ को वहाँ ले गये । इस प्रकार प्राणनाथ ने गुरु देवचन्द्रजी के प्रथम दर्शन किये । इस समय स्वामी प्राणनाथ की आयु १० वर्ष ० मास और १० दिन थी । १०७

- (घ) बारह बरस दो मास, ना ऊपर भए दस दिन ।
तब देवचन्द्रजी मों मिले, तब पहचान मोमिन ॥
- (व) बारह बरस विजमके मानो, और मास दूँ दस दिनबसानी ।
एनेक दिनके भये जब आप, देवचन्द्र मों करे मिलपा ॥
- (ड) ऊपर बाहर वर्षके, दर्शनदन अर दूँ मास ।
भाई धनी सो तब मिले, लखी वामना पास । ।

१०६ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ४-१३

११०. ५० वृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० २८३

१११ लालदास स्वामीभूत बीनक, प्र० ११, चौ० ३६

पहेला मिलाप गोवरधन का, श्री देवचन्द्रजी में ।

तहा राज दीदार की, चर्चा करे घर में । ।

११२. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ५०, ५५

मुनि गोवरधन प्रति तर्क, बोने थी मेहराज ।

चरनन श्रीदेवचन्द्र के, चली मोहि लै आज । ।

आज रोई पाछो लाग्यो, तब आयो डुटवार्द ।

ताणें कीजै हुकम जो, करी तीन चिन ख्यार्द । ।

११३. (घ) स्वामी लालदासभूत बीनक,

(व) बम्पी हंसराज, मिहिराज चरित्र, प्र० ६, चौ० १०५

(क) ५० वृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, प्र० ३०६

(ड) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ६१

नवरग स्वामी ने उनकी आयु ११ साल बताया है—

एकादश वरसके जब ही, परपी वामना घनीए तबही । ११४

• प्रो० मातावदल जायमवाल के अनुसार गुरु देवचन्द्रजी से प्राणनाथ की प्रथम मुलाकात के समय उनकी आयु १२ वर्ष, २ मास और १४ दिन की थी । ११५ इतना निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि १० वर्ष की अवस्था में प्राणनाथ ने गुरु देवचन्द्रजी की शिष्यता स्वीकार की । इसी समय उनको तारतम्य-मन्त्र देकर दीक्षा दी गई । बरसी हंसराज के अनुसार यह दिन स० १६८७ माघ शुक्ल नौमी का था । ११६ नवरग स्वामी ने सिर्फ स० १६८७ का उल्लेख किया है । ११७ लेकिन स्वामी लालदाम और ब्रजभूषण ने नमान ऋतु में स० १६८७ मागशीर्ष शुक्ल नौमी का ही उल्लेख किया है— ११८

सवत सोने सतासीए, मगसर सुदी नौम ।

मिलाप श्री देवचन्द्रजी सो, हुए दाखिल कोम । ।

मौरहसै सतासिया, अगहन नवमी शुक्ल ।

मिते धनीसो तब भये, जगत रीति तैं लुक्ल । ।

आ० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है, जब ये केवल १२ वर्ष और कुछ महीनों के थे, स० १६८७ की अगहन शुक्ल ६ को नौतनपुरी में इन्होंने देवचन्द्रजी के दर्शन किये । उन्होंने इन्हे तारतम्य-मन्त्र दे दिया । ११९ डा० गोवर्द्धन शर्मा ने कहा है, देवचन्द्रजी ने प्राणनाथजी को वचन में ही जबकि केवल बारह वर्ष के थे, प्रतिभा-सपन्न और अलौकिक तत्त्वों में युक्त पाकर तारतम्य-मन्त्र में दीक्षित किया । १२०

११४ नवरग स्वामीकृत वीतक, प्र० १०, चौ० २३

११५. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ३३१

११६ बरुमी हमराज, मिहिराज चरित्र, पृ० ६, चौ० १०६

मवत सोरह सो पुनि जानो, और सतासिय साल बखानी ।

माघ शुक्ल नौमी तिथि पाई, ता दिन मिले परम सुखदाई । ।

११७. नवरग स्वामीकृत वीतक, प्र० १०, चौ० २२

मवत मोला सतासीए आगे, जी माहेब चरने लागे । ।

११८. (अ) जानदास स्वामीकृत वीतक, प्र० ११, चौ० ४८

(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३७, चौ० ६३

११९. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६५

१२०. मर्नामधु (पत्रिका), अगस्त, १९६४, डा० गोवर्द्धन शर्मा का लेखविशेष, पृ० २२

डा० रामकुमार गुप्त ने अनुसार, बाराह वर्ष की अवस्था में अर्थात् सन् १९८७ के ग्रामगाम स्वामी श्री देवचन्द्रजी ने इन्हें तारतम्य की दीक्षा दी।^{१२१} लेकिन यह दीक्षा जिस स्थान पर दी गई थी यह कहना कठिन होगा। आज तो नवतनपुरी (खिजडा मन्दिर) श्री चाकला मन्दिर नाम के दो स्थान हैं, उनमें से किसी एक स्थान पर दीक्षा दी गई होगी। लेकिन प्रो० मानाबदल जायमदाल ने निश्चितरूप में बताया है कि, अपनी पणकुटि में (जहाँ आज प्रणामियों का प्रसिद्ध खिजडा मन्दिर है) श्री देवचन्द्रजी ने श्री मंत्रराज को "नारगम्य" की दीक्षा दी।^{१२२} श्रीकृष्ण-प्रियाचार्यजी महाराज का मन्व्य है कि देवचन्द्रजी ने निवाग स्थान आज का "श्री राजजी मन्दिर" या श्री गायत्रीभाई मेठ के निवागस्थान, जो आज का चाकला-मन्दिर है उगमें दीक्षा दी।^{१२३} आज का खिजडा मन्दिर कई दिनों के बाद बनाया गया स्थान है। अतः निर्विवाद विधान यही है। सकला है कि स० १९८७ (सन् १९३०) मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी के दिन जबकि उनहीं आषु बाराह वर्ष दो मान और दस दिन की थी, गुरु देवचन्द्र ने उन्हीं जामनगर में नारगम्यमन्त्र की दीक्षा ली और शिष्यत्व ग्रहण किया, यही सत्य है।

(उ) प्रारम्भिक सेवाकार्य

गुरु देवचन्द्रजी ने दीक्षामन्त्र प्राप्त हो जाने के बाद गोवरधनभाई और प्राणनाथ के मन में सामारिक विरक्ति उत्पन्न हुई थी। माना पिता इन दोनों भाइयों के ऐसे विरक्त भाव में चिन्तित रहने लगे। मुस्लीदाम धामी लिखते हैं, जब से श्री मेहेराज को इष्ट मन्त्र तारतम्य ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई, उनकी मन अधिकाधिक सद्गुरु श्री निजानन्द स्वामी की ओर आकृष्ट होने लगा। वे वहाँ निरन्तर आत्मचिन्तन में मग्न रहते। निरर्थक प्रत्यक्ष भाव में वे ब्रह्मानन्द ज्ञानरम का आस्वादन करते। सद्गुरु में उनकी अत्यन्त भक्ति थी। श्री निजानन्द स्वामी के प्रेमानन्द में वे कभी कभी इतने भावविभोर हो जाते कि अपनी धर्मधुन के कई दिनों तक घर पर ही नहीं जाते, भोजन करना भी भूल जाते।^{१२४} उम्मुन. उनके बीतरागी स्वभाव को बड़े भाई गोवरधनभाई की मृत्यु ने और भी बढ़ाया। परमधाम, ब्रह्मप्राप्ति आदि तत्त्वों पर ही वे निरन्तर चिन्तन करने लगे। उनके मनमें कृष्णदर्शन की इच्छा प्रबल

१२१. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी माहित्य की गुजरान के मन्त्र कवियों की देन, पृ० ११३

१२२. प्रो० मानाबदल जायमदाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ६

१२३. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी महाराज, श्रीनारगम्यनी प्रणामिका, पृ० ६१-६३

१२४. मुस्लीदाम धामी, धर्म अभिधान, पृ० ११

होनी गई। अतः जितने भी लौकिक विषय थे उन सबका उन्होंने परिखाग कर दिया तथा शरीर को कमीटी पर चढ़ाने लगे। इसी सदर्म में नवरंग स्वामी ने लिखा है—^{१२५}

छूटो मुप सबे संसारी, जतन देहके सबे बिसारी।

पान पान भोजन नही भावे, दिन रैन रोवत ही जावै ॥

इसका परिणाम यह हुआ कि उनका शरीर पीला पड़ गया और इन्द्रियो की शक्ति क्षीण हो गई। परिवार के सब उनके शरीर की क्षीणता और निष्क्रियता को देखकर चिन्तित हो रहे थे, किन्तु किसी के कहने का उन पर कोई असर न हुआ। अतः गुरु देवचन्द्रजी से प्राणनाथ को ममभाने के लिए कहा गया।^{१२६} गुरु के इस प्रकार के कष्ट और संयम का कारण पूछा तब प्राणनाथ ने कहा, मेरी यही प्रार्थना है कि आप मेरे विकारों को बना दीजिए जिससे मैं उन्हें अपने शरीर से दूर कर सकूँ और आत्मा निर्मल हो जाए। गुरु ने उनकी कई शंकाओं का निर्वारण किया तब उनको एक प्रकार का उलटा भय होने लगा कि मुझमें बड़ी भूल हुई जो धामधनी (कृष्ण) स्वरूप श्री सद्गुरुजी की साक्षान् सेवा को छोड़ कर इधर उधर शरीर कमीटी में लगा रहा और श्री सद्गुरु के साक्षात् स्वरूप पर विश्वास न रख सका। इन प्रकार वे पश्चात्ताप करने लगे। लेकिन गुरु देवचन्द्र ने उनके पश्चात्ताप को क्षणिक समझकर उनको किसी लौकिक कार्य में देना उचित समझा। अतः उन्होंने प्राणनाथ को हरिवंशपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण कूँड़ लाने के लिए अहमदाबाद की ओर जाने की आज्ञा दी। लेकिन स्वामी लालदास और ब्रजभूषण ने "अहमदाबाद" का नामोल्लेख न करते हुए गुजरात का ही उल्लेख किया है।^{१२७}

१२५. (अ) नवरंग स्वामीकृत धोतक, प्र० १०, चौ० २६-३०

(ब) प कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३१५, ३१८

(क) ब्रजभूषण, प्र० ३८, चौ० ३५

जब लीं चर्चा धामकी, भरै नीर बहु नैन।

भयो देह रंग पीत सब, मुखतें और न वैन ॥

१२६. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३८, चौ० ४७

एक भ्रात प्रयर्माह चले, अब ये भये तैयार।

देह सिखावन क्यों नही, भय उपजत सार ॥

१२७. (अ) रणछोडदास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ३६६

(ब) लालदास स्वामीकृत धोतक, प्र० १२, चौ० ४०-४१

(स) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३८, चौ० ६५

लाखों रूपया कमाये थे, परन्तु जामनगर वापस आने का नाम नहीं लेते थे। वे अपने परिजनों की सुध लेना भी बंद कर चुके थे। अतः प्राणनाथ को यह सारा वृत्तान्त सुनाया गया और खेताभाई को समझा-बुझाकर जामनगर ले आने की आज्ञा दी गई। उनका जहाज ५० दिन में अरबस्तान के बसरा बन्दर पर पहुँचा।^{१३२} वहाँ पर जाकर खेताभाई से मिले और प्रसंगगत उन्होंने इनको समझाने का प्रयत्न किया। प्राणनाथ को अपने कार्य में सफलता मिली। खेताभाई जामनगर लौटने के लिए तैयार हुए और अपनी विचारी हुई सक्ति एकत्रित करने का कार्य प्राणनाथ को सौंप दिया। वहाँ से फँले हुए लाखों रूपये के व्यापार को समेटने के कार्य में लग-भग चार वर्ष व्यतीत हो गए। इसी बीच प्रसंग में ही खेताभाई की मृत्यु हो गई। शेख सल्ला, जो बसरा का तत्कालीन शासक था, उसकी कुटुम्बि खेताभाई की संपत्ति पर थी। उसने खेताभाई की समग्र सक्ति पर मुहर लगा दी। खेताभाई की मृत्यु की खानि प्राणनाथ के मन में थी ही, लेकिन अब यह दूसरी समस्या उनके सामने उपस्थित हुई। प्राणनाथ ने शेख सल्ला को समझाने का प्रयत्न किया लेकिन असफल रहे। अतः प्राणनाथ अरब के मुलतान इमाम से शिकायत करने के लिए बसरा से बगदाद गये। वहाँ पर जाकर मुलतान में बात करने के लिए दो मास तक बहुत कुछ घोंघूँप करते रहे। अन्त में मुलतान ने उनकी मुलाकात हुई। इस मुलाकात में दोनों के बीच भारत के विभिन्न धर्म, रहनसहन, जातिधर्म तथा गुरु देवचन्द्रजी के धर्ममत की चर्चा हुई। प्राणनाथ ने भी मुस्लिम सस्कृति के मूलतत्वों का भविर्भाति परिचय प्राप्त किया। मुलतान इमाम इनके अघ्यात्मज्ञान और विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने बमरा के शासक शेख सल्ला को आदेश दिया कि खेताभाई की सम्पूर्ण संपत्ति प्राणनाथ को मुपुर्द कर दी जाए। लेकिन प्राकस्मिक ढंग में वह संपत्ति भयंकर आग में जलकर भस्म हो गई। बहुत थोड़ी चीजें बचाई जा सकी। इसी प्रसंग का उल्लेख स्वामी लालदास कृत बीतक के "अरबयात्रा" प्रकरण में स्पष्ट नहीं हुआ। लेकिन ब्रजभूषण ने "वृत्तान्तमुक्तावली" में लिखा है।^{१३४}

तीन दिवस बीते घर आये, बँशवानगर अति दाह चढाये।

सामा मृत भस्म सब कीन्हो, रूप्यो सोनी डाढा लीनों।

फँल्यो दवि इबट्ठी कीन्हों, बच्यो अग्निमुख जेपमु नीन्हों ॥

१३२. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ५

चलत जहाज फाल्गुन माही, जइये आप साज लें ताही।

नित चान्नीम दिवस के माही, पहुँचे जाइ बराख ताहीं ॥

१३४. (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक प्र० १३, चौ० १-६६

(इ) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ५६-५०

इसी समय प्राणनाथ की मदद के लिए त्रामनगर में भेजे गए रिशरी घोर श्याम (दरबन्दगी घोर गायत्रीभाई के पुत्र) बड़ी पट्टन गये । प्राणनाथ ने उनको मेनाभाई की घोड़ी मरति के साथ त्रामनगर की घोर खाना किया । लेकिन उन्होंने जाकर गुरु देवबन्दगी में प्राणनाथ के बारे में सुनी बातों की घोर दोषारोपण किया ।^{१३४} इस छोटे दिनों के बाद तब प्राणनाथ त्रामनगर के बन्दरगाह पर आ पहुँचे कि तुम्हें मेनाभाई की बहन तशातभाई की निरादत के साधारण पर द्रव्य-दीपन को जपन कर तिसः पर घोर प्राणनाथ को देख मान तब शयन में रोके गया-

गर्द बाहरी गहर माभ भई भाव्य उनके में गाभ ।

मान उठे भी उन गुरुमाने रहे प्रयोधपुरी में तारे ॥^{१३५}

प्रो० मानावदन जायमवान घोर डा० परगुगम चतुर्वेदी के अनुसार मेनाभाई का कुत्तल समाधार लाने के लिए म० १७० : में प्राणनाथ की घरय भेजा गया था घोर व बड़ी घोर बनी तब यह म०^{१३६} मुस्लीमान धामी घोर पी० कृष्ण-मूर्ति के अनुसार वे बड़ा लगभग १ वर्ष २१^{१३७} प० कृष्णदत्त शास्त्री ने बताया है कि मेनाभाई की क्रियरी हुई मरति का दृष्टी रखन में उनको ६ वर्ष तक कोई मकलना नहीं मिली थी ।^{१३८} श्यामी लावद म ने किया है^{१३९} —

चार बरस परवारने, २१ वरं धारव जब ।

मेना घोड़ीका घपने ढीरको भोन दुष्सा तब ॥

ब्रजभूषण ने भी चार मान का समय बताया है^{१४०} —

सुरभत वरस चरि तिनवीन, भये काज नहीं मनके चीने ।

मेना श्याम तथा वपु कीन्ही, प्रभु मुप्रनाथ कतु नहि चीन्ही ॥

१३५ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ६८

पहुँचे दोई धनी के पामा, कीन्ही कपट वान मय लामा ।

१३६ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ६८

१३७ (अ) प्रो० मानावदन जायमवान दूमरा प्रणाम, प्र० ५

(ब) घा० परगुगम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की मन परम्परा, पृ० ५६५

१३८ (अ) मुस्लीमान धामी, धर्म अभिधान, पृ० १८

(ब) पी० कृष्णमूर्ति अय्यर, द डिपार्टमेंट मेनेज आफ लोर्ट प्राणनाथ, पृ० ५

१३९ प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३३१

१४० श्यामी लावदामकृत बीतक, प्र० १३, चौ० १०

१४१ ब्रजभूषण वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३६, चौ० ६८

डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित और डा० मुदशंनसिंह मजीठिया के अनुसार प्राणनाथ ने विरक्त होकर अपनी इच्छा से साधुओं के साथ भ्रमण किया और अरबी फारसी, हिन्दी और संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली ।^{१४२} इस मान्यता को अन्तर्माध्य या बहिर्माध्य में समंभन नहीं मिलता । केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी ने माना है कि धर्मोपदेश की दृष्टि से उनको अरब भेजा गया था और खेताभाई पर कोई प्रभाव न पड़ने पर अल दिनो में जामनगर लौट आए थे ।^{१४३} वस्तुतः प्राणनाथ को खेताभाई के कुशल समाचार के लिए या अपनी विरक्ति के कारण या धर्मोपदेश के लिए अरब जाना पड़ा हो वंसा नहीं था । खेताभाई को वापस जामनगर लाने का कार्य ही उनको दिया गया था । स्वामी लालदास ने लिखा है कि सं० १७०३ (सन् १६४६) फाल्गुन में वे अरब की ओर गये थे और सं० १७०८ में वापस लौट गए थे —^{१४४}

सबत सत्रं सौ तिलोत्तरे मिनं, हुकुंम हुयः श्रीराज ।
गागजीभाई के कामको तुम जाओ मेहेराज ॥

माह फागुन के बीच में नाव चले जब ।
सो चालीस दिनमें पोहोचे, बराख तब ॥

सबत सत्रह सौ अठोत्तरे, हुआ एक मजकूर ।
सब सामा गई रावरमें, जिनके लिखी अकूर ॥

श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी ने उनका जामनगर वापस आने का समय सं० १७०८ वैशाख मास बताया है ।^{१४५} लेकिन रणछोडदास वीरजी के अनुसार यह समय सं० १७०८ फाल्गुन शुक्ल पंचमी का था ।^{१४६} अतः यही कहना उचित होगा सं० १७०३ (सन् १६४६) से सं० १७०८ (सन् १६५३) तक वे अरबस्तान गये हुए थे इसी कारण जामनगर से बाहर रहे । प्राणनाथ की भाषासमृद्धि की दृष्टि से इस यात्रा का महत्त्व है । कहा जाता है कि “किरन्तन” ग्रन्थ का “होका प्रकरण” भी इसी समुद्र यात्रा के समय लिखा गया था ।

१४२ (अ) डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सतसाहित्य, पृ० ७३

(ब) डा० मुदशंनसिंह मजीठिया, संत साहित्य, पृ० ६४

१४३. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, चरित्र चन्द्रिका, पृ० ५८१

१४४. स्वामी लालदासकृत वीतक, प्र० १३, चौ० १, ५, ४१,

१४५. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी, श्रीमत्तारतम्यनी प्रणालिका, पृ० ६८

१४६. रणछोडदास वीरजी, श्री पद्मधाम प्रणालिका, पृ० ३७३

घरबन्धन में जामनगर वापस घाटर त्रिग कट्ट धीर प्रेम के लिए प्राणनाथ ने घाणा रणी थी उनके ललित दर्शन तब न होने पर उन्हें बहुत दुःख हुआ। गुरु देवचन्द्रजी में भी दो म न न न मिले। इस उदासीनता से मिटाने के लिए उन्होंने "ध्रौव" राज के मन्त्रीपद म० १७१० (मृ १६५३) में प्रणय कर लिया।^{१६७} उन दिनों में ध्रौव काटियावाड का छोटा राज्य था। ध्रौव के राजा कलोजी ठाकोर ने जामनगर राज्य दीव न केजयपुर के पुत्र होने के कारण प्राणनाथ को मन्त्रीपद का स्थान दिया था। राज्य कार्य संचालन का सम्पूर्ण दायित्व सौंप दिया गया और उन्होंने सफलता में निभाया। दो वर्ष नर के पक्ष पर कार्य करने रहे।^{१६८} इस दरम्यान गुरु देवचन्द्रजी और अन्य सम्बन्धियों में जो गंभीरमभ नुई थी वह दूर हो गई। कई बार उनके मन्त्रीपद छोड़कर के जामनगर का जाने के लिए प्रार्थना किया। अन्ततः कार्यवश महमदाबाद गए हुए प्राणनाथ ने ध्रौव वापस जाने पर कलोजी राजा से मन्त्रीपद छोड़ देने की अपनी इच्छा व्यक्त की और वे म० १७१० (मृ १६५५) श्रावण कृष्ण अष्टमी के दिन जामनगर में पुनः गुरु देवचन्द्रजी के गार्निष्य में प्रा गए। इस सन्दर्भ में स्वामी लालदास और ब्रजभूषण न लिखा है ^{१६९}—

- (घ) फेर ताये गुजरातमें, कला में भागी बगामी।
सावन मंत्र भी बारीकरी, अब मैं पाउं भीव ॥
- (ब) सत्रहमें बारीकरी, भादो मास मुहाई।
कृष्णवशाई अष्टमी, पहुँच तब इन घाई ॥

(ऊ) यात्राएँ धर्मप्रचार और प्रसार

गुरु देवचन्द्रजी का अपना अल्पम समय ज्ञान हो गया था इसीलिए उन्होंने स्वामी प्राणनाथ (मिहिरराज) को ध्रौव में जामनगर बुला लिया था। निजानन्द चरितामृत^{१७०} के अनुसार प्राणनाथ न गुरु देवचन्द्र में बड़ा, हे धामधनी ! लोचिक कामकाज में तो सब प्रकार निवृत्त हो चुका, अब तो केवल आपकी जरूरत ग्रहण करनी है। यह सुनकर निजानन्द स्वामी (देवचन्द्रजी) को बड़ी प्रसन्नता हुई। वहने लगे इसीलिए मैं तुम को बारम्बार बुला रहा था। अब आप स्वतः सब प्रकार लौकिक-

१४७ हिन्दी अनुशीलन, व० १०, अ० ४, पृ० १०

१४८ स्वामी लालदासकृत बीनक, प्र० १३, चौ० ६३

कलोजी के पान नर वरम दीव ।

या उपरान्त गुजरात, घाट महीना रह मोए ॥

१४९ (घ) स्वामी लालदासकृत बीनक, प्र०, चौ० ४४

(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तपुनावती, प्र० ४०, चौ० ३२

प कृष्णवदन श.श्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६८-३५०

भार में मुक्त होकर धर्मकार्य के लिए उपस्थित हो गये, यह बहुत उत्तम हुआ। श्री इन्द्रावती स्वरूप आप को सम्पूर्ण भार सौंपे बिना धाम के द्वार पर विलासती छोड़कर मैं परमधाम को नहीं जा सकता था। इसीलिए विशेषकर के तुमको बार-बार बुलवाया। अब मैं बड़े हर्ष के साथ धर्म का सम्पूर्ण भार तुमको सौंपता हूँ, इसे अन्त तक निभाना। आने सुन्दरसाय (ब्रह्मसृष्टि, अनुयायी) सब देश देशान्तरो में नाना जाति वंशों में फँसे हुए हैं। उन सब को एकत्रित करना है। यह सब कार्य आप के द्वारा पूर्ण होगा। साकुण्डल और मकुमार, ये दो सिरदार ब्रह्मसृष्टि हैं। सुन्दरसाय सहित इनको ढूँढकर इकट्ठा करो। तब सब ब्रह्मसृष्टि का मेरा (मिलाव) होगा।^{१५१}—

फिरकें देश दिग्नि विषे, साकुण्डली मकुमार।

हूँ ही साथ सकल सहित, मेला करो धरार ॥

इस प्रकार गुरु देवचन्द्रजी ने प्राणनाथ को धर्म के प्रचार और प्रसार का दायित्वपूर्ण कार्य दिया। उन्होंने २२ दिन तक परमधाम के विविध लीला रहस्यों को यथाविधि समझाया, भूली ब्रह्मागनाओ को (ग्रजानी जीवों) त्रिष्वव्यापी धर्म अभियान द्वारा ढूँढे निबालने का कसाधारण कार्य सौंपा और उनको अपना धार्मिक दायित्व सौंपा। लेकिन इतना गौरवपूर्ण स्थान प्रणय को दिया जाना गुरुपुत्र बिहारी को अनुचित लगा।^{१५२} अतः गुरु देवचन्द्रजी ने भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी सं० १७१२ (बुधवार ५ सितम्बर, १६५५) के दिन प्राणनाथ (मिहिरराज) का अपना धार्मिक उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसी दिन उनका धामगमन हुआ। इसके सन्दर्भ में वीतककारों ने इस प्रकार का उल्लेख किया है—

(अ) सवत सत्रह वारोतरे, भादो मास उजाला पक्ष।

चतुरदशी बुधवारी भई, हुए धनी अलख ॥^{१५३}

(ब) सवत सत्रहसे बरस, द्वादस अधिक प्रमान।

भादो सुदि चौदस दिवस, समय निशीथ प्रमान ॥^{१५४}

स्वयं प्राणनाथ ने अपने गुरु देवचन्द्रजी को धामगमन का उल्लेख इस प्रकार किया है^{१५५}—

सवत सत्रह वारोतरे बरख, भादों मास उजाला पक्ष।

चतुर्दशी बुधवारी भई, सनघ मर्वे बिहारीजीको कही ॥

मघरात पीछे कियो भयान, बिहारीजीको सुघ भई कजु जान।

१५१ अजभूपण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४०, चौ० ४४

१५२ प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३५६

१५३. म्वाभी लालदामकृत वीतक, प्र० ७, चौ० १६

१५४. अजभूपण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ३४, चौ० ३०

१५५. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश, प्र० ५

उद्दिष्ट वानावरण के कारण घर्मोत्पत्ति का कार्य थोड़े दिनों तक बन्द रहा । प्राणनाथ देवचन्द्रजी के नाशपुत्र के घोर विहारी उनके विन्दुपुत्र थे । बिहारी के मन में प्राणनाथ के प्रति नेत्रोद्द्वेग भी था । अतः इन परिस्थिति को मुलभाने के लिए प्राणनाथ ने घर्मगद्दी पर विहारी को बिठाया और घर्म प्रसार एवम् प्रचार का कार्य मुद्द ने शुरू किया । नवरम स्वामी ने देवचन्द्रजी घामगमन के तीन वर्ष के बाद म० १७१४ (मन् १६४८) विहारी का गादी पर बैठना माता है^{१४१} —

वरम तीन सोढी दण देवे कोऊ बाढ़यो नही पेवे ।

नेकिन स्वामी लालदास और ब्रजभूषण ने उनी वर्ष अर्थात् म० १७१८ आदिन म म में ग दी होना लिखा है ।^{१४०} यह कार्य हो जाने के बाद निम्न मुबह शाम घर्म और जन चर्चा बढा होने लगी । नेकिन जनजागृति में आधिकमकट का अनुभव होने पर उन्होंने पिता के स्थान पर जामनगर राज्य के मन्त्रीपद को ग्रहण कर लिया । यह दायित्वपूर्ण कार्य उन्होंने म० १७१८ (ई० १६५५) में प्राप्त किया । साम्प्रदायिक द्न्दों के आधार पर ही इस तथ्य को यहाँ रखा जा सकता है । ऐतिहासिक द्न्दों में उनका कोई नामोस्मरण नहीं मिलता । इन दिनों में उन्होंने मुद्द की धाजानुसार देवचन्द्रजी के अनुशायियों का एक मेला लगाने का निश्चिन किया । इसके लिए सब सामान एकत्रित होने लगा । नेकिन इसी बात को लेकर राजा में चुगली की गई कि प्राणनाथ (मिहिरराज) ने दम्भ धनधार धी, खाड आदि सब चीजों के भण्डार अपने घर भर रगे हैं । तमाम लोगों को विन्ताना पिलाना और दान करना प्रारम्भ कर दिया है । यह कार्य राज्य की सम्पत्तियों में हो रहा है । चुगलखोरी की बात सुनकर राजा और दूसरे बजीर ने प्राणनाथ के द्रव्य-भण्डार को जप्त कर लेने का आदेश दिया और प्राणनाथ को बँड किया गया^{१४८}—

१५६. (अ) नवरम स्वामीकृत बीतक, प्र० १३, चौ० ३

(ब) प० वृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६७

बरस तीन लो दिन न उचारी, तब देखी श्रीजी साहेब विचारो ।
सम्बन मत्रह पनीनर आए, गादी थीं विहारीजी पधराए ॥

१५७ (अ) स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र०, १५, चौ० १

सवन मत्रह बारोतरे, आसोके महीने में ।

सब सायको खबर, पोहोची मेहेराजसें ॥

(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४०, चौ० ७६

सत्रहसँ वारोतरा, आश्विन मास मुहाय ।

खबर सवन मेहराज दू, पठई आप कहाय ॥

१५८. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १५, चौ० ३६

इस बात की चुगली, बजीर आगे गई ।

उन्ने कछु ना विचारिया, बात दिल मे लई ॥

सम्प्रदाय मे इस कंदखाने को "हवसा" या "प्रबोधपुरी" के नाम से पहचाना जाता है^{१५६}—

कह्यो प्रबोधपुरी वो, हवसा मय्य कुराम ।

ऋतु अपाढ मलारमे, तव बँटे इत ग्राम ॥

मुरलीदास घामी के अनुसार, उमी समय वि० स० १७१४ मे अहमदाबाद के सूवेदार कतुबखाने मे जामनगर पर चढाई कर दी, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें एक वर्ष के लिए प्रबोधपुरी मे निवास करना पडा ।^{१६०} प्रो० अमृत पण्ड्या ने उनका कंद होने के लिए दूसरे बजीर से अनमेल होने का कारण बताया है ।^{१६१} प्रो० माता-बदल जायसवाल इस सदभ मे लिखते हैं, एक धार्मिक समारोह करने की इच्छा से वही बहुत-सा सामान एकत्र किया । कुछ लोगो ने व्यर्थ ही जामबजीर मे चुगली कर दी । उम अविबेकी ने हवसा मे इन्हे बन्दीगृह मे रख दिया ।^{१६२} अत यही उचित है कि चुगलीबश ही उन्हे कंदखाने मे रहना पडा हो क्योंकि कतुबखाने की चढाई का ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता । वस्तुतः उमी समय सूवेदार की योग से जामनगर पर चढाई करने की घमबी मिलने पर जामराजा और बजीर इन्हे बन्दीगृह मे छोड कर अहमदाबाद चले गए । इतिहास के पृष्ठो पर इस प्रसंग का कोई प्रमाण नही मिलता । लेकिन, साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख हुआ है । उमी के आघार पर, यह समय स० १०१४ (सन् १६५८) का था—

मत्रहमें चौदह विषे, सूबा आयो और ।

तृपति जाम मन्त्री सहित, गये मिलन तेहि ठौर ॥^{१६३}

इस समय "प्रबोधपुरी" अपने दो भाई सामल और ऊधव के साथ स्थित प्राणनाथ को राजा से किये गये अन्वयाथ और फरबिरह का अत्यन्त दुःख हुआ । अतः प्रबोधपुरी-कंदखाने-मे वे इतने भावविभोर हो जाते कि उनके हृदय से ब्रह्मवाणी प्रस्फुटित होने लगी । इन वानियो को दोनों भाई दीवार पर लिख लेते थे, जो आज

१५६. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२ चौ० २०

१६०. मुरलीदास घामी, धर्म अभिधान, पृ० १५

१६१. गुजराती साहित्य परिषद-२० मुं अधिवेशन-हैवाल, पृ० २२२

१३२. हिन्दी अनुशीलन, व० १०, अं० ४, पृ० १२-१३

१६३. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२, चौ० १६

“राम” “प्रकाश” (गुजराती), “बलम” (गुजराती) और “पट्टरु” में ग्रन्थस्थ है। “बलम” का केवल प्रारम्भ ही वहाँ हुआ था।^{१६४} कहा जाता है कि महमदाबाद में स० १७१५ (म० १६५८) में वापस जामनगर आने पर कारावानस्थित प्राणनाथ के चमत्कारों की बातें राजा और वजीर ने सुनीं और उनको रिहा कर दिया। जामराजा ने अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी।^{१६५} लेकिन इन प्रसंग में प्राणनाथ के मन पर राजनीतिक जीवन के प्रति निरम्कार उत्पन्न हुआ।

इतिहास की दृष्टि में इनका मिथ्य अवश्य होता है कि कुतुबुद्दीन मेमणी नामक प्राणीय-शामक था। लेकिन वह मोरठ प्रदेश का शामक था। जामराजा की द० १९६४ (म० १७००) में मृत्यु होने के बाद उत्पन्न हुए आंतरिक झगड़ों को लेकर टमी कुतुबुद्दीन को नवानगर पर आक्रमण करने का सूत्रधार की ओर में आदेश दिया गया था।^{१६६} “बीतक” में दिया गए इस आक्रमण का उल्लेख इस प्रकार इतिहास में प्रमाणित होता है। तत्कालीन गुजरात का सूत्रधार कामसमान था।

राजनीतिक जीवन में घृणा होने पर भी जामराजा की ओर में राज्य के आवश्यक कार्य के लिए प्राणनाथ को स० १७१९ चैत्र शुक्ला १ ग्विवार के दिन (म० १६५६) जामनगर में जूनागढ़ की ओर गाँव बमाने के हेतु जाना पड़ा।^{१६७} प्रो० माताबदल जायसवान के मतानुसार कँदधाने (प्रबोधपुरी) में मुक्ति मिलने के बाद शीघ्र ही उन्हें राजनीतिक जीवन में विरक्ति हो गई और वे उसे त्याग कर पूर्ण रूप से धर्मजागरण के कार्य में लग गए।^{१६८} वस्तुतः राजनीति जीवन में घृणा होने पर भी वे उस कार्य में झुटकारा नहीं पा सके। लेकिन जूनागढ़ में ही उन्होंने धर्म-प्रचार का सूत्रपात व्यस्थित रूप में शुरू कर दिया था, इनका निश्चिन्त रूप से कहा जा सकता है।

नया गाँव बमाने का प्रबन्ध करने में वहाँ पर दो वर्ष व्यतीत हो गए। वहाँ पर एक बान्हजी नामक व्यक्ति प्राणनाथ के मे धर्मचर्चा सुनने आया करता था। बान्हजी वहाँ के प्रतिष्ठित विद्वान हरिजी व्यास का नौकर था। वे अचानक बीमार

१६४. वही, प्र० ४२, चौ० ३०-३७

१६५. (अ) वही, प्र० ४३, चौ० २-६

(ब) प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६८

१६६. (अ) गेजेटियर आफ बाम्बे प्रेसिडन्सी, वा० १, भा० १, पृ० २८२, २८३

(ब) सर जयुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ ओरंगजेब, भा० ३, पृ० ४०-४१

१६७. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४०२-४०३

१६८. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ३३१

हो गए और सन्निपात हो जाने के कारण उनकी परिस्थिति चिन्ताजनक हो गई । यहाँ तक कि उनके बचने की कोई आशा न थी । उन्होने अपनी अन्तिम इच्छा को व्यक्त करते हुए कहा, केवल दो बातों की कामना लेकर मैं जा रहा हूँ । एक तो जिसको मैंने स्थापित किया उसे कोई उत्थापित न कर सका और जिम्मा मैंने निराकरण किया, उसे कोई स्थापित न कर सका । यह बात कान्हजी ने प्राणनाथ से कही और प्राणनाथ हरिजी व्यास से ज्ञानचर्चा करने के लिए तैयार हुए । दोनों के बीच श्रीमद्भागवत के तत्त्वों पर चर्चा हुई । अन्ततः हरिजी व्यास शास्त्रार्थ में पराजित हुए और प्राणनाथ के अनन्य शिष्य बन गए ।^{१६६} प्राणनाथ ने यही ने गुरु की दी हुई तारतम्यमन्त्र की दीक्षा देना शुरू किया । हरिजी व्यास और प्राणनाथ के बीच हुई एक मास की ज्ञानचर्चा ने जनजाग्रति ला दी । स० १७१८ (सन् १६६१) में वे जामनगर वापस गए । इसके बाद तुग्ग ही, अर्थात् स० १७१९ (सन् १६६२) में अहमदाबाद के सूबेदार कुतुबखाने ने पुनः जामनगर पर चढ़ाई कर दी ।^{१७०} स्वदेश रक्षा के प्रश्न को विशेष महत्त्व देकर उन्होने जामनगर राज्य के प्रधान-मन्त्री पद को स्वीकार किया ।^{१७१} इस सिलसिले में अन्ततः सूबेदार कुतुबखाने के साथ समाधान करने के लिए वजीर सहित आप अहमदाबाद गये । जामनगर ने निश्चित किये गये समय पर सूबेदार को पैसे नहीं भिजवाये और इसीलिए उनको बंद किया गया । लेकिन प्राणनाथ के किसी शिष्य ने मुक्ति से अपने आपको बंदखाने में ला दिया और प्राणनाथ को मुक्ति दिला दी । इस धोखे से उनका मन उद्विग्न हो गया और वे पुनः जामनगर गये ही नहीं । वार्तिक बीतक में बताया है कि वे अहमदाबाद से जामनगर आये थे और धर्मप्रचार के लिए दीव आदि स्थानों पर भ्रमण करना शुरू किया । प्रो० माताबदन जायसवाल ने लिखा है, स० १७१९ (१६६२ ई०) में कुतुबखाने ने

१६६. वज्रभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४३, चौ० २३, ५३
रहे आप दूँ वर्ष तित, साथ कान्हजी एक ।
ब्राह्मण हरिजी व्यासकी, बात कही बिबेक ॥
शीश नबायो चरनतर, तुम हो ब्रह्मसरूप ।
मेरो भेटन गर्व तुम, धरि आयो निजरूप ॥

१७०. स्वामी लालदासकृत, बीतक, प्र० १६, चौ० ६५
सबत सबसँ उनईसँ, देस पर आयो कुतुबखान ।
उत हुभा इलहाम, थी-मोमिन पेहेचान ॥

१७१. वही, प्र० १६, चौ० ६७

फेर बीतोत्तरे जामी सत्ताक ले दीवानगीरी सब ।
सारा कसाला सिर पर, खीच लिया तब ॥

पुन जामनगर मे चढाई की । इमी समय उम मूवेदार को समभाने के लिए जाम-
वजीर के साथ श्री मेहेराज भी अहमदाबाद (गुजरात) गए; किन्तु वहाँ इनके साथ
इस प्रकार का घोखा हुआ कि राजकार्य से इन्हे तिरस्कार हुआ । तभी से मौकिक
कार्य त्याग कर पूर्ण रूप से आप धर्मजाराण के कार्य में दत्तचित्त हो गए ।^{१७२} स्वामी
लालदास और ब्रजभूषण के आचार पर यही सिद्ध होता है कि वे पुन जामनगर नहीं
गए ।^{१७३} इतिहास की दृष्टि से यह प्रसंग सही नहीं उतरना । कुतुबुद्दीन की चढाई
जामनगर पर मन् १६६४ (म० १७२०) मे हुई थी ।^{१७४} यह सम्भवित है कि
प्राणनाथ के अहमदाबाद के कंदलाने से भाग जाने के बाद इतिहास-लिखित चढाई
कुतुबुद्दीन ने की हो । प० कृष्णदत्त शास्त्री का मन्तव्य है कि सता जाम से विदा
लेकर के प्राणनाथ ने स० १७२२ (सन् १६६५) मे दीव की ओर प्रयाण किया
था ।^{१७५} लेकिन सता जाम की मृत्यु (मन् १६६४) स० १७२० मे हो चुकी
थी ।^{१७६} अतः यही सम्भव है कि उन्होंने यही मे धर्म हेतु भ्रमणकार्य का मुख्य
उद्देश्य के रूप मे प्रारम्भ किया हो ।

सं० १७२२ (सन् १६६५) मे वे दीव पहुँचे और वहा अपने पुराने साथी
जयरामभाई कंसारा के निवासस्थान पर ठहरे । दीव मे उन्होंने अपनी धर्मपत्नी
तेजबाई को बुला लिया । यहा पर बल्लभाचार्य के अनुयायियों ने उनको परेशान
किया । इस समय कुछ अरब दस्युओं ने दीव पर छापा मारा । उन्हें जो कुछ हाथ
लगा द्रव्य दौलत और तरुण स्त्रियों का अपहरण कर वे ले गए । इनमे प्राणनाथ
के अनुयायी भी थे । धर्म प्रचार और इस अपहरण प्रथा का नाश करने के लिए
उनको कच्छ की ओर प्रयाण करना पडा ।^{१७७} बताया जाता है कि दीव मे वे दो
वर्ष रहे और स० १७२४ (सन् १६६७) मे वे कच्छ के माटवीनगर मे प्रभासपाटन

१७२. प्रो० माताबदल जायसवाल, दूमरा प्रणाम, पृ० ५
१७३. (अ) स्वामी लालदासवृत्त वीतक, प्र० १६, चौ० ६८
(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४३ चौ० ६२-६४
१७४. गेजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडन्सी, वा० १, भाग १, पृ० २८३
१७५. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४१४
१७६. गेजेटियर आव बाम्बे प्रेसिडन्सी, वा० १, भाग १, पृ० २८३
१७७. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४४, चौ० २६-३०

माथी दश पाचक गये, कंद माहि टाम ।

चले आप तब कच्छको, प्रगट करन प्रभु नाम ॥

पोरबन्दर पाटन नवी, ग्राम ग्राम प्रति फेर ।

भवजलवी लहरें उठै, जगै जीव नहि टेर ॥

नबीबन्दर और पोरबन्दर होकर पहुँचे । एक दिन मांडवी, दो दिन कपर्ई, दो दिन भुज और नलिया होते हुए वे सिन्ध के प्राचीन शहर ढठ्ठा मे पहुँचे । कपर्ई मे बडे भाई हरिवंश से मिले ।^{१७६} ठठ्ठा मे १०-१२ दिन गुजारे और लाठी मे ४ दिन व्यतीत करने के बाद वे मस्कत के लिए रवाना हुए । किन्तु मौसम प्रतिकूल होने के कारण समुद्र मे जोर का तूफान आ गया । अतः १७ दिन के बाद जहाज पुनः साठी बन्दर लौट आया । वहा से पुनः वे ठठ्ठा नगर पहुँचे और इस वक्त दस माम तक वे यहीं रहे । उस समय वहां चिन्तामणि नामक कबीरपंथी महन्त रहते थे । प्राणनाथ ने उनके ज्ञान की बहुत महिमा सुनी और एक दिन उनसे मिलने गए । उनके साथ धर्मचर्चा हुई—

सुने साथ चिन्तामन, रहे कबीर धरम में ।

कीजे दीदार तिनका, सुने चरचा ऊन मुख मे ॥^{१७७}

प्राणनाथ ज्ञानपिपामु थे । उन्होने कबीर के “एक पलक ते गग जो निवसी, हूँ गयो चहुँ दिमि पानी” पद का गूढार्थ चिन्तामणि से जानना चाहा । लेकिन चिन्तामणि इसका रहस्य स्पष्ट न कर सके और जब उसका रहस्य प्राणनाथ ने समझाने की कोशिश की तब चिन्तामणि प्रभावित हो गये । कहा जाता है कि चिन्तामणि जब काशी में अपने गुरु के साथ रहते थे तब उसी पद की चर्चा चली थी । उस वक्त गुरु ने कहा जा कि इस पद का अर्थ बतानेवाला एक महापुरुष तुम्हें भविष्य में अमुक वर्ष मे मिलेगा । यह बात उन्हें आज सच मालूम हुई ।^{१७८} यहीं पर पोरबन्दर निवासी लक्ष्मणदास नामक घनी सेठ से भी प्राणनाथ की मुलाकात हुई । वैष्णव-भक्ति मे लीन रहनेवाले लक्ष्मणदास प्राणनाथ के शिष्यः

१७८ स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० १६, चौ० १५

सवत सन्नै बाईसे, दीव पधारे श्री राज ।

दोए वरस तहां रहे, सब पूरे मनोरथ काज ॥

१७९ स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० २०, चौ० ३५

हरिवंस ठाकर तहा रहे, अपने कबीले समेत ।

तहा आये वासा किया, जान धामका खेस ॥

१८० वही, पृ० २१, चौ० ११

१८१ पं० इण्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४३१

हो गए और तारतम्य-मत्र से दीक्षित हुए। वही सेठ वाद में लालदास स्वामी के नाम में प्रसिद्ध हुए।^{१८२}

प्राणनाथ अपने अल्प अनुयायी के साथ पुनः उट्टा से लाठी बन्दर होते हुए फिर से स० १७२५ (सन् १६६८) में ममकत (अरबस्तान की सीमा पर) पहुँचे। अपने धर्मोपदेश से यहाँ पर कई व्यक्तियों को अनुयायी बनाया। यहाँ पर महावजी नामक व्यक्ति ने उनको सजातीय जानकर स्वागत किया था। यहाँ पर लूटछेप के बन्धन में पड़े हुए अनुयायियों का पता लगा तो प्राणनाथ दरोगा से मिले। दरोगा ने २८ हजार रुपये की माँग की। लेकिन प्राणनाथ इस प्रथा को ही निर्मूलत करना चाहते थे, इसलिए वे कुछ देने के लिए तैयार न हुए। दरोगा ने इनके उपदेश को ग्रहण किया, लेकिन डारू दल सम्बन्धी अपने विचार वह कार्यरूप में परिणत न कर सवा। यहाँ पर वे २ वर्ष और ६ मास तक रहे—

इन भात बरस अठाइसैं, रहे मसकत में।^{१८३}

यहाँ से स० १७२८ (सन् १६७०) में अवासी बन्दर आये और तीन मास रहे। वहाँ मास मंदिरा का सेवन करनेवाले भैरो सेठ को अपने धर्मोपदेश से व्यसनों से मुक्त करवाया। भैरो सेठ के ७० हजार अर्धदान से बन्धन में पड़े हुए अनुयायियों को उन्होंने स० १७२८ में छुड़वाया।^{१८४} यहाँ पर मुलतान के दो खत्री रहते थे, जो गुरु नामक के मत में और योगाभ्यास में बहुत प्रवीण थे। उनके पास कबीर की साखियों का एक ग्रन्थ था। लेकिन कई साखियों का रहस्य वे खोज न सके थे, इसीलिए प्राणनाथ से मिलने आये थे। प्राणनाथ ने साखियों का रहस्य समझाया। यहाँ अन्य व्यक्तियों में भैरो सेठ और गोवर्द्धन भट्ट, तारतम्यदीक्षा

१८२. (अ) वही, पृ० ४४५ (पादटीप)

(ब) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, पृ० ४५, चो० ६८-८६

सदमन सेठ तहा रहे, है इनको जजमान।

भारत गीता भागवत, माहि प्रवीन प्रमान ॥

लालदास आगे भये, चतुरदाम प्रवीन।

साथ माहि दाखिल भये, प्रेम परम कुल चीन ॥

१८३. स्वामी लालदासकृत बीतक, पृ० २४, चो० ४६

१८४ प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ४६०

लेनेवालों में से मुख्य हैं । १८५ यहाँ पर वे दो-तीन मास तक रहे । १८६ स० १७२८
 वंशाग्र (सन् १६७१) में वे धवासी बन्दर से होकर कोकबन्दर और पुनः नाठी
 बन्दर आ पहुँचे । यहाँ चार दिन ठहरकर पुनः ठूठा में आए—

तहाँ चार दिन रहेकें, आए नगर ठडे । १८७

ठूठानगर में आ पहुँचने के बाद प्राणनाथ ने बिहारी को जामनगर एक
 पत्र लिखा, जिसमें लिखा कि हम कच्छ ननिया जा रहे हैं और आप जामनगर से
 नलिया आकर मिलिए । इस बार ठूठा में एक मास रहकर, लक्ष्मणपुर होते हुए
 कच्छ ननिया पहुँचे । यहाँ पर डेढ़ मास रहकर घोषा बन्दर में तीन दिन ब्यतीत
 करते हुए वे मुहाली पहुँचे । १८८ वस्तुतः प्राणनाथ ने "नलिया" में गुरुपुत्र का
 इन्तजार किया था और उम यत्न बिहारी का मांडवी (कच्छ) बन्दर पर उतरने
 का समाचार नलिया आकर संभालिया के धाराभाई ने आकर दिया । यहाँ प्राणनाथ
 और गुरुपुत्र बिहारी की मुलाकात हुई । बिहारी ने धाराभाई को धर्म से बहिष्कृत
 कर दिया था । यहाँ पर गुरुपुत्र ने प्राणनाथ ने यही बिनती की कि धाराभाई के
 प्रति उदारता दिखाई जाए । लेकिन बिहारी अपने निर्णय में अडिग रहे । दोनों के
 बीच धर्म प्रचार का प्रश्न भी निकला । बिहारी को धर्मप्रसार के लिए नगर-नगर
 भ्रमण करना पसन्द न था । अतः उन्होंने प्राणनाथ से कहा, आप भी हमारी आज्ञा
 मानो तो किसी राज्य का कार्यभार नभालो । देश में ठीक न लगे तो कच्छ में ले
 लो । इस प्रकार दोनों के बीच अन्तर पड़ता गया । नलिया से सब मांडवी आये
 और गुरुपुत्र जामनगर की ओर रवाना हो गए । १८९ प्रो० माताबदल जायसवाल

१८५. वही, पृ० ४३८

१८६. (घ) स्वामी लालदामकृत बीतक, पृ० २५, चौ० ६७
 तब मास दो-तीन भए, रजा मागी जब ।

(व) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, पृ० ४६, चौ० ७७
 इत भये जब मर्य मास, मुल बिदा बचन हुलास ।

१८७ स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० २६, चौ० २

१८८. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० २३

१८९. स्वामी लालदासकृत बीतक, प्र० २८, चौ० २४-२५

इहा सेंती चलकों, आए मंडई बन्दर ।

तहाँ साथ सब आए मिल्या, बाग में लई जागा उताराकर ॥

गए बिहारीजी खभालिए, देख दजालने किया बडासोर ।

भोमिन एक ठोर भए, इनें पोहोचाऊं जोर ॥

दे सकता । १८६ लेकिन प्राणनाथ ने इन नियमों का विरोध किया—२००

देवचन्द्र के धर्म को, हिरदे करी विचार ।
उत्तर जो त्रय वात को, समुभि परं तव सार ॥
बाह्य दृष्टि को छोड़िके, नजर करी निज नूर ।
देख्यो जित अकूर को, बरस्यो तहाँ हूँ नूर ॥
प्रगट लखी है बात तुम, भवन वधू कुन जान ।
परखो लखी वासना, दयो तारतम जान ॥
विषवा दारा वह हती, नीच अमुर की जात ।
नजर करी अकूर पर, चाई रई मु जात ॥

इस प्रकार जिम खोजीबाई को गुरु देवचन्द्रजी ने दीक्षा दी थी उसका उदाहरण देकर प्राणनाथ ने प्रत्युत्तर में लिखा कि गुरु देवचन्द्रजी के मार्ग में विषव-सखवा, स्त्री-पुरुष अथवा बेचन वर्ग विशेष के भेद को स्थान नहीं है । इस प्रत्युत्तर के साथ सूरत में लिखा गया ग्रन्थ "रज" भी भेजा । लेकिन गुम्फुत्र इस प्रत्युत्तर में नाराज हुए और ग्रन्थ भी उन्होंने जामनगर से लौटा दिया । २०१ तदनन्तर अनुपायियों के आग्रहवश प्राणनाथ ने स्वन्त्र होकर धर्म भार उठाया । इतना स्पष्ट है कि विहारी रुडिवादी और तेजोद्वेषी थे इसीलिए उनके साथ इनके विचारों का पूरा मेल नहीं बैठ सका । सूरत से ही इन दोनों के बीच तीव्र विरोध हुआ । फिर भी प्राणनाथ ने निरपेक्ष भाव में धर्म प्रचार और प्रसार कार्य जारी रखा । यहाँ पर ठूठा के सधमण सेठ (स्वामी लालदास) सं० १७२६ (सन् १६७२) आ पहुँचे । २०२

१६६ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४६, चौ० ५-६

हम तुम बिन यह तारतम, बवहू कहै न कोइ ।
नीच जानि को तारतम, बहिये नाही दोइ ॥
पुन कोऊ विषवा वधू, ता प्रति कही न आप ।
ये तीनों बातें करी, उत्तम बड़े प्रताप ॥

२०० वही, प्र० ४६, चौ० २३-२४

२०१. स्नेह सखी की बीतरु, प्र० ५५

तुम सम्बन्ध हमारी छोड़्यो, आत्म सबध श्री देवचन्द्र से जोड़्यो ।
ग्रही सबै उनकी तुम बातें, छोड़ी सब हमरी विरहाते ॥

२०२. स्वामी लालदास कृन बीनक, प्र० २८, चौ० १०७

तहा ने नाउ चटके, आए बदर सूरत ।
सबत सत्रै से ओदनती से, एह आए पोहोची सूरत ॥

बाद में भीमजीभाई भट्ट, जो कट्टर वेदान्ती थे और प्राणनाथ के अनुयायी बन गए थे, उनके घर पर प्राणनाथ और तेजवाई की पूजा की गई। लेकिन धाज जो स्थान "मंगलपुरी" के नाम से अभिहित होता है, संभवतः शिवजीभाई का मकान होगा। क्योंकि शिवजीभाई की सेवा से प्रसन्न होकर प्राणनाथ अपने युगल स्वरूप में वहां गए थे और वही उनकी प्रतिष्ठा की गई थी—

बन्दर सूरत पचशत चले भुजा गहि साथ ।

मन्दिर शिवजी ग्रह अचल धर करि धानो नाथ ॥ २०३

इस प्रकार उन्होंने सूरत को धर्मयज्ञ महा अभियान सकल्प की जन्म भूमि के रूप में सस्थापित किया। यहाँ पर वे १७ मास तक रहे।

सं० १७३१ (संव १६७४) में सूरत में २५० अनुयायियों को लेकर औरंगजेब की धर्मांधता का नाश करने के हेतु दिल्ली जाने के लिए अहमदाबाद की ओर वे रवाना हुए। मरुच होते हुए अहमदाबाद पहुँचे और वहाँ चार दिन ब्रह्मज्ञान चर्चा की। चर्चा से सिद्धपुराटन में २२ दिन ठहरे। यहाँ पर उन्होंने धर्मचेतना ला दी। भगवान् उपाध्याय को जाग्रत करके केशवदास भट्ट ने धर्म मंदिर की स्थापना की। वहाँ से पालनपुर हीकर राजस्थान अन्तर्गत मेड़ना में वे आ पहुँचे। प्रो० माताबदल जायसवाल ने उनके मेड़ना आगमन को सं० १७२१ (१६६४ ई०) माना है। २०४ वस्तुतः वे उक्त साल में ही मेड़ना आ पहुँचे थे।

मेड़ना में लाभानन्द नाम का एक यति था। उनके साथ ब्रह्मज्ञान की चर्चा प्राणनाथ ने शुरु की। वह यति योगविद्या और चमत्कारिक प्रयोगों में प्रवीण माना जाता था। उनके साथ १० दिवस तक ब्रह्मज्ञान की चर्चा हुई और अन्ततः वह पराजित हुआ। अतः प्राणनाथ पर वह बहुत क्रोधित हुआ और तन्त्र मंत्र से उनको मार डालने का प्रयत्न करने लगा—२०५

दस दिन चरचा में भए, ठौर ठौर हुआ जव बध ।

तब कही माहात्म मेरो गयो, मेरे मारग को परबंध ॥

मारों दाव के पहाड में, इनकों डारों उलटाए ।

मबदतों के मंत्र से, भात भांत किए उवाय ॥

२०३. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४६, चौ० ८१

२०४. (अ) प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ५

(ब) हिन्दी अनुशीलन, व १०, अ० ४, पृ० १४

२०५. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३१, चौ० ४३-४४

यहां पर राजाराम धीरे भाभन भाई, जो सगपति मेट धे, इन दोनों ने परिचार मन्त्र प्राग्नाथ का निष्पन्न स्वीकार किया। उन्होंने सगभग दन वर्ष तक महम्मदो धनुषायीयो की धम्र यम्त्र मे सेवा की। राजाराम ने धानी हरेन्नी मे ही मन्दिर की स्थापना करवायी। २०१ मूठ दिन मेडना मे प्राग्नाथ ममजिद के नामन म विरत। ममजिद के मीनार पर पहर पर मुन्ना नमात्र के निमित्त बांग दे रहा था। बांग के शब्द उन्होने ध्यान पूरुंठ मुन। य वनाम के गूडार्ग पर चिन्तन करने लग। गहन स्वरुपाय र परगन् व दन मत्तर पर पहुँच कि कुरधान धीरे पुराण के मून लना म बोई विशेष धन्य नही है। धरने निष्प मावदाम से उन्होने बनाया कि सबसे पहल नारतम ज्ञान की महना धीरे उगरे माय नवमा की प्राध्यायित परना की मूठी धीरेगत्रेय को समझानी चाहिए। म्गून (मुहम्मद) गारेव न ब्रह्ममृष्टि (इस्लाम के मन म धर्म धत्रीम ने नाशिल हो। धानी एक जमान) के स्वरुप की समझन के निर, वनाम धागाह बनना है कि जो मोमिनो के इत्म दवाही का धीरे उनकी दाधन का नवमगार न होगा, यन नही की गिरायन का भी नलवगार नही हो महना। यदि धीरेगत्रेय दन धान की बचूव कर ले तो फिर दूगरे लोंगो की समझने कठिनता न होगी। २०० यही पर महाराजा जगवन्तसिंह की धर्मनिष्ठा मुनन पर प्राग्नाथ ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कठिबद्ध होन की संरणा देने हुए दो पत्र गोरखदेव भट्ट के द्वारा पेशावर भेजे। मेडना मे चार माम मुन्नार कर धीरे इस्लाम की तरीयन के माय मुद्ध करने का निष्पन्न करके वे सं० १७३० (मन् १६७५) मे मेडना मे मधुरा होकर वृन्दावन पहुँचे। श्रीकृष्ण की श्रीढास्यती वृन्दावन मे उन्होने रागलीला के रहस्यो का विशद विवेचन किया। त्रिये मुनकर राधावल्लभो सम्प्रदाय के धनुषायी प्रभावित हुए। फिर धागरा होकर वे दिल्ली पहुँचे। उम वक्त धागरा सुरक्षित स्थान था धीरे इगर्ण (‘‘वाईजीराज’’) तेजवार्द तथा धन्य स्थियो को धागरा मे छोड कर वे दिल्ली की धीरे खाना हुए। २०० इम प्रकार सं० १७३३ (मन् १६७६) मे वे सर्व प्रथम

२०६. ब्रह्मभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५०, चौ० ३७

यहां साथ सबके विरे, राजाराम प्रवीन।

नित धर मन्दिर थापना, कीन्ही आप नवीन ॥

२०७. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द, चरितामृत, पृ० ५२२-२३

२०८. ब्रह्मभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५१, चौ० १५-१६

चले मेरता शहर ले, करि विचार नृप एह।

वृन्दावन मधुरा गये, लप्यो धागरा जेह ॥

रहिके बहा कटुक दिन, दिल्ली पहुँचे जाइ।

ठट्टाके मायी यहा, रहे सचामक धाइ ॥

दिल्ली आये। प्रो० माताबदन जायसवाल लिखते हैं, वे गोकुल, मथुरा और आगरा होते हुए सन् १६७८ (सं० १७३५) में दिल्ली पहुँचे। २०^६ वस्तुतः प्रथम बार दिल्ली में वे विट्ठलगोरपुरा नाम के मुहल्ले में एक हवेली में उतरे थे। अपने ध्येय की पूर्ति के लिए सब तजवीज करने लग गए। इसी 'समय ठूठा में करीब ५० साथी (अनुयायी) और सूरत से मुकन्ददास (नवरम स्वामी) आदि यहाँ आ पहुँचे। यशवन्तसिंह से मिल कर निराश होकर गोबर्द्धन भट्ट भी यहाँ आ गया। यहाँ छ मास तक प्राणनाथ ने अपना ब्रह्मज्ञान का सभापण जारी रखा। अनन्तर अन्य अनुयायियों के आग्रहवश उक्त मुहल्ला छोड़ कर वे सब "लाल दरवाजा" नामक मुहल्ला में चले गए। २१० यहाँ पर प्राणनाथ की औरंगजेब की कट्टरता की बातें मिलती रही और उम आधार पर उनको निश्चय हो गया कि औरंगजेब की कट्टरता को हटाने के लिए कोई युक्ति रचे बिना सफलता प्राप्त न होगी। अतः एकान्त चिन्तन के लिए वे यहाँ से शाहजहाँपुर बोडिया के लिए रवाना हो गए। यहाँ से १०-१२ दिन के बाद उन्होंने औरंगजेब को अपने वश में लाने के लिए इस्लाम की महत्ता प्रदर्शित करता हुआ एक पत्र लालदाम और भीमाभाई के द्वारा औरंगजेब पर लिख भेजा। इस कार्य में असफलता की शका उत्पन्न होने पर कान्हजी भाई नामक अनुयायी द्वारा दिल्ली में लालदास और भीमाभाई से कहलवाया कि हमारे आने के बाद ही औरंगजेब को पत्र देने का कार्य करना। प० कृष्णदास शास्त्री ने प्राणनाथ का एक माम तब बोडिया में ठहरना बताया है। २११ स्वामी लालदास लिखते हैं—

मास चार इत रहें, फेर चले हरद्वार। २१२

लेकिन उनका वहाँ चार मास तक रहना स्वाभाविक लगता है और लालदासजी की पुष्टि मिलती है। वहाँ से वे हरिद्वार गये। हरिद्वार में सं० १७३५

२०६. (अ) प्रो० माताबदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ५

(ब) हिन्दी साहित्यकोश, भाग २, पृ० ३३१

२१०. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३२, चौ० २८, ३१

विट्ठल गोरके मुहल्ले, सैयदकी हवेली में।

तहा जी माहेब रहन हैं, मैं खबर करों उनसें ॥

इन हवेली मिनें, रहे माम छं।

तहा से लालदरवाजेको, ले चला उतके ॥

२११. प० कृष्णदास शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ५२६

२१२. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० ३३, चौ० २६ (यहाँ पर, हजारीलाल की प्रति में "मास एक इत रहे" मिलता है। लेकिन यह सही नहीं है।)

(सन् १६७८) में कुम्भ का पर्व था। प्राणनाथ ने भी वहाँ जाना आवश्यक समझा। लेकिन कुम्भ मेंना जगें उमने कुछ दिन पहले वृन्दावन में चारों सम्प्रदाय और अष्टादश ब्राह्मणों का एक सम्मेलन मितना था। इस सम्मेलन में कुम्भमेले के लिए नियम बनाये जाते थे। लेकिन प्राणनाथ इन बातों में अज्ञात थे। अतः उन्होंने हरिद्वार में जाकर प्रज्ञान की धर्म चर्चा शुरू कर दी। इस समय अन्य मतावलम्बियों ने विरोध किया कि अष्टादश सम्मेलन की धोर में भ्रष्टा-निग्न न निकर किरने का अधिकार प्राप्त नहीं है। अतः इस सम्मेलन को मुनभाने के लिए शास्त्रार्थ का, जिनको मुरलीदाम घाभी न मर्तं धर्म परिपद् कहा है,^{२१३} आयोजन किया गया। इस शास्त्रार्थ में रामानुज सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय और माध्व सम्प्रदाय अर्थात् चारों सम्प्रदाय के प्रतिनिधि, दशनामी सन्यासी, पद्मासत्र के दार्शनिक आदि उपस्थित थे।^{२१४} प्रारम्भ में प्राणनाथ ने देवी भागवत, निगपुराण, मुण्डक उपनिषद् श्रीमद्भागवत, श्वेताश्वतर उपनिषद् यजुर्वेद आदि शास्त्रों के महारे विविध धर्मों और सम्प्रदाय की मकीर्णता का दिग्दर्शन कराया। तदनन्तर, चारों सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों ने अपने अपने मत के अनुसार विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, और द्वैतवाद के प्रतिपादनार्थ अपनी साम्प्रदायिक दर्शनपद्धति प्रस्तुत की। इसके बाद दशनाम सन्यासी अपना मत प्रकट करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने चार मठों की स्थापना, मठाधीश के पद, दशनामों की रचना के बारे में अपने दीक्षामन्त्र के आधार पर अपनी पद्धति की व्याख्या की। तदनन्तर नैयायिकमतदर्शन, मीमांसामतदर्शन, साम्प्रदायिक दर्शन, वैशेषिकमत दर्शन, पानत्रलमतदर्शन और वेदान्तमतदर्शन के प्रतिनिधि विद्वानों ने अपने अपने मत का समर्थन किया। प्राणनाथ उक्त सभी विद्वानों के सामने उनके धर्म मत की चुटियाँ प्रस्तुत करते थे और उनके लिए उन विद्वानों के पास कोई प्रत्युत्तर एव समाधान नहीं था। उक्त विद्वानों में गुरु से ही क्रोध था और अब उनभन पैदा होने पर प्राणनाथ से अपने साम्प्रदायिक विचार व्यक्त करने की प्रार्थना की—^{२१५}

२१३. मुरलीदाम घाभी, धर्म अभियान. पृ० ४६

२१४. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५२, चौ० २-३

सन्यासी दश चारि सप्रदा, पट दरसन सब मिनियो ।

वरन चारि अरु चारयो आश्रम, उन इक सषट मिनियो ॥

सबत सत्रहमी पैतीसा, हरद्वार को मेला ।

वरन आश्रम पद्धत दरसन, तिनमें मतगुरु खेला ॥

२१५. स्वामी लालदास वृत्त बीतक, प्र० ३५, चौ० ५७-५८

अपने मत हम सब कहे, अब आप कही साखात ॥

कौन शास्त्र मे कहा कही है, हमे कही दे साख ।

नई राह है तुमारी, सो कही हमे विध भाग ॥

तदनन्तर, प्राणनाथ ने गुरु देवचन्द्रजी के मिद्धान्तो को कठोपनिषद्, हरिवशपुराण, छान्दोग्य उपनिषद्, पुराणसंहिता, अथर्ववेद यजुर्वेद, मुण्डकोपनिषद्, बृहदारण्यका उपनिषद्, पंचपुराण, भविष्यपुराण, माहेश्वरतन्त्र, स्कन्दपुराण, ब्रह्मोपनिषद्, श्रीमद्भगवतगीता, बाराहमंहिता, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मविद्योपनिषद्, भविष्यदीपिका आदि शास्त्रो के आधार पर स्वधर्म के मूल निद्धान्त स्वलीलाहृत ब्रह्मवाद मे मुख्य मूत्र अनन्यपराप्रेमलक्षणा भक्ति का विवेचन किया । इस विवेचन से उन विद्वानों पर प्राणनाथ का खूब प्रभाव पडा । इसके बाद भागवत स्कंद १०, अ० ८७, भविष्यदीपिका अ० ३, पुराणसंहिता आदि शास्त्रों के आधार पर उपस्थित विद्वत्समाज ने सर्वसम्मति से प्राणनाथ को "विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध" स्वरूप स्वीकार किया और उन तिथि को, अर्थात् वैशाख कृष्ण एकादशी, स० १७३५ को उसी नाम से "विजयाभिनन्द बुद्धजी" शाका की घोषणा की ।^{२१३} आज भी साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे उक्त शाका का उल्लेख रहता है ।

इस प्रकार, हरिद्वार मे चार मास व्यतीत करके वे पुन मथुरा होकर दिल्ली आए । उन्होने औरंगजेब को समझाने का और उसके जघन्य अपराधो का अहिंसात्मक ढंग से रोकने का दृढ निश्चिन किया । अत दिल्ली से अपने सारे समुदाय के साथ वे अनूपशहर मे आये और वहाँ पर एक हवेली को अपना निवास स्थान बनाया । स्त्रियों को तथा अन्य अनुयायियो को यही छोडकर के वे फिर से दिल्ली गये और वहाँ पर शाहगज मे रहने लगे । प्रो० माताबदल जायसवाल के अनुसार, हरिद्वार में चार मास रहकर पुन अपने धर्म युद्ध को पूरा करने के उद्देश्य से दिल्ली लौट आए और लाल दरवाजे के पास रहने लगे ।^{२१७} वस्तुतः थोडे दिनों के बाद शाहगज से निकसकर वे लालदरवाजे की एक हवेली मे रहने गए थे—^{२१८}

आये शहर अनूपते, साह गज के माहि ।

गये इच्छते ते दरशने, लाल द्वार है जाहि ॥

अब प्राणनाथ ने इस्लाम धर्म के मूलतत्त्वों के सहारे ही औरंगजेब के

२१६. प० कृष्णादत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ६८८

२१७. (क) प्रो० माताबदल जायसवाल, दूमरा प्रणाम, पृ० ६

(ख) हिन्दी माहित्यकोश, भाग २, पृ० ३३१

२१८. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५४, चौ० ५

हिमात्मक हृदय का परिश्रम करने का माला दिया । कुरान का अध्ययन करने के लिए उन्होंने स्वामी मालदास और गोवर्धन भाई को जिमी मोनवी के पास भेजा । लेकिन इसी बात को लेकर मालदास और गोवर्धनभाई के बीच भगडा हुआ । मालदास कुरान का आधार लेने के पक्षपाती थे जबकि गोवर्धनभाई बट्टर वेदान्ती थे । घन गोवर्धन भाई को मूरत और भीमभाई व मुकुन्ददास (नवरत्न स्वामी) को उदयपुर जाने की प्राणनाथ ने आज्ञा दी ।^{२१६} स्वयं घनूमाह्वर की घोर रवाना हुए । यहीं पर कुरान के विद्यार्थी पर मनद ने ३० प्रकरण विगे घोर इनको घोरंगरेव के पास मुना । क लिए अरबदन नामक व्यक्ति को दिन्वी भेजा । नेत्रबदन दिन्वी गया और वही तारुन जुमा मस्जिद के पास जहाँ पर बादशाह नमाज की घाया घा और हजारा मुगलमान जमा थे—इसे जोर में पुकार पुकार के मनदें माने सगा । लेकिन ये मनदें हिन्दी में बिया गयी थी इसीलिए मुगलमानों पर विशेष प्रभाव न पडा । प्राणनाथ भी दो-चार दिन के बाद दिन्वी में घा पहुँचे । नेत्रबदन से परिचयित जानने पर उन्होंने मालदास को नेत्रनेमान के पास भेजा और बादशाह के माथ मुनाजान करने की इच्छा प्रकट की । लेकिन इस कार्य में दो मास तक कोई सफलता न मिली । अब वे लालदरवाजे में उठकर रोहितागान की मराय में घाकर ठहरे । यहाँ कायम मुन्ना में उन मनदों का फारसी श्रावण बरबाया और गेस मीराजी का एक हिस्सा भी फारसी में निम्नवाकर बादशाह और बादशाह के दाम्तों के पास भिजवा दिया । लेकिन इसका कोई असर न हुआ । उन्होंने कुरान का अध्ययन कायम के महारे शुद्ध किया । मराय में वे दुलीचन्द की हवेली में जाकर ठहरे और वहाँ में जिमी एकान्त स्थान में बँठकर, सब की राय लेकर उन्होंने निश्चय किया कि ५ रक्के (दिव्य मंत्र) लिखकर तैयार किये जाएँ और उन्हें बादशाह के स्वाम घादमियों को दिया जाए । इस प्रकार ५ रक्के बान्हूजी भाई के हाथ में दिये गये और जिन-जिन को देना था सब के नाम भी बता दिये गए । लेकिन इस कार्य में असफलता मिली । अतः उन्होंने एकदिन किमी बाग में अपने अनुयायियों को एकान्त में बुलाकर निश्चय किया कि घर्म के लिए यदि मरना भी पडे तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं, परन्तु घरने मन्त्रों को बादशाह तक पहुँचाना है ।^{२२०} इस प्रकार निश्चय कर, जुमा मस्जिद के ऊपर गये और मीठियों पर बँठकर सब प्रकार

२१६. स्वामी नवरगहन बीतक, प्र० १६, चौ० २६

हमें भेजे उदयपुर यहा थे, घ्राए निरमलदास संग तहाने ।

घनूमाह्वर छोड्योहम एठाही, घ्राए उदयपुर जाही ॥

२२०. स्वामी मालदासवृत बीतक, प्र० ३८, चौ० १०-११

का भय और सकल्प-विवल्न छोड़कर ऊँची आवाज में कुरान के भावार्थ की सनदों को गाना शुरु कर दिया। इसके पीछे प्राणय यही था कि कोई उन्हें पकड़ कर बादशाह के पास ले जाए। लेकिन इच्छित नहीं हुआ। अन्ततः एक स्वका दरवार के द्वार पर रात्रि के समय विपका दिया गया। प्रातः काल होते ही बादशाह को स्वके फी वास मालूम हुई। वे काजी पर खोपिन हुए, क्योंकि काजी ने यह बात नःमुनी तब यह कार्य हुआ। अतः शहर में डिंडोरा पिटवा दिया गया कि जिसकी फरियाद हो वह जुम्मे के दिन जुम्मा मस्जिद में बादशाह से भिन्न ले। लालराम और निर्मलदास अपना स्वका लेकर गये। लेकिन काजी ने मुलाकात नहीं होने दी। तदनन्तर वे चांदनी चौक की एक हवेली में ठहरे। अथ १२ आदमियों को चुना गया जो पुनः जुमा मस्जिद में जाकर सनदें गाते रहे। इस प्रकार करते ही काजी के जरिये औरगजेब को समाचार मिला कि १२ आदमी भिन्नना चाहते हैं। इस मुलाकात में इन १२ व्यक्तियों ने अपने उद्देश्य को बादशाह के सामने स्पष्ट कर दिया। बादशाह के मन में प्राणनाथ के दर्शन की इच्छा जागृत हुई। लेकिन इस्लाम काजी ने उनको काफ़िरो से स्वरूप नहीं मिलने की सलाह दी। इन १२ व्यक्तियों को नजरकंद कर लिया गया। प्राणनाथ को यह समाचार मिलने पर दुःख हुआ। लेकिन उन्होंने शेरबदल द्वारा उन शिष्यों को यही कहलवाया कि धर्म युद्ध करके सब का मुख उज्वल बनाए रखना। बाद में कार्यवश वे कामा पहाड़ी कामवन होते हुए आमेर के लिए रवाना हुये। आमेर के राजा विष्णुसिंह को इस धर्म युद्ध के लिए उत्साहित करने का उन्होंने प्रयत्न किया। लेकिन विष्णुसिंह तैयार न हुआ। २२१ "ब्रजभूषण" ने ही "विष्णुसिंह" का नामोल्लेख किया है, विष्णुसिंह से मुलाकात होने का उल्लेख नहीं है। लेकिन प्राणनाथ के तत्कालीन शिष्यों ने, अर्थात् स्वामी लालदास और स्वामी नवरंग ने, अपने "वीतक" ग्रंथ में "विष्णुसिंह" का उल्लेख नहीं किया। इतिहास के अनुसार भी "विष्णुसिंह" का राजा होना सिद्ध नहीं होता। इतिहास के अनुसार, २२२ तत्कालीन आमेर के राजा मिर्जा जयसिंह थे। हाँ, सन् १६६० में रामसिंह के बेटे विशनसिंह को आमेर का राज्य मिला था। वह नौ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इस विष्णुसिंह को विशनसिंह माना जाय तो वह ई० सन् १६६६ से १७०० ई० तक इस स्थान पर रहा और १७०० ई० में काबुल में मारा गया था। अतः प्राणनाथ की आमेर यात्रा ई० १६६० के बाद हीनी चाहिए थी। लेकिन वंसा नहीं माना जा सकता क्योंकि तत्कालीन उदयपुर के राजा राजसिंह का उल्लेख सभी

२२१. १०. कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ७१३

२२२. टॉडकृत राजस्थान का इतिहास, पृ० ६३६-६३७

बीतकारो ने लिया है^{२२३} और इतिहास से भी राजसिंह की उपस्थिति सिद्ध होती है।^{२२४} संभव है कि "विष्णुसिंह" (विसनसिंह) प्राणनाथ की घामेर-यात्रा के समय कुमारावस्था में हो और प्राणनाथ ने, "ब्रजभूषण" के कथनानुसार, उसको पत्र लिखा हो। यहाँ वे वे मागानेर में दो-चार दिन ठहर कर "पोहड़" नामक गाँव पहुँचे। इस प्रकार आठ मास तक दिल्ली में सत्याग्रह चलाया और जनशक्ति के प्रयोग बिना धर्मरक्षा का कार्य कठिन लगने पर वे हिन्दू राजाओं को एकत्रित करने के प्रयत्न में लगे रहे।

यहाँ पर इतना कहना उचित होगा कि दिल्ली के प्रसंगों का कोई नामोल्लेख इतिहास के पृष्ठों पर नहीं मिलता। फिर भी 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में इस प्रकार का अंश है २२५

A crowd of Hindus that gathered in Delhi, blocking the road from the forgate to the Jami mosque and appealing to the emperor to withdraw the tax, was trodden down by elephants when they did not disperse in spite of warning

पोहड़ गाँव में उदयपुर से निकले हुए मुकुन्ददास प्राणनाथ से आ मिले। यहाँ पर दस दिन गुजारने के बाद वे लोग स० १७३६ (सन् १६७६) में उदयपुर गये। यहाँ आगरा से तेजबाई आदि 'साय' को बुला लिया और दिल्ली से लालदास आदि १२ सत्याग्रही भी आ पहुँचे। उदयपुर का राणा प्राणनाथ की ज्ञान चर्चा से अवश्य प्रभावित हुआ, लेकिन औरंगजेब का सामना करने के लिए तैयार न हुआ। यहाँ ४ मास ठहर कर वे दुधलाई होकर स० १७३७ (सन् १६८०) के प्रारंभ में मन्दमोर पहुँचे। यहाँ उनकी ज्ञान-चर्चा सुन कर कई हिन्दू और मुसलमान उनके अनुयायी हो गए। यहाँ से औरंगाबाद के राजा भावसिंह हाडा को सचेत करने के लिए उन्होंने मुकुन्ददास को भेजा। मन्दोसर में आठ मास तक रहकर सीतामऊ और नौनाई होने हुए वे अकालिकापुरी (उज्जैन) पहुँचे। यहाँ २२ दिन व्यतीत करने के बाद वे पुनः नौनाई गए और वहाँ से लूनेरा होकर बुढानपुर पहुँचे। यहाँ से वे

२२३ (अ) स्वामीलालदासकृत बीतक, प्र० ४८, चौ० ६

(ब) स्वामी नवरगहन बीतक प्र० चौ० ३४

(क) ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ६०, चौ० ६३

२२४ जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भा० ३, पृ० ७-८

२२५. Ed Richard Burn, Cambridge History of India, Vol. IV, p. 242.

श्रीरंगबाद गए । राजा भार्वांसिंह हाडा देश धर्म रक्षार्थ तैयार हो गया था । लेकिन वह कुछ कार्य करे उससे पहले ही उसकी मृत्यु हुई । यहाँ वे ४ मास रहे और पुनः बुझानपुर लौट आए । सं० १७३८ (सन् १६८१) में वे वहाँ में याकोट गए । यहाँ पर ४ मास गुजारने के बाद वे कापस्तानी पहुँचे । वहाँ २० दिन निवास करने एलचपुर, देवगढ़, रामटेकरी में धर्मोपदेश करते हुए वे रामनगर गए । यहाँ केतकी नदी के घाट पर गणेश महन्त के मठ के समीप एक स्थान पर दो साल तक रहे । यहाँ पर हरिसिंह, मुजानसिंह, किशोरसिंह, सूरतसिंह और देवकरन जैसे राज्य परिवार के सदस्य उनके अनुयायी हुए । सूरतसिंह व देवकरन बुन्देला छत्रमाल के दो भतीजे थे । एक बार देवकरन ने प्राणनाथ ने प्रस्ताव रखा कि अगर आपका वह उपदेश छत्रमाल तक पहुँच जाए तो वे आप के वचनों को अवश्य ग्रहण करेंगे । वे भी धर्म रक्षा के लिए निक्ल पडे हैं लेकिन उनको परमवश्यकता मार्ग दर्शक मद्गुरु की है । १२ साल में महापुरष से मिलने का व्रत उन्होंने ले रखा है । हमें लगता है कि आप के हाथों में ही यह कार्य पूरा होगा ।

इसी समय पर रामनगर में भयकर बीमारी फैल गई और प्राणनाथ के कई अनुयायियों की मृत्यु हो गई । दम्याँन औरंगजेब को करामात की शंका होने पर प्राणनाथ को हूँड निकालने का हुक्म निकाला । पुरदलगान सूबेदार को हुक्म मिलने पर उसने शेख खिदर को रामनगर भेजा । उसके साथ आया हुआ भित्तारीदास प्राणनाथ से मिलने गया । उन्होंने उसे पुराण और कुरान के मुताबिक विश्वरचना और विश्वविनाश के चिन्ह बताये । इस ज्ञानचर्चा में थू तीन दिन तक लीन रहा । प्राणनाथ में दीक्षित हो जाने के बाद ही वह शेख में जाकर मिला । शेखखिदर मिलने गया और वैसे ही प्रभावित हुआ । भित्तारीदास सपरिवार यही पर रह गया ।

देवकरन स्वयं मऊ गया और उसने छत्रमाल से मारा समाचार कह सुनाया । रामनगर के राजा के आदेशानुसार प्राणनाथ सं० १७३६, मृगशीर्ष शुक्ला दशमी (सन् १६८२) में रामनगर से गढा और बिलहरी होते हुए अगरिया पहुँचे । यहाँ पर छत्रमाल का प्रार्थनापत्र लेकर निकला हुआ देवकरन आ पहुँचा । अत प्राणनाथ अपने ५००० अनुयायियों के साथ पन्ना के लिए रवाना हुए ।

उनके पन्ना-प्रवेश का समय प्रो० माताबदल जायसवाल ने सं० १७४० (सन् १६८३) बताया है और आ० चतुर्वेदी, डा० गोवर्द्धन शर्मा, मिथीलाल शास्त्री

किं शेर अफगन की नियुक्ति "चपत के पुत्रो" का दमन करने के लिए ई० १६८३ में की गई थी।^{२३६} वास्तव में शेर अफगन को मुड़ में पराजित करने के बाद छत्रसाल महाराज "मऊ" में ही प्राणनाथ का धर्मोपदेश सुनते रहे और वहीं पर छत्रसाल और राणी देव कुँवरी ने तारतम्यमन्त्र ग्रहण किया था।^{२३७} बाद में प्राणनाथ चैत्र माह स० १७४० (सन् १२८३) में पन्ना आये। थोड़े दिनों के बाद राजा भी सपरिवार पन्ना आ पहुँचे। वहाँ पर अपने निवासस्थान चौपड़ा हवेली में बड़े सम्मान के साथ प्राणनाथ को पालकी में बिठाकर ले गये।^{२३८} प्राणनाथ और तेजबाई की राजभवन में युगतस्वरूप में सिंहासन पर प्रतिष्ठा की गई और उनकी अनन्य-भाव से आरती उतारी गई।^{२३९} विजदशमी के पुण्यपर्व पर छत्रसाल को उन्होंने महाराजा पद से विभूषित किया और लौकिक तथा अलौकिक शक्ति के रूप में तलवार दी। महाराजा पद में विभूषित किये जाने की बात अन्य राजममुदाय में फैल गई। उनमें चंदेरी के दुर्गसिंह, दलीपुर के दलपतिराय, भोरछा के मुजानसिंह और गढा के पहाडसिंह ने कडा विरोध किया।^{२४०}

प्राणनाथ के साथ आये हुए अनुयायियों के लिए छत्रसाल ने एक स्थान पसन्द किया जो आज "बगलाजी का मन्दिर" नाम से प्रसिद्ध है। छत्रसाल ने यहाँ से थोड़ी दूर पर अपना महल बनवाया और उमें ही अपना स्थायी निवास बनाया। राज्य का मुख्य स्थान यही पद्मावतीपुरी पन्ना बन गया। सब धर्म के अनुयायियों के समाधान हेतु एक चर्चासभा का आयोजन भी किया गया और उसमें अन्य पण्डितों से पराजित होने से प्राणनाथ का प्रभाव और भी फैल गया।

स० १७४३ (सन् १६८६) में छत्रसाल की प्रार्थना से प्राणनाथ बुन्देलखण्ड के भिन्न-भिन्न राज्य और प्रदेशों में धर्म प्रचार के लिए छत्रसाल को साथ लेकर निकले। वे देवगढ, गढा, भोरछा, पडवारी, रीढलडील पहुँचे। यहाँ के राजाओं को हराकर के छत्रसाल ने अपनी सत्ता स्थापित की। बाद में यमुनातट की ओर मुड़े और जहाँ औरंगजेब की सत्ता स्थापित थी। उन्होंने भाँसी और जालान पर अपनी सत्ता स्थापित की। यमुनातट पर स्थित कालपी होते हुए वे जलालपुर पहुँचे। इतिहास के पृष्ठों पर इस सदर्भ में प्राणनाथ का नामोल्लेख नहीं मिलता। लेकिन छत्र-

२३६ डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देल, पृ० ५८

२३७ प० कृष्णदत्त श स्त्री, निजामन्द चरित्रामृत, पृ० ७४६

२३८ ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ५०, चौ० २७

२३९ वही, प्र० ६५

२४० वही, प्र० ७६

साल की इस यात्रा एवम् विजय का प्रमाण मिलता है।^{२४१} वहाँ पर आलिम-फाजिल काजियो के साथ मानवीव तत्वों के आधार पर क्यामत तथा पाच भाति की पैदाइश के बारे में चर्चा हुई। उन्होंने प्राणनाथ को साक्षात् "इमाममेहदी अल-हिवसल्लम" समझा और औरंगजेब को एक मजहरनामा लिखकर भेज दिया। कहा जाता है कि औरंगजेब पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि युद्ध के लिए भेजे गए रण-मस्तख़ा को वापस बुला लिया। इतिहास की दृष्टि से यह बात उचित सिद्ध नहीं होती।

सं० १७४४, चंद्र रामनवमी (सन् १६८७) में प्राणनाथ अपने अनुयायियों के साथ चित्रकूट पहुँचे।^{२४२} सं० १७४५ के प्रारम्भ (सन् १६८७ के उत्तरार्ध) में वे वापस पन्ना आ गए। बाद में एक मास के लिए बिजावर गए और वहाँ रासलीलाओं का उद्घाटन किया। इसके बाद उन्होंने अपने स्थायी धर्मकेन्द्र मुक्तिपीठ-पद्मावती-पुरी धाम की स्थापना की।

(ए) चमत्कारी प्रसंग

भुक्तो, सतों या साधुओं के जीवन को लेकर समाज में कई कथाएँ, मान्यताएँ प्रचार में आती हैं। उनमें से कल्पना और सत्य को अलग करना मुश्किल बन जाता है। वस्तुतः भारतीय जनमानस श्रद्धा से एक कदम आगे बढ़ता है, तब अन्धश्रद्धा से उत्पन्न कई बातें महापुरुषों के जीवन के साथ जोड़ दी जाती हैं या चमत्कारी परिधाम में छोटे से प्रसंगों को देखा-समझा जाता है। प्राणनाथ का जीवन भी ऐसी जनमान्यताओं से अस्पृश्य नहीं रहा। उनके जीवन में कई चमत्कारी घटनाएँ घटित होने के उल्लेख मिलते हैं। लेकिन यहाँ पर हम उनमें से प्रमुख घटनाओं को देखेंगे।

जामनगर के कंदखाने में जब प्राणनाथ को कैद किया गया था तब एक चमत्कारिक घटना घटित हुई।^{२४३} उनके मुँह से बानियाँ निकल रही थी और वे रामलीला की रामतीक बर्णन करके अखण्ड स्वरूप का बर्णन कर रहे थे, तब साक्षात्स्वरूप (श्रीकृष्ण) सामने प्रकट हो गये। दिव्यावेश का प्रकाश हुआ। उस वक्त मिश्री के टुकड़ों की बरसात होने लगी। पास के घर में रहनेवाली बजीर की स्त्री आदि ने इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर ही बजीर के अहमदाबाद से लौटकर आने पर प्राणनाथ को सत्कारपूर्वक तत्काल मुक्त करने की प्रार्थना की थी। कहा जाता है कि इसी कारण प्राणनाथ को तुरन्त ही कंदखाने से मुक्ति दी गई थी।

२४१. डा० भगवानदास गुप्ट, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० ५६-६०

२४२. प० वृष्णदत्त शास्त्री निजानन्द चरितामृत, पृ० ७८८

इन्द्रिदार के कुम्भ मेंने में प्राणनाथ अपने शिष्यों-अनुयायियों के साथ जब गए तब उनके आगमन के साथ ही कैदगाने की चट्टी मुद-व-मुद चलने लगी। इस आघार पर अन्ध मनों को लगा कि हमारा उद्धारक देवता या पट्टेचा है। चौकीदार यह देखकर दग रह गया और उसने दौटकर श्रीगजेश्वर को सूचिन किया कि कोई मिद पुरुष हिन्दुओं में आ गया है।

प्राणनाथ ने इन्द्रिदार में प्रवेश करते ही अपने शिष्यों की आदेश दे रखा था कि श्रीगजेश्वर जहा हो वहाँ में उमको लाना। यह कार्य लालदाम को मौँगा और प्राणनाथ ने एक 'लकड़ी' (दण्ड) दी। प्राणनाथ ने लालदाम को सूचना दी कि इस लकड़ी को जिन वक्त तुम जमीन पर पटकोगे, उमी वक्त तुम्हारा काम बन जाएगा।

जहा मुनतान नमात्र पढ़ता था वहाँ पर लालदाम पहुँच गए। मुनतान की को देखकर उनको लगा कि बादशाह भी जानकार है। उन्होंने "जय श्री प्राणनाथ की" कहकर उस लकड़ी को जमीन पर पटक दिया। बादशाह इसमें इतना डर गया कि उमको चढ़ के साथ आकाश में उडन का अनुभव होने लगा। बादशाह नुरान ही दिन्नी कि और खाना हो गया। २४६

कहा जाता है कि जब प्राणनाथ गमनगर आ पहुँचे थे तब दिन्नी में एक चमत्कार देखने में आया। बादशाह श्रीगजेश्वर दरवार में गया और अपने मिहासन पर बैठने लगा तो शाही मिहामन के उपर उमे "मिह" बैठा नजर आया। जिसे देख कर बादशाह पीछे हट गया और उमकी बैठने को हिम्मत न पडी। लोगों ने पूछा, हट्टर! आप पीछे क्यों लोट आए? बादशाह ने कहा, मुझे मिहामन पर सिह नजर आ रहा है। लोगों ने कहा, आपको ऐसा भ्रम हो गया है। वहा पर कोई नहीं है। होना तो हमें क्यों दिन्वाई न पडता। इस प्रकार कहकर बादशाह को बैठाना चाहा। जैसे ही बादशाह मिहामन पर बैठने लगा, सिहासन उलट गया और बादशाह गिर पडा। इस घटना में दरवार में बडी हलचल मच गई। दरवार के जितने भी उमगव, खलीफा और मुन्ना बाजी थे सब मिलकर बहने लगे, हट्टर, यह सब जाड् उमी फकीर (प्राणनाथ) का है जो बारम्बार क्यामन का मुकद्दमा और अपने इमानमेहदी होने का पैगाम भेजता रहा है। जब उसकी बात कबूल नहीं की गई तो आपको मौक बनकर अपनी बातों को कबूल कराने के वास्ते यह सब करामान बता रहा है। निहाजा ऐसे जुन्मी फकीरों को तो जरूर पकड कर सजा

करनी चाहिए। बादशाह के दिल में एक तो दहशत समा चुकी थी। दूसरे इमाम मेहदी के दीदार में रहानी फायदा उठाना चाहता था। इसलिए बादशाह को उस फकीर को किसी प्रकार की सजा देने की बात पसन्द नहीं आयी। किन्तु उस फकीर के आने पर दीदार का लाभ अवश्य होगा, इस प्रकार निश्चय प्राणनाथ को बिना किसी विस्म की तकलीफ दिए, खुशी के साथ अपने पास हाजिर करने का औरंगजेब ने हुक्म दिया। कट्टर और धर्मांध औरंगजेब का हृदयपरिवर्तन कराने वाला कोई चमत्कारी तत्व प्राणनाथ में था, ऐसी मान्यता सम्प्रदाय में है।^{२४५}

(ऐ) महाकवि बिहारी-प्राणनाथ मुलाकात

हिन्दी साहित्य के इतिहास या ग्रन्थों में प्राणनाथ का महाकवि बिहारी से मुलाकात होने का उल्लेख नहीं मिलता। मं० १८६१ में असनी के ठाकुर कवि ने अपने आश्रदाता काशीनिवासी देवकीनन्दन के नाम पर "सतसैया-वर्णायं" टीका लिखी थी। इस टीका में बिहारी का विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है और उन्होंने सतसैया के सम्बन्ध में बताया है कि वह इनकी (बिहारी की) पत्नी की बनाई हुई रचना है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसी "सतसैयावर्णायं" का संदर्भ लेकर, प्राणनाथ-बिहारी मुलाकात का प्रसंग इस प्रकार रखा है।^{२४६} बिहारी की पत्नी बड़ी कवयित्री थी। वे जयपुर में साधारण ब्राह्मण की भाँति वृत्ति पाया करते थे। एक बार जब जयपुर वृत्ति लेने गए तो महाराज को नई ब्याह लाई रानी के प्रेम में पड़ा पाया। वे महलों में कभी दरबार तक भी न आते। बेचारे को लौट आना पड़ा। उन्होंने यह समाचार जब पत्नी को सुनाया तब उसने तुरन्त "नहि पराग नहि मधुर मधु" दोहा बनाकर उन्हें उल्टे पाँव जयपुर भेजा। जब उक्त दोहा महाराज के पास पहुँचा तो वे महल से बाहर निकले और "अनुरीभर" मोहरें दी। साथ ही कहा कि इसी प्रकार दोहा बना कर माया करो तो तुम्हें प्रति दोहा एक मोहर मिलेगी। उन्होंने पत्नी में सब समाचार आ सुनाया। उसने १४०० दोहे बनाए और १४०० मोहरे प्राप्त की। उन्हीं १४०० दोहों में छोटकर ७०० की सतसैया तैयार की गई। इसे लेकर पत्नी आज्ञानुसार वे महाराज छत्रसाल के दरबार में पहुँचे। सतसैया उन्हें दिखाई गई उन्होंने जाँच के लिए उसे अपने धार्मिक गुरु प्राणनाथजी को दिया। प्राणनाथजी साधु थे इसी लिए शृंगार की कविता को उन्होंने घृणास्पद कहा। वे बेचारे अपना मुँह लिये लौट आये। पर पत्नी कब धुँकने वाली थी। उसने बिहारी को उल्टे पैरों

२४५. (अ) प० कृष्णदास शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ७३५-७३६

(ब) प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, सिनगर।

२४६. प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बिहारी की वाग्विभूति, पृ० ४६-४७

किन् नीटाया और कहा कि महाराज मे जाकर कहना कि पत्नी मे युगलकिशोरजी के मन्दिर मे प्राणनाथजी की कविता और मनसैया रात मे रखी जाय । जिन पर भगवान के हस्ताक्षर हीं जाएँ वही प्रमाणिक मानी जाय । ऐसा ही किया गया । मनसैया पर ही हस्ताक्षर हुए । इधर वे कुपके मे उड ग्राए, आकर पत्नी को सब सन्नाचार सुनाया । महाराज ने खोत्र कराई तो कुछ भी पना न लगा । तब उनके यहा पत्र भिजवाया । पत्र क उत्तर मे पत्नी ने ये दोहे लिख भेजे :

नौ अनेक अवगुन भरी चाहे चाहि बुनाय ।
जो पनि मपनि हू बिना जदुपनि राखे जाय ॥
दूहि भजन प्रभु पीठि दे गुन-विस्तारन-वाला ।
प्रमदन निगुन निकट ही चगरग गोपाल ॥

दूकरा दोहा प्राणनाथजी के पत्र के उत्तर मे था महाराज ने यह उत्तर पठा तो बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बिहारी को बहुत मे श्राम दिये ।"

डा० रामधर मिश्रा ने बिहारी के मदर्भ मे फँसे हुए गजर विद्यापीठ का संश्लेष किया है, २४७ लेकिन इन्होंने बिहारीप्राणनाथ मुनाकान के लिए कोई विधान नहीं किया । वे गौन ही रहें हैं । उन्होंने भी पं० अ ब्रिवाद्दत्त व्यास के मतानुसार बताया है कि बिहारी पत्नी के राजा छत्रमान के दरवार में भी गए थे तथा उन्होंने पुरस्कार प्राप्त किया था । छत्रमान के यहाँ निवाज, रत्नेश, पुन-पोलन, विजदानिनन्दन, लाल हरिकेश, पवन, प्राणनाथ कवि आदि कई कवि उपस्थित थे । उन वक्त बिहारीनाथ उनके यहाँ पहुँचे । २४८

लेकिन मन्द यही है कि स्वामी प्राणनाथ ने ई० १६२३ (उ० १७४०) के समय मे ही पत्नी प्रवेश किया और बाद मे वहाँ स्थिर हुए थे । लेकिन कविवर बिहारीनाथ की मृत्यु का समय स० १७२०-१७२१ प्राय सभी विद्वानों ने मान्य रखा है । २४९ अत्र यही कहना उचित होगा कि बिहारी और प्राणनाथ के जीवन-काल को देखते हुए उक्त मुनाकान को अर्थमय ही मानना चाहिए ।

(श्री) अन्तिम समय और धामगमन

चित्रकूट मे आपन पत्नी आ जाने के बाद प्राणनाथ को अपने अन्तिम समय का ज्ञान हो चुका था । अत्र अत्र वे रातदिन निरन्तर ब्रह्मज्ञान चर्चा में ही लगे

२४७ डा० रामधर मिश्रा, कविवर बिहारीनाथ और उनका युग, पृ० १०६-१०८

२४८ वही, पृ० ७६

२४९ डा० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २२७

रहते थे। अपने अन्तिम दिनों में उन्होंने छत्रसाल को धर, अक्षर और प्रक्षरातीत ब्रह्म का पूर्ण परिचय कराया। तदनन्तर उन्होंने स्वधाम के ध्यान में लीन होने के निमित्त सोचना शुरू किया। मुरलीदास धामी लिखते हैं, २५० मृत्यु से पहले ही उन्होंने सारी व्यवस्था कर डाली थी और धर्म-अभियान की जिम्मेदारी छत्रसाल को तथा धर्म-अभियान के इतिहास का काम स्वामी लालदास को सौंप दिया था। लेकिन पं० कृष्णदत्त शास्त्री के अनुसार यही संभव है कि ये सारी व्यवस्था बाद में ही हुई हो। क्योंकि जब उनका धामगमन हुआ। तब छत्रसाल "मऊ" में थे। २५१

उनकी मृत्यु के सदरभ में विद्वानों में विभिन्न मतव्य हैं। डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डा० सुदर्शनमिह मजीठिया, रमणिक श्रीपतराय देमाई, डाह्याभाई देरासरी डा० उपा पाण्डेय, श्यामसुन्दरदास, जाजं प्रियतन, शशिकान्त शर्मा, डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, के० का० शास्त्री, और मिश्रबन्धु उन परमधाम वास के बारे में मौन रहे हैं। "चरोतर सर्व सग्रह" में उनकी मृत्यु का समय स० १७६१ बताया है। २५२ डा० रामकुमार वर्मा ने स० १७७१ का उल्लेख किया है। २५३ डा० अम्बाशकर नागर ने इनकी अन्तिम लीला का समय सन् १६७५ और डा० उपाध्याय ने १७१४ ई० माना है। २५४ मिश्रीलाल शास्त्री और मुरलीदास धामी ने स० १७५१ श्रावण कृष्ण चतुर्थी प्रातःकाल चार बजे धामगमन बताया है। २५५ प्रो० कृष्णमूर्ति अय्यर ने शुक्रवार २६ जून ई० म३ १६६४ (स० १७५१) का समय दिया है। २५६ आ० परशुराम चतुर्वेदी ने कहा है, इनका देहान्त स० १७५१ की श्रावण कृष्ण ३ को रात की पिछली दो घड़ी रहते हो गया। २५७ प्रो० मातावल जायसवाल के अनुसार,

२५०. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६२
 २५१. पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ८३१
 २५२. स० पुरुषोत्तमदास छ शाह-चन्द्रकान्त फू० शाह, चरोतर सर्व सग्रह, पृ० ८२४
 २५३. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७८
 २५४. (अ) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, स० २०१५, व० ६६, अं० २, पृ० ६३८
 (ब) डा० त्रिषवम्भरनाथ उपाध्याय, सन्त-वैष्णव काव्य पर तान्त्रिक प्रभाव
 पृ० २६२
 २५५. (अ) माहित्यमंदेश, सन्त अक, १६५८, पृ० ६८
 (ब) मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६२
 २५६. P. Krishnamurty Iyer, The Devine message of Lord Pran-
 nath, p. २०
 २५७. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६७

१७५१ वि० प्रापाद वदी ८ को रात्रि के चार बजे उसी इहोना ममाम हुई ।^{२५८}
 प० कृष्णदत्त शास्त्री ने वि० म० १७५१ श्रावण कृष्ण तृतीया की रात्रि के प्रतिम
 प्रहर में इनका परमधाम वाम होना बताया है ।^{२५९} हमे मिथीलाल शास्त्री, मुरली-
 दाम धामी, प० कृष्णदत्त शास्त्री का मन ही ममीचीन जान पड़ता है । इसी तिथि
 को सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त है । चू कि रात के चारह के बाद नवीन तिथि नग
 जानी है । कुछ लोगो ने श्रावण कृ० तृतीया माना और कुछ ने चतुर्थी ।
 स्वामी लालदाम ने लिखा है^{२६०}—

तीन भई रात घड़ी चौद लीं, उपरान्त भई चौथ जब ।

दोइ घड़ी बाकी रही, समयो अन्तर्धानको तब ॥

प्रो० अमृत पट्टा, ^{२६१} मणिशकर करसन जी ^{२६२} दद और चरोनर सर्व-
 मग्रह के ^{२६३} अनुसार उसकी इहोना ममाम्पि जामनगर या मूरत में नहीं हुई ।
 उनका परमधाम वाम पक्षा में ही हुआ है ।

(श्री) प्रमुखशिष्य

प्राणनाथ धारममन के अनन्तर उनके आसन पर किसे प्रतिष्ठापित किया
 जाय यह समस्या उनके अनुयायियों के सामने उत्पन्न हुई । अन्ततः प्राणनाथ के
 धारणीमग्रह की उम स्वान पर प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया गया । उम समय
 प्राणनाथ की रचनाएँ पृथक् पृथक् रूप में थी और उनकी क्रमबद्ध करने का कार्य
 प्राणनाथ के प्रमुख शिष्य केशवदान को सौंपा गया । प्रो० भातावदल जामनवाम
 और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है ।^{२६४} सम्प्रदायिक
 मान्यतानुसार, प्राणनाथ अन्तर्धान के दो मास के अन्दर केशवदान ने यह कार्य पूर्ण
 कर दिया था और प्राणनाथ के जन्म दिवस अर्थात् कृष्ण चतुर्थी के दिन बड़े ममा-
 रोह के साथ पत्रा के बगलाजी मन्दिर के निहासन पर प्राणनाथ के धारणीमग्रह

२५८. न० धीरेन्द्रवर्मा ब्रजेन्द्रवर्मा, हिन्दी माहित्य, द्वितीय भाग, पृ० ४६०

२५९. प० कृष्णदत्त शास्त्री, त्रिजानन्द चरितामृत, पृ० ८३१

२६०. स्वामीलालशमकृत बीनके, प्र० ७ चौ० २०

२६१. अन्वष्ट आनन्द, जुलाई, १९५६, पृ० ५१

२६२. मणिशकर करसनजी दवे, महानुजगलना मनो अने महन्तो, पृ० ७२

२६३. मं० पुष्पोत्तम शाह, चन्द्रकान्त शाह, चरोनर सर्वमग्रह, पृ० ८०४

२६४. (घ) हिन्दी माहित्यकोश, भा० २, पृ० ३३२

(ब) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उनगे भारत की मान परम्परा, पृ० ५६८

को प्रतिष्ठित किया गया । २६५ उमी प्रकार, अपने दूधरे शिष्य स्वामी लालदास को प्राणनाथ ने अन्तिम लीला में पहले ही गुरु देवचन्द्र में लेकर पद्मा तक के धर्म-कार्य आदि को लेकर एक ग्रन्थ—“वीतक” लिखने की आज्ञा की थी । कहते हैं कि प्राणनाथ का धामगमन के पीछे पचमी के दिन में स्वामी लालदास ने उक्त ग्रन्थ को लिखना शुरू किया और श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिवस पर उसको पूर्ण कर दिया था । २६६ प्राणनाथ के जन्मदिन पर आयोजित समारोह में महाराजा छत्रसाल ने धर्मप्रचारयोजना प्रस्तुत की और पंजाब, नेपाल, बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, आसाम आदि प्रांतों तक प्रणामी-सम्प्रदाय के प्रसार एवं प्रचार करने का निर्णय लिया गया । २६७ इसी आधार पर स्वामी नवरंग को राजस्थान में और जीवनमस्ताना को कान्यकुब्ज में धर्मप्रचार के लिए भेजा गया था । वस्तुतः केशवदास, स्वामी लालदास महाराजा छत्रसाल, स्वामी नवरंग और जीवन मस्ताना को सम्प्रदाय के प्रचार हेतु जिम्मेदारीपूर्ण कार्य किये थे, इसी आधार पर उन्को प्रमुख शिष्य माना जा सकता है । लेकिन समय-समय पर प्राणनाथ ने अन्य शिष्यों को भी जिम्मेदारी पूर्ण कार्य सौंपा था । औरंगजेब के पान जिन बारह शिष्यों को उन्होंने भेजा था उसमें लक्ष्मण भाई, शैल बदलभाई, वायम मुल्ला, भीमभाई, सोमजीभाई, नागजीभाई, खिमाभाई, दयारामभाई, चिन्तामणि, चवलदास, गंगाराम और बनारसीदास का उल्लेख मिलता है । २६८ उमी प्रकार “निगमार्थप्रदीप” कार भट्टाचार्य, मुकुन्दस्वामी और स्वामी लक्ष्मणदास की भी उनको प्रमुख शिष्यों में अर्न्तगत माना जाता है । २६९ स्वामी लक्ष्मणदास और लक्ष्मणभाई एक ही हैं । फिर भी इतना निश्चित है कि साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उनके प्रमुख शिष्यों की विस्तृत सूची नहीं है और जहाँ पर अन्य कई शिष्यों का नामान्नेख हुआ भी है, उनको प्रमुख शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता ।

(अं) प्राणनाथ की रचनाएँ

प्राणनाथ की रचनाओं के सदर्भ में भी आ० रामचन्द्र शुक्ल और आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे गणमान्य विद्वान अपने हिन्दी साहित्य इतिहासों में मौन

२६५. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ८३१-८३२

२६६. वही, पृ० २८१

२६७. मुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ८६

२६८. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्दचरितामृत, पृ० ७०६ (पादटीप)

२६९. श्री प्राणनाथ सदेश (पत्रिका) श्री पद्मावतीपुरी महात्म्याक, व० ९, अ० १, पृ० ८

रहे हैं। डा० नगेन्द्र ने भी प्राणनाथ का उल्लेख करके ही मतोप मान लिया है, इनकी वानियों के लिए भीन ही रहे हैं।^{२७०} वस्तुतः प्राणनाथ और उनकी रचनाओं का सर्वप्रथम नामोल्लेख ता श्रेष्ठ एफ० एम० घाउज को ही मिला है।^{२७१} लेकिन प्राणनाथ की एक ही रचना "क्यामतनामा" का ही उन्होंने शुद्ध रूप में उल्लेख किया है और कुछ ग्रन्थों के नाम प्रशुद्ध दिये हैं। मिथवन्धुओं ने प्राणनाथ, विजयभिनन्दन और महामति का प्रलग-प्रलग नामोल्लेख करते हुए इनकी रचनाओं के घनगण (१) क्यामतनामा (२) राज-विनोद (३) ब्रह्मवाणी (४) वीरतन (५) प्रगटवानी (६) बीस गिरोहों का बाव (७) पदावली (८) परिश्रमा (९) सम्बन्धसागर (१०) वेदात वीरतन को प्रथम प्रैवापिक रिपोर्ट और चतुर्थ प्रैवापिक रिपोर्ट के आधार पर गिनाया है।^{२७२} श्यामसुन्दरदास ने उसी प्रकार इन्द्रामती और प्राणनाथ को भिन्न-भिन्न मानते हुए भी उनकी रचनाओं का नामोल्लेख नहीं किया।^{२७३} डा० पीताम्बरदत्त वट्टवाल ने इन के ग्रन्थ "कलजमेशरीक" का उल्लेख करते हुए लिखा है इसके अनिश्चित उन्होंने प्रगटवानी, ब्रह्मवाणी, बीस गिरोहों का बाव, बीस गिरोहों का हकीकत, वीरतन, प्रेमाहेशी, सारतम्य और राज-विनोद ये ग्रन्थ भी लिखे हैं जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। इम्पीरियल गेजेटियर ब्राव इंडिया के आधार पर उन्होंने "महातग्याल" नामक ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए उसकी "कलजमेशरीक" ग्रन्थ में अभिन्न माना है।^{२७४} गभवन उन्होंने "कुल-जमस्वरूप" ग्रन्थ को बिना देगे ही प्रगटवानी आदि रचनाओं का उल्लेख भिन्न डा० हीरालाल लेख-विशेष के^{२७५} आधार पर किया है। साथ ही साथ "पदावली" नामक रचना को प्राणनाथ दपती को समुक्त रचना माना है।^{२७६} उसी प्रकार डा० अम्बाशकर नागर ने लिखा है, इस दपती ने मिल्बीजुनी भाषा में १४ ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें "कलजमेशरीक" विशेष प्रसिद्ध है।^{२७७} डा० श्यामसुन्दर शुक्ल

- २७० स० डा० नगेन्द्र, हिन्दी माहित्य का वृहत् इतिहास (रीतिकालःरीतिवृद्ध) पृष्ठ भाग, पृ० १८
- २७१ एशियाटिक सोसायटी ब्राव बंगाल, वा० ४८, भा० १, १८३६, पृ० १७१-१८०
- २७२ मिथवन्धु, मिथवन्धुविनोद, भा० २, पृ० ४३६, ६८६, ८८७
- २७३ श्यामसुन्दरदास वी० ए०, हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, पहला भाग, पृ० १३-६१-६२
- २७४ डा० पीताम्बरदत्त वट्टवाल, हिन्दीकाव्य में निगुणं सम्प्रदाय, पृ० १३३
- २७५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका खांज रिपोर्ट अंक १६-२४-२४ स० १६६३
- २७६ डा० पीताम्बरदत्त वट्टवाल, हिन्दीकाव्य में निगुणं सम्प्रदाय, पृ० १३३
- २७७ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, व० ६३, अ० २, पृ० १३८

इनकी रचनाओं के संदर्भ में लिखते हैं, २७८ गमग्रन्थ, प्राणप्रथ, पट्टाणु, कलश, सबन्ध, किरतन, खुलासा, प्रकरण इलाही दुल्हन, मागरनिगार, बोसिगार, सिधी-भापा, मारफतमागर, कयामतनामा, प्रगटबानी, ब्रह्मबानी, प्रेमपहेली, तारतम्य और राजबिनोद आदि । “कलजमेशरीफ” भी इन्हीं की रचना है, जो ध.मीपंथ का प्रमुख दर्भग्रन्थ है इसके अतिरिक्त अन्जीरा राम, वीतक, परिक्रमा प्रकरण, और विराट चरितामृत भी इन्हीं की रचनाएँ हो सकती हैं । “पद वली” को इन्होंने भी प्राणनाथ दंपति की समुक्त रचना माना है । २७९ डा० मुदशनसिंह मजीठिया ने भी इनकी १४ रचनाओं के अतिरिक्त ‘कलजमेशरीफ’ को सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ समझा है । २८० डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने इसी संदर्भ में लिखा है, आपकी रचनाओं की संख्या १४ कही जाती है जिस में महत्वपूर्ण ग्रन्थ “कलजमेशरीफ” है । २८१ डा० मावित्री मिन्हा के अनुसार प्राणनाथ दंपति द्वारा एक बृहद्काय ग्रन्थ लिखा है जिसके अन्तर्गत किताब जम्बूर, वेहदवाणी, दूधपानी का बेवरा, श्री भागवन को सार, पट्टाणु मरजाद पक्ष, परगटबानी, पट्टाणु, पट्टाणुनी कलश, वारहमासी, किताबतौरते, संंधे, कीर्तन, खुलासा फुर्मान, ग्विलवत, परिक्रमा, आठो सागर, कयामत-नामा छोटी, कयामतनामा बड़ी और मारफतसागर, रामतरहस्य गायक ग्रन्थों को संकलित किया गया है । २८२ गुजराती विद्वानों ने प्राणनाथ की रचनाओं का नामोल्लेख, सम्भवतः इनके सम्पूर्ण वंशीमाहितर से अज्ञात रहने के कारण अल्पांश में ही किया है । श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री ने १४ ग्रन्थों की संख्या दी है, नाम नहीं । फिर भी इतना स्पष्ट किया है कि ये रचनाएँ ही ‘कुलजम’ नामक ग्रन्थ में सम्प्रहीत हैं । २८३ केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी ने कलश और “कुलीयमस्वरूप” ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है । २८४ डा. ह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी ने २८५ इनके कलश, सिन्ध, वेतान्दवाणी, ब्राह्मरीकीर्तन, बड़ासिगार छोटासिगार, मारमत सागर, खेलवत, खुलासा, परमधामनु वर्णन ग्रन्थों का उल्लेख किया है । के० का० शास्त्री, ने वारह-मामी, वैराट-वर्णन, श्रीसाधजीनो अणुगार पट्टाणुवर्णन और हिन्दी-गुजराती कविता

२७८. डा० श्याममुन्दर शुक्ल, हिन्दीकाव्य की त्रिगुणधारा में भक्ति, पृ० ३१
 २७९. वही, पृ० २२
 २८०. डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, सन्त साहित्य, पृ० ६४
 २८१. डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्त साहित्य, पृ० ७३
 २८२. डा० मावित्री मिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवियत्रिया, पृ० ८४-६०
 २८३. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, बंजणवधर्मनो सक्षिप्य इतिहास, पृ० ४१२
 २८४. केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी, धर्म चरित्रिका, पृ० ५८१, ५८३

का नामोन्नेय किया है ।^{२२९} रमणिक श्रीपतराय देसाई ने ब्रह्मज्ञानना पदो, बंराट-वर्णन, गगनीना, पट्टकृतुवर्णन, द्वादशामाम, कलन (निधी), बडासिगार, मार-मतमागर, मेनवतसुलासा, परमधाम वर्णन, क्यामतनाभुं और पडमग्रह का नामो-त्नेय किया है ।^{२३०} जनकशंकर मनुशंकर दवे ने कलन, वेदान्तवाणी, ध्यागरी कीर्तन बडासिगार, छोटसिगार, मेनवम सुलासा और मारमतमागर का नामोन्नेय किया है ।^{२३१} कचरानाल मोती ने कलन, वेदान्तवाणी ध्यागरी कीर्तन, बडासिगार, छोटसिगार, मारमतमागर, मेनवत सुलासा और परमधामवर्णन को इनके रचित ग्रन्थों में लिनाया है ।^{२३२} प० वेदमित्र ठाकोर ने प्रणामी सम्प्रदाय के विरोध में लिखी हुई एक पुस्तक में प्राणनाथ की रचनाओं के नाम दस प्रकार दिये हैं— राम-कीर्तन, पट्टकृतु, प्रशाशक, कलन, मनध, कीर्तन, सुलासा, गिलावन परकरमा, मागर, सिन्धी, सिगार, मारफत और कथायन ।^{२३३} इस प्रकार गुजराती विद्वानों ने मार-मतमागर जैसे गलत नामोन्नेय किया है और हिन्दी के कई विद्वानों ने श्री भागवत को मार जैसे प्रकरण-विशेष को भी गलत ग्रन्थ मान लिया है ।

यन्तु प्राणनाथ का साहित्य होशवाणी और बेहोशवाणी के रूप में विभा-जित किया जाता है । गुरु की श्रेष्ठा और विरह ने प्राण ही भाष प्रस्फुटित होने वाली वाणी को सम्प्रदाय में बेहोशवाणी या जोशवाणी के नाम में अभिहित किया जाता है । "कृतज्ञमस्वका" में सप्रतीक रचनाओं की वाणी बेहोशवाणी समझी जाती है । तदनन्तर उपदेश के रूप में कही गयी वाणी होशवाणी मानी जाती है । साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, बिभी चुगभी के फलस्वरूप जब उनको जामनगर के कंदखाने (प्रबोधपुरी-हवसा) में रखा गया था तब गुरु विरह और वीतरागी भावना में बेहोशी में वानियाँ फस्फुटित होने लगी । जैसे, इस्लाम के अनुसार "कुरान" ईश्वरप्रेरित

-
- २२५ डाह्याभाई पीताम्बरदाम देरासरी, गुजरातीशोए हिन्दीसाहित्यमा प्रापेनो फालो, पृ० १२
- २२६ केशवराम काशीराम शास्त्री, गुजराती हाथप्रतोनी सकलित यादी, पृ० ११
- २२७ रमणिक श्रीपतराय देसाई, प्राचीन कविओ अने तेमनी कृतिओ, पृ० २२, २६५, १५१
- २२८ जनकशंकर मनुशंकर दवे, हिन्दीना विवाभमा गुजरातीओनो फालो, पृ० १४१
- २२९ फ वंन नदीपत्र प्रका मर्च १९४० पृ० ३१७
- २३० प० वेदमित्र ठाकोर, प्रणामी पाठबहु प्रदर्शन पृ० २

बानी है^{२६१} वंसे ही प्रणामी सम्प्रदाय में प्राणनाथ की यह वेदोक्तवाणी अक्षरगतान पर ब्रह्म में ही प्रेरित मानी जाती है। ये वेदोक्तवाणी विभिन्न स्थानों पर उतरती गई। राम, प्रकाश और पटश्रुतु रचनाओं की बानियाँ उक्त कंदमाने प्रबोधगुरी में सं० १७१४-१५ (मन् १६५८) के दर्म्मान उतरी थी। "कलश" ग्रन्थ की प्रा म्भिक बानियाँ यही उत्पन्न हुई—

ग्रन्थ राम पूरन करयो, प्राणट्यो ग्रन्थ प्रकाश ।
 चाई उत्तम भ्रात लष्ट, उद्वेक लियं उजाग ।
 चाग्रहमागी पटश्रुतु, इष्क विरहरो वृग् ।
 गो पुनी उतरी या ममै, किन्हों बरु जहृग् ॥
 हूँ बोपाई कलश बी, कीन्हो उन प्रारम्भ ॥
 यह बानी "हवमा" विषे, भयो धर्मको वम ॥^{२६२}

उक्त "कलश" ग्रन्थ की पूर्णाहुति मूरत में सं० १७२६ (मन् १६७२) में हुई।^{२६३} उक्त चारों ग्रन्थ गुजरगती भाषा में ही अवतरित हुए हैं। कई हस्तलिखित प्रतियों में "राम" के साथ "अजीर" "प्रकाश" के साथ 'जम्बूर' और "कलश" के साथ "तीरेत" शब्द लगे पाए जाते हैं। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार, ईसाई यहूदी और दाऊद के धर्ममन में साम्य दिमाने का ही इससे पीछे निहित उद्देश्य है।

शा० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, रास नामक ग्रन्थ सर्वप्रथम सं० १७१२ में रचा गया था, किन्तु वह सं० १७३१ में पूरा हुआ। "वेहदवानी" की रचना सं०

२६१. Alban G. Widgery M. A., The Comparative study of Religions, p. 61

The Quran claims within itself be to a 'sign' sent by God, a 'reminder' a light a guidance and a warning 'the' spirit as well as the giver of glad tidings 'It is' a mercy from God, a revelation from the Lord of Worlds To the Muslims, therefore the Quran is Kalam Allah—the word of God

२६२. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२, चौ० ३०, ३१, ३७

२६३. (अ) वही, प्र० ४२, चौ० ३८

(ब) स्वामी लालदास, प्र० १५, चौ० ५६

कलसका बीज इन ममें, उठा इत अकूर ।

सो तब तें चढ़े दीपमें, हुआ मूरतमें मजकूर ॥

१७२२ में हुई थी, बलश या कलश ग्रन्थ म० १७१६ में निमित्त हुआ था।^{२६४} यद्युक्त राम की रामनें वेदद्वानी, बारहमासा आदि उक्त ग्रन्थों के प्रकरण विशेष हैं। आ० चतुर्वेदीजी ने इनका रचनाकाल स० १७१२ विग आधार पर मान लिया है यह स्पष्ट नहीं किया। प्रो० मातावदन जायसवाल ने कहा है, कारावाग जीवन में मेहेराज की दिव्यवाणी प्रस्तुत हुई और उनकी प्रथम गुजराती "राम" अवतरित हुई।^{२६५} लेकिन जैसाकि हम पहले देग आये है कि म० १७१२ (मन् १६५५) में प्राणनाथ राजकीय व्यवस्थापन प्रशासन कार्य त्याग कर आये ही थे और उनसे गुग्गुलु विहागी नाशुण थे। स्वयं प्राणनाथ ऐसी मन स्थिति में नहीं थे कि वे इन रचनाओं को मन् १७१२ (मन् १६५५) में रचित पाते। घन गम्प्रदायिक आधार^{२६६} यह है कि इन रचनाओं का प्रणयन कारावाग में ही हुआ, अधिक विश्वमनीय है। आ० चतुर्वेदी की इस सम्बन्ध की मान्यता को स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

उक्त ग्रन्थों में 'प्रकाश' और 'बलश' को उन्होंने अतूय-शहर में हिन्दुस्तानी भाषा में रूपान्तरित किया। यही "मनघ" (सनद) ग्रन्थ की बानियाँ अवतरित हुई। इन तीनों का रचनाकाल स० १७३६ (मन् १६७८) ठरता है। स्वामी लालदास जो ने कहा है,^{२६७}

और जिताय तोरेत, उतरी बीच मूरत।

नारी कथा बलश, मनघें अतूय मेहेर यगत ॥

गुजराती भाषा केरके, कगी भाषा हिन्दुस्तान।

ए जो वास्ते मोमिनोके, गुग पावे कर पेहेचान ॥

"विरतन" ग्रन्थ ने समय समय लिय गए उनके पदों का सग्रह किया गया है। ऐसी स्थिति में उन पदों का रचनाकाल निश्चिन्ता में बनाना मुश्किल है। श्री मुरलीदास धामी ने इन पदों का रचनाकाल स० १७२४ से स० १७३८ के बीच का समय और दीप, मूर्त, मेडता आदि को रचनास्थान माना है।^{२६८} पी० कृष्ण मूर्ति अम्बर के अनुसार मन् १६६६ से १६६१ के बीच विविध स्थानों पर ये "किर-

२६४. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की मन् परम्परा, पृ० ५६८

२६५. हिन्दी महित्यकोश, भा० २, पृ० ३३१

२६६. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६०-३६६

२६७. (अ) स्वामी लालदासकृत धीतक, प्र० १५, पौ० ६२-६३

(ब) पं० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३६७

२६८. गुरलीदास धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३

तन" के पद लिखे गए थे।^{३०६} लेकिन ग्गुओडदाम वीरजी ने गुरु देवचन्दजी का धामगमन (सं० १७१२) में पहले ही इन पदों का अवतरित होना माना है।^{३०७} उन्होंने कई कीर्तन-पदों का रचनाकाल और रचनासमय दोनों का प्रयत्न किया है। उन्हीं के अनुसार "किरंतन" के पद प्राणनाथ ने अश्वस्तान-यसरा-जागे ममा ममुद्र-मार्ग पर जहाज में, गुरुजी की उपस्थिति में, सं० १०३५ (सन् १६०८) हरिद्वार में, सं० १७२४ (सन् १६६७) ठण्डा नगर में, सं० १७२६ (सन् १६७२) मृत में, सं० १७२८ (सन् १६७१) मस्कतबंदर में, सं० १७३६-३७ (सन् १६७९-८०) मत्त-मोर में, सं० १७१२ (सन् १६५५) में गुरु देवचन्दजी की इह लीला समाप्ति के सदस्य में, सं० १७४३ (सन् १६८६) पन्ना में, सं० १७३६ (सन् १६७९) में उदयपुर छोड़ने समय तथा सं० १७४८ (सन् १६९१) में धामगमन-मृत्यु के सदस्य में पद लिखे गए हैं।^{३०९} पं० कृष्णदत्त शास्त्री के "निजानन्द चरितामृत" में उक्त तथ्यों की पुष्टि स्थान-स्थान पर ही जाती है।

१७११

वेहोशवाणी की श्रेष्ठ रचनाएँ खुलासा (खुलामा), रिपलवन (लिलवत), परकरमा (परिक्रमा), मागर, दिनार (शृंगार), विन्नी, मारफत, मार तथा क्यामतनामा छोटा व बड़ा सं० १७४० (सन् १६८३) में सं० १७४८ (सन् १६९१) के समया-न्तर्गत प्रस्फुटित हुईं। उक्त रचनाओं में से क्यामतनामा छोटा व बड़ा के सिवाय अन्य रचनाएँ पन्ना, जिनको सम्प्रदाय में पद्मावती पुरी नाम से अभिहित किया जाता है, में उत्तरी थीं। आ० परशुराम चतुर्वेदी ने बताया है, क्यामतनामा का निर्माण सं० १७४४ में हुआ था। खुलासा, लिलवत, मारफत, सागर, आदि अन्य सं० १७४०-५१ में कभी रचे गए थे। इन सभी के दिग्गो का स्पष्ट तथा यथेष्ट विवरण उपलब्ध नहीं।^{३०९} प्रो० माताबदल जायसवाल ने क्यामतनामा को प्राणनाथ की अन्तिम रचना मानते हुए लिखा है, सं० १७४४ में स्वामीजी ने चित्रकूट की यात्रा की, वही प्राणनाथ की अन्तिम बानी क्यामतनामा की रचना हुई।^{३०३} लेकिन ग्रन्थ के क्रम में भले ही क्यामतनामा छोटा व बड़ा को अन्तिम स्थान मिला हो, सम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार प्राणनाथ की वेहोशवाणी सं० १७४८ तक ही, (आ० परशुराम चतुर्वेदी के

२६६ P. Krishnamurty Iyer, the Devine message of Lord Pranna-
th p 38 -

३००. रणछोडदाम वीरजी, श्री परमधाम, प्रणालिका, पृ०-४८३, ३००

६०१. वही, पृ० ४८३ से ४८६, ३०६

३०२. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ०-५६८, ३०६

३०३ प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ०-७, ३०६

अनुसार सं० १७५१ तक नहीं), प्रस्फुटित होनी रही।^{३०६} प० मिश्रीलाल शास्त्री ने कहा है, सब में अन्तिम बाणी मारफतमागर के रूप में आविर्भूत हुई। इसके अन्तर दैनिक उपदेश और उसके मनन चिन्तन का क्रम तो यथावत जानू ही रहा, लेकिन वि० सं० १७४८ के पश्चात् श्रीमुखवाणी (प्राणनाथजी की बेटीशवाणी) का पुनः अवनयन नहीं हुआ।^{३०७} प० कृष्णदत्त शास्त्री ने इसके संदर्भ में कोई स्पष्टता नहीं की। मिरफ इतना ही बताया है कि खुतागा के कुछ प्रकरण और कुछ ग्रन्थवाणी रामनगर में प्रगट हुई। खिलवन, परिक्रमा, सागर, महासिगार और मारफतमागर और निषी किताब ये सब श्री पद्मावतीपुरी में पूर्ण हुआ एवं क्यामननामा चित्रकूट में लिखा गया।^{३०८} लेकिन रणछोडदाम बीरजी ने इन सभी ग्रन्थों के रचनाकाल एवं स्थान के संदर्भ में स्पष्ट किया है। उनके अनुसार खुतागा सं० १७४३ में; खिलवन, परिक्रमा, सागर, सिनगार, मिन्धी सं० १७४५ और सं० १७४८ के समयान्तर्गत, मारफतमागर ग्रन्थ सं० १७४८ में (और महाशुक्ल १८ बी के दिन पूर्ण हुआ), छोटा बड़ा क्यामननामा की सं० १७४४ चित्रकूट में रचना हुई।^{३०९} स्वामी लालदाम ने लिखा है,^{३०८}

केनीव बानी, घनीयकी, रामनगर मे भया भूल ।
तहा मे विस्तार भया, भया परगामे बडा तूल ॥
और बानी फिरकालकी, हृदीमा महमद अलेहमलाम ।
भई सो मारी परगामे मिनै, बीच दीनदस्ताम ॥
ए खिलवन और सागर, केनिव बानी और ।
सो हुई मोमिनां वास्त, मजल परगामे ठौर ।

उसी संदर्भ में ब्रजभूषण ने कहा है,^{३०९}

प्रगट करयो हिरदो घनी, "रामनगर" मे मूल ।
भयो वृक्ष परना बिदे, बानी पूरन पूल ॥
बानी और कुगानकी, हृदीमे बहु जात ।
परिक्रमा निज घग वमु, दरसन कीने मान ॥

-
३०४. रणछोडदाम बीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४६०
३०५. श्री प्राणनाथ मंदन, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० ११
३०६. प० कृष्णदत्त शास्त्री, निजानन्द चरितामृत, पृ० ३९७
३०७. रणछोडदाम बीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४६०-४६१
३०८. स्वामी लालदासकृत, बीनक, प्र० १५, चौ० ६४, ६५, ६७
३०९. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ४२ चौ० ४२-४५

दिव्य ज्ञान को श्री तारतम्य ज्ञान कहा गया है। उगी ज्ञान का सग्रह "तारतम्यमागर" है।^{३१४} प्रो० अमृत यंड्या ने "तारतम्य नागर" और "कुलजमस्वरूप" नामों का उल्लेख करते हुए लिखा है, प्राणनाथजी का प्रयत्न हिन्दू तथा पश्चिम एशियाई धार्मिक परम्पराओं के बीच समन्वय स्थापित कराने का था अतः उनके ग्रन्थों, सिद्धान्तों आदि के दो-दो नाम रखे जाने थे। उन नामों में से एक सम्स्कृत और दूसरा अरबी या फारसी। इसीलिए इस ग्रन्थ के दो नाम हैं।^{३१५} अन्य स्थान पर प० मिश्रीलाल शास्त्री ने बताया है कि मध्ययुग में भाषा की उत्कृष्टता के कारण आध्यात्मिक-ज्ञान की महान् उत्प्रेरक महाप्रभु की यह श्रीमुखवाणी "कुलजम-स्वरूप" के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।^{३१६} लेकिन साम्प्रदायिक विकास को दृष्टि ममक्ष लाते हुए यही लगता है कि मध्ययुग में यह ग्रन्थ मुस्लिमों की महानुभूति प्राप्त करने के हेतु "कलजम-ए-शरीफ" नाम से ही अभिहित होगा। तदनन्तर, "कुल-जम स्वरूप" नाम तुरन्त ही, सम्भवतः ब्रजभूषण के ही समय प्रसिद्ध में रहा होगा। इसके पश्चात् आज तक, वैष्णव धर्मावलम्बियों की महानुभूति प्राप्त करने के लिए, "कुलजमस्वरूप" नाम के साथ श्रीमुखवाणी, तारतम्यनागर, निजानन्दमागर आदि नाम प्रसिद्धी में लाये गये होंगे और "कलजम-ए-शरीफ" नाम हटा दिया गया होगा। आज "कलजम-ए-शरीफ" नाम की कोई स्पष्टता सम्प्रदाय के विद्वानों की ओर से नहीं होती।

कई विद्वानों ने राम, प्रकाम आदि रचनाओं से 'कुलजमस्वरूप' (कलजमे शरीफ) ग्रन्थ को भिन्न समझा है। लेकिन उक्त विवरण में इतना स्पष्ट हो जाता है उन बेहोशवानियों जोशवाणी में यह ग्रन्थ अतिशय है। उक्त अलग अलग रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

(१) राम

प्रो० माताबदल जायसवाल के अनुसार इसमें १०१० चौपाई सख्या हैं।^{३१८} प्रा० परशुराम चतुर्वेदी ने भी यही सख्या दी है।^{३१९} मुरलीदास घामी ने प्रकरण ४७ और ६०७ चौपाईयों का होना बताया है।^{३२०} प्रो० कृष्णमूर्ति अय्यर ने चौपाईयों की संख्या ६१३ दी है।^{३२१} प० मिश्रीलाल शास्त्री ने ४७ प्रकरण और ६२३ चौपाई

३१५ श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० १०

३१६ गुजराती साहित्य परिषद, २० मु सम्मेलन-हेवाल, पृ० २२०

३१७ श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० १२

३१८ प्रो० माताबदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४

३१९ प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की मूल परम्परा, पृ० ५६७

३२० मुरलीदास घामी धर्म अभियान, पृ० ६३

३२१ P. Krishnamurti Iyer, The Divine message of Lord pranna-
th, p. 37

संख्या दी है।^{३२२} रणछोड़दास वीरजी के अनुसार इसमें ४७ प्रकरण और २१३ की चौपाई संख्या है।^{३२३} जामनगर-श्रीराजमन्दिर-की प्रतिनिधि के अनुसार चौ० संख्या २१३ है।^{३२४} श्रोत्र के प्रणमो मन्दिर की प्रतिनिधि में प्रकरण ४७ और चौपाईयां २०७ की संख्या दी गई है।^{३२५}

(२) प्रकाश (किनाव जम्बूर-गुजराती)

श्री० मातावदन जायसवान श्री० श्री० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इसकी चौपाई-संख्या ११७६ है।^{३२६} श्री० कृष्णमूर्ति के अनुसार चौ० संख्या १०६४ है।^{३२७} मुरलीदास घामो, पं० मिथीलाल शास्त्री और रणछोड़दास वीरजी के अनुसार इसमें ३७ प्रकरण, १०६४ चौपाईयां हैं।^{३२८} श्रोत्र की प्रतिनिधि में भी यही संख्या दी गई है।^{३२९} जामनगर की प्रतिनिधि में १०६१ की संख्या दी गई है।^{३३०}

(३) पटञ्जलु

श्री० मातावदन जायसवान, श्री० परशुराम चतुर्वेदी और श्री० कृष्णमूर्ति प्रय्यर ने इसकी चौपाई संख्या २३० बनायी है।^{३३१} मुरलीदास घामो और पं०

३२२. श्री प्राणनाथ मंदिर, प्रणामी साहित्य ग्रंथ, मई-जून ६३, पृ० १३
३२३. रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
३२४. जामनगर-श्रीराजमन्दिर-दरसनदास की (हस्तलिखित) प्रतिनिधि के आधार पर।
३२५. श्रोत्र-प्रणामी मन्दिर-दरसनदास की (हस्तलिखित) प्रतिनिधि के आधार पर।
- ३२६ (अ) श्री० मातावदन जायसवान, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(ब) श्री० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भाग की मंत्र परम्परा, पृ० ५१७
३२७. P. Krishnamurthy Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p 37
- ३२८ (अ) मुरलीदास घामो, धर्म अभियान, पृ० ६३
(ब) प्राणनाथ मंदिर, प्रणामी साहित्य ग्रंथ, मई-जून ६३, पृ० १३
(ग) रणछोड़दास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
३२९. श्रोत्र-प्रणामी मंदिर-दरसनदास की प्रतिनिधि (हस्तलिखित)
३३०. जामनगर की-दरसनदास की की हस्तलिखित प्रतिनिधि।
- ३३१ (अ) श्री० मातावदन जायसवान, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(ब) श्री० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भाग की मंत्र परम्परा, पृ० ५१८
(ग) P. Krishnamurthy Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p. 37

मिथीलाल शास्त्री न १५ प्रकरण घोर २३० चौ० मन्मा दी है ।^{३३१} रणछोडदाम वीरजी घोर घाट की प्रतिनिधि के अनुसार ७ प्रकरण घोर २३० की चौ० मन्मा है ।^{३३२} जामनगर की प्रतिनिधि के अनुसार ८ रचना की चौपाई मन्मा २३० दी है ।^{३३३}

(४) कलस (हिनाथ नीरत-गुजराती)

प्रो० मानाबदल जायमवाल और आचायं परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इस रचना म ७६८ की चौपाई-मन्मा है ।^{३३४} मुरलीदाम धामी, प० मिथीलाल शास्त्री, रणछोडदाम वीरजी, घाट और जामनगर की प्रतिनिधियों के अनुसार प्रकरण १० घोर ५०६ चौपाई-मन्मा दी गई है ।^{३३५}

(५) प्रकाश (हिन्दुस्तानी)

प्रो० मानाबदल जायमवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इस रचना की चौपाई मन्मा ११७६ दी है ।^{३३६} पी० कुटुम्भीनि अय्यर ने इसकी चौपाई मन्मा ११८५ दी है ।^{३३७} मुरलीदाम धामी, प० मिथीलाल शास्त्री और रणछोडदाम वीरजी न प्रकरण ३७ घोर चौपाई-मन्मा ११८५ बनानी है ।^{३३८} जामनगर-

- ३३१ (घ) मुरलीदाम धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
(व) श्री प्राणनाथ मदेश, प्रणामी साहित्य अ क, मई-जून ६३, पृ० १३
- ३३२ (घ) रणछोडदाम वीरजी, श्री परमधाम प्रणानिका, पृ० ४७६
(व) श्रोत्र प्रणामी मंदिर-दयालदाम जी की प्रतिनिधि ।
३३३. जामनगर-श्रीराजमंदिर-दरसनदामजी की हस्तलिखित प्रतिनिधि ।
- ३३४ (घ) प्रो० मानाबदल जायमवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(व) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६८
- ३३५ (घ) मुरलीदाम धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
(व) श्री प्राणनाथ मदेश, प्रणामी साहित्य अ क, मई-जून, ६३, पृ० १३
(म) रणछोडदाम वीरजी, श्री परमधाम प्रणानिका, पृ० ४७६
(द) श्रोत्र-प्रणामी मंदिर-दयानदास की हस्तलिखित प्रतिनिधि ।
(ड) जामनगर-श्रीराजमंदिर-दरसनदास की हस्तलिखित प्रतिनिधि ।
३३६. (घ) प्रो० मानाबदल जायमवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
(व) आ० परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६७
३३७. P Krishnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p 37
३३८. (घ) मुरलीदाम धामी, धर्म अभियान, पृ० ६३
(व) श्री प्राणनाथ मदेश, प्रणामीसाहित्य अ क, मई-जून ६३, पृ० १३
(म) रणछोडदाम वीरजी श्री परमधाम प्रणानिका, पृ० ४७६

श्रीराजमंदिर—की प्रतिलिपि में ११८५ की चौगई मन्था दी गई है।^{३३६} लेकिन घोड़-प्रणमी मंदिर—दयालदासजी की प्रतिलिपि में प्रकरण ३६ और चौगई मन्था ११८४ दी गई है।^{३४०}

(६) कलस (हिन्दुस्तानी)

प्रो० मानावदन जायसवाल और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार इस रचना में ७६८ की चौगई-संख्या है।^{३४१} मुरलीदाम धामी ने प्रकरण २४ और चौगई-संख्या ७६८ दी है।^{३४२} प० मिथीलाम शास्त्री और रणछोड़दास वीरजी ने प्रकरण-संख्या २४ और ७७१ चौगई-संख्या दी है।^{३४३} जामनगर की प्रतिलिपि में भी ७११ चौगई-संख्या दी गई है।^{३४४} घोड़ की प्रतिलिपि में प्रकरण २४ और चौगई ७६८ की मन्था है।^{३४५}

(७) सनघ

प्रो० मानावदन जायसवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इन रचना की चौगई-संख्या १६६१ दी है।^{३४६} अन्य मन्थों ने एकमत होकर इसकी प्रकरण मन्था ४२ और १६६१ चौगई-संख्या दी है।

(८) किरंतन

प्रो० मानावदन जायसवाल और आ० परशुराम चतुर्वेदी ने इनकी २१०३ चौ० संख्या दी है।^{३४७} मुरलीदाम धामी, प० मिथीलाल शास्त्री और पी० कृष्णमूर्ति

३३६. जामनगर—श्री राजमंदिर—दरमनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।

३४०. घोड़ प्रणामीमंदिर—दयालदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।

३४१ (घ) प्रो० मानावदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४

(व) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संतपरम्परा, पृ० ५६८

३४२ मुरलीदाम धामी, धर्म अभिज्ञान, पृ० ६३

३४३ (घ) श्री प्रार्थनाथ संदेश, प्रणामी साहित्य अंक, पृ० १३

(व) रणछोड़दास वीरजी, श्रीपरमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६

३४४ जामनगर—दरमनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।

३४५ घोड़-दयालदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।

३४६ (घ) प्रो० मानावदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४

(व) आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६८

३४७. (घ) वही, ० १४

(व) वही, पृ० ५६८

अथर्व ने प्रकरण १३३ और २१०३ चौ० संख्या दी है ।^{३४८} रणछोडदास वीरजी ने प्रकरण-संख्या १३३ और २१० चौपाई-संख्या दी है ।^{३४९} ओड की प्रतिलिपि में प्रकरण १३१ और चौपाई-संख्या २०६७ दी गई है ।^{३५०} जामनगर (श्रीराज मन्दिर) की प्रतिलिपि में २१०८ चौपाइया है ।^{३५१}

(६) पुतासा (बुनासा)

इस रचना की चौपाई-संख्या के सदर्भ में प्रो० मानावदल जायसवाल ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न उल्लेख किया है । एक स्थान पर १०१६ की संख्या दी है और दूसरे ही स्थान पर १०२६ की संख्या बतायी है ।^{३५२} प्रा० परशुगम चतुर्वेदी ने १०१६ चौ० संख्या दी है ।^{३५३} पी० कृष्णमूर्ति अथर्व ने १०२० चौ० ई-संख्या दी है ।^{३५४} मुरलीदास धामी प० मिश्रीलाल शास्त्री और रणछोडदास वीरजी के १८ प्रकरण और १०२० चौ० संख्या बतायी है ।^{३५५} ओड की प्रतिलिपि में प्रकरण १६ और चौपाइयाँ १०२० हैं ।^{३५६} (श्रीराजमन्दिर) जामनगरवाली प्रतिलिपि में १००७ चौपाइयाँ हैं ।^{३५७}

- ३४८ (अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभिधान, पृ० ६३
 (ब) श्रीप्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, ६३, पृ० १३
 (ग) P Krishnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p. 38
- ३४९ रणछोडदास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
- ३५० ओड—दयालदास की ह० लिखित प्रतिलिपि ।
- ३५१ जामनगर—दरसनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।
- ३५२ (अ) प्रो० मानावदल जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १४
 (ब) धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य, द्वितीयखण्ड, पृ० ५६१
- ३५३ प्रा० परशुगम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन परम्परा, पृ० ५६८
- ३५४ P Krishnamurty Iyer, The Divine message of Lord Prannath, p. 38.
- ३५५ (अ) मुरलीदास धामी, धर्म अभिधान, पृ० ६३
 (ब) श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अंक, मई-जून, १९६३, पृ० १४
 (ग) रणछोडदास वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० ४७६
- ३५६ ओड—दयालदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।
- ३५७ जामनगर—दरसनदासजी की ह० लिखित प्रतिलिपि ।

प्राणनाथ : जन्म-जीवन-धामगमन

- (२) कुरान के जवाब गवाग (दिल्ली-रचनास्थान) गद्य ।
 - (३) तीसरा क्षयामतनामा (गद्य) ।
 - (४) कुरान की पत्रिकाएँ (गद्य) ।
 - (५) नवतनपुरी और धनुषायियों की निम्नी पत्रिकाएँ (गद्य) ।
 - (६) निगम व्यासम तन्त्र महिमा, यामन पटन आदि के प्रश्न (गद्य) ।
 - (७) जामिन शास्त्र (फारसी गद्य) ।
 - (८) छद्ममान प्रबोध (पत्रिका गद्य) ।
- (९ मे १३), श्रीम गिरोह की हकीकत, तिसरा घानीता तथा नञ्जुल अर्थात्
मभारतञ्जुनवर्द्धन, तरकुदुनिया आदि कई किताबों की हिन्दी में
रूपान्तरित किया है ।

प्राणनाथ की जोश (वेहंश) वाणी और होशवाणी के वर्ण्य विषय के
संदर्भ में अन्यत्र विस्तार में देना गया है । इतना समृद्ध साहित्य देगते हुए प्रो०
माताबदल जायसवाल का यह कथन^{३५३} ठीक ही प्रतीत होता है कि, हिन्दी में
इतनी अधिक रचना मध्यकाल में सम्भव किमी अन्य हिन्दू द्वारा नहीं हुई ।

द्वितीय अध्याय

प्रणामी सम्प्रदाय : उद्भव और विकास

(अ) प्रेरणाएँ और परिस्थितियाँ

मनुष्य और समाज अभिन्न है। अतः मनुष्य और उसके कार्यों का मूल्यांकन करने से पहले उसके चारों ओर बितरे पड़े समाज को देखना भी आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति से व्यक्तित्व का निर्माण युगीन एवम् राष्ट्रीय वातावरण, उसके परिवेश तथा सामाजिक जीवन, उसकी पारिवारिक परिस्थिति, शिक्षा-दीक्षा, जन्मजात गुण आदि पर आधारित रहता है। किसी भी समाज पर पड़े हुए युगीन समस्याओं, राष्ट्रीय परिस्थितियों और राष्ट्रशासकों के प्रभाव से व्यक्ति अपने आप को दूर नहीं रख सकता। कोई साहित्यिक रचना केवल व्यक्तिगत कल्पना का सर्जन ही नहीं होती। मैक्समूलर ने ठीक ही कहा है, कि व्यक्ति ऐसी भूमि में उपजता है जो उसके लिए पहले से बनी-बनाई होती है और ऐसे बौद्धिक वातावरण में साँस लेता है जिसका उसने स्वयं निर्माण नहीं किया।¹ अर्थात् व्यक्ति तो अपने समय की उपज होता है। अतः जिस कालविशेष में स्वामी प्राणनाथ ने कार्य किया तथा प्रणामी सम्प्रदाय का उद्भव हुआ उसका अध्ययन तत्कालीन राजीनितिक, सामाजिक एवम् धार्मिक दृष्टिकोणों से करना आवश्यक हो जाता है। प्रथम अध्याय से इतना स्पष्ट हो जाता है कि विवेच्य विषय के संदर्भ में मुगलशासक जाहंगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब का शासनकाल ही विशेष महत्व रखता है।

(क) राजनितिक पृष्ठभूमि

एक या अन्य हेतु से मसार की कई जातियों ने भारत पर आक्रमण किये हैं। अमीरगिया की महारानी सेमिरामिस, ईरान के साइरस सिकन्दर, मेल्युकस,

पेन्टिओवम आदि तथा शक, पहलव और हूण जातियों ने आक्रमण किये, लेकिन उनमें भारतीय शासक व्यवस्था पर कोई बुरा प्रभाव उत्पन्न नहीं हुआ। पञ्जाब और जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा है कि आर्यों के बाद उस देश में बहुत-सी जातियाँ आती रहीं, जैसे ईरानी, यूनानी, पार्थियन (पहलव), बैक्ट्रियन, मिदियन (शक), हूण, तुर्क (इस्लाम से पहले के), कर्दीम ईमाई, यहूदी और पारसी। यह सभी लोग आये, इन्होंने अपना प्रभाव डाला और बाद में यहाँ के लोगों में घुल-मिल गये।^२ लेकिन उसके बाद ई० मन् ७११ में^३ मुस्लिम आक्रमणों के कारण इस देश में जो पराजकता का अंधकार छा गया था वह मुगलशासक अकबर के शासनकाल में ही दूर हुआ। १६ वीं से १८ वीं शताब्दी तक मुगलों ने स्थिरता में भारत पर शासन किया। प्रथम मुगलशासक अकबर ने १६ मार्च १५२७ सन् में^४ राणा सांगा को पराजित करके मानो कि हिन्दुत्व को भारत में बन्दी बना दिया। वह धर्मांध और क्रूर नहीं था लेकिन हिन्दुओं के प्रति उसके तिरस्कार और दुर्व्यवहार के संकेत सत नानक ने मिलते हैं।^५ हुमायूँ और शेरशाह झूठी धर्मांधता और अत्याचार में नहीं मानते थे, अतः हिन्दुओं ने शांति का अनुभव किया। पश्चात् अकबर कि जो अन्ध्र न्यायाधीश और नीतिकुशल व्यक्ति था उसने योग्य शासक के रूप में दर्शन दिये। अपनी सहिष्णुनीति के कारण अकबर हिन्दु-मुस्लिम के बीच सगुलन रख सका। फिर भी काश्मीर पर उसकी जिम प्रकार में विजय हुई उसको अकबर के चरित्र में काले धब्बे के रूप में माना गया है।^६ उसने सितम्बर १५७३ में गुजरात पर आक्रमण किया और गुजरात पर मुगलशासन स्थापित हुआ।^७ अब हिन्दुओं ने आराम की साँस लेना शुरू किया। अकबर ने राजनीतिक सफलताएँ प्राप्त की। अतः हमें का कथन ठीक है कि मुस्लिम शासक, जिन्होंने मुगलों से पहले भारत में शासन किया था उन्होंने सिर्फ नीच ही डाली थी, लेकिन फलप्राप्ति मुगलों के शासनकाल में ही हुई थी।^८ अकबर ने जो ज्योति जलाई थी, वह जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में

२. पं० जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (मक्षिप्त), पृ० २४
३. Baij Nath Puri, Indian History—A Review, p. 71.
४. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV. p 17
५. M. A. Maculiffe, Sikh Religion, Vol 1-2, p 44
६. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol III, p 293
७. गो० हा० देसाई, गुजरात की अर्वाचिन इतिहास, पृ० ८०
८. A M. Hussain, The Rise and Fall of Muhammd Bin Tughlak, p. 3

जलनी रहती। वे विनामी अधिक थे और धर्मांग कम। इन्हींके उम ज्योति का प्रकाश साहित्यके साहित्यके मन्द होता चला और औरंगजेब के शासनके माय ही वह बुल गये। जहाँगीर मुसलमानों का पक्षपात अवरुद्ध करना था।^६ रामचारीमिह "दिनकर" के अनुसार जहाँगीर और शाहजहाँ ने अकबर की नीति बहुत दूर तक बढ़ती, लेकिन मनु १६३० में न जाने शाहजहाँ को क्या हुआ कि उसने फरमान निकाल दिया कि अब आगे से नये मंदिर नहीं बनवेंगे और जो मंदिर बन चुके हों वे तोड़ दिये जाने के क्रम में हों, वे तोड़ दिये जाएँ।^७ किन्तु, पुराने मंदिर तोड़े नहीं गये इनमें शाहजहाँ की उदारता जरूर भनकती है।^८ लेकिन अन्य इतिहासकारके अनुसार,^९ मनु १६३३ में शाहजहाँ ने चाराणसी आदि स्थानों के मंदिर तुड़वाने का आदेश दिया तथा हिन्दुओं को अवरुद्धनी मुस्लिम बनाने की प्रवृत्ति भी की। इस्लाम के प्रचार एवम् प्रसार में वह रुचि रखता था और धर्मपरिवर्तन के लिए उसने एक अधिकारी की भी नियुक्ति की थी। औरंगजेब की भी धर्मांधता उसमें नहीं थी। लेकिन हकीकत मिटाती नहीं जामकनी कि उसने गुजरात काशी, इलाहबाद और काशी में कई हिन्दू मंदिर तुड़वाये थे।^{१०} कीन ने बताया है कि^{११} शाहजहाँके दिनावलिनामह धार्मिक महिष्टपुरा की तुलना में उसके क्रियेवर्तों और शिष्टियों के प्रति किये गये वर्तव को उर्ध्व चारिष्य के बाले धर्मे ही मानना पटना है। रामचारीमिह "दिनकर" शाहजहाँ के ऐसे ही स्वस्विक को दृष्टि ममक्ष करने हुए लिखते हैं, शाहजहाँ यद्यपि हिन्दू माँ का बेटा था, किन्तु उसका व्यक्तित्व फटा हुआ था। उसके व्यक्तित्व के दोनो टुकड़े उसके

६. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p 18

१०. रामचारीमिह 'दिनकर', मस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३६१-३६२

११. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV, p 217. In 1633 Shah Jahan ordered the demolition of Hindu temples which had been begun in the previous reign, especially at Benares, and many were demolished. The orders were followed by a prohibition of the erection of new Shrines or the repair of older buildings Mass conversions of Hindus to Islam were also encouraged and in some cases were forcibly effected

१२. Shri Ram Sharma, Mughal Government and Administration, pp 169, 179

१३. H. A. Keen, A sketch of the History of Hindustan, p. 217

दो पुत्रों में साकार हुए। व्यक्तित्व का जो अण प्रकबर ने प्राया था उसका प्रतिनिधि दाराशिकोह हुआ। इसके विपरीत, उसके व्यक्तित्व के जिस अंश पर शेख अहमद के प्रचारों का प्रभाव था, उसका प्रतिनिधित्व औरंगजेब ने किया। औरंगजेब ने खड़ेडकर दारा को मार डाला और थाप को बंद करके वह खुद मिहामन पर बैठ गया। जिस दिन दाराशिकोह मारा गया और औरंगजेब गद्दीनशीन हुआ, सामाजिक संस्कृति का कलेजा, अमल में उसी गेज फटा और तब से यद्यपि हम इस अमन को बार-बार सीने की कोशिश करते रहे हैं, किन्तु वह ठीक से सिल नहीं पाती।^{१४} भले ही कुरान ने कहा हो कि, धर्म में बल का प्रयोग नहीं होना चाहिए। विश्वाम लाने के लिए कोई मजदूर नहीं किया जा सकता।^{१५} लेकिन मोहम्मद गौरी और प्रकबर के बीच वाले समय से भारतवासियों ने मुस्लिम आक्रमणों की जिस बर्बरता धर्माघना, अत्याचार, अनाचार, मकीराना, निर्दयता, नृशमना और उद्दता के दर्शन किये थे उसी का पुनरावर्तन औरंगजेब ने किया।

औरंगजेब बट्टर मुसलमान और हिन्दुओं का उत्पीडक था। हालांकि जिस दग में वह सिहामनारड हुआ उम पर से ही लोगो ने अन्दाज लगा लिया था कि वह दुष्ट, निडर, क्रूर-निर्दयी और निर्लज्ज व्यक्ति है।^{१६} सभी मुगलशासकोंमें से औरंगजेब के ही समय में हिन्दुओं को सबसे अधिक अत्याचारों एवं अनाचारों को मूक रहकर सहन करना पडा। हिन्दुओं का जीवन फिर निराशा का भण्डार बन गया। सहिष्णुता और धर्माघता की लड़ाई में धर्माघता की विजय हुई। औरंगजेब ने धर्माघता के चश्मे में ही कुरान के नियमों को देखा और मानने लगा कि बिन-मुस्लिम इस्लाम को ग्रहण करे तबतक धर्मधुद्ध करना आवश्यक है।^{१७} अतः हिन्दुओं के लिए हिन्दुत्व एक गुनाह बन गया था।

१४. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३६२

१५. कुरानेशरीफ, २-२५६

16. Jadunath Sarkar, History of Aurangzeb, III pp 144-145
Aurangzeb's treatment of his father outraged not only the moral sense but also the social decorum of the age....He now came to execrated by the public as a bold bad man, without fear, without pity, without shame.

17. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 240..... or in other words to wage holy wars Jihad against non-muslim countries (dar-ul-hurb) till they are turned into realms of Islam (Dar-ul-Islam).

औरंगजेब ने अपने शासनकाल के प्रारम्भ में १० मार्च १६१६ के दिन जाहिर किया कि मेरा धर्म नये मन्दिर बनवाने के लिए मना करता है। लेकिन पुराने मन्दिर ज्यों के त्यों रहे जा सकेंगे।¹⁸ अपने इसी फरमान का ही आगे चलकर पालन नहीं किया और कई मन्दिर तुड़वाने शुरू किये। उसको शका हूट कि हिन्दू लोग विद्रोह की बातों के लिए इन मन्दिरों का उपयोग करते हैं। औरंगजेब जमा के अनुमार, औरंगजेब की इस नीति परिवर्तन के पीछे कई ऐतिहासिक घटनाओं तथा व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। मुगलदरबार में कार्य करनेवाले राजा जमवर्मासिंह, राजा रघुनाथ और जयसिंह की मृत्यु के बाद ही औरंगजेब ने अपने हिन्दू-विरोधी विचारों को खुलकर के प्रकट किया।¹⁹ लेकिन बी० डी० महाजन ने उसके मद्देन में स्पष्ट उल्लेख किया है कि इस नीति-परिवर्तन के पीछे यही कारण था कि मिन्ध, मुलतान और बनारस के ब्राह्मण दुष्ट हो गये हैं, शास्त्र की शिक्षा में लगे रहने हैं, दूर-दूर के हिन्दू-मुसलमान उनमें घमंजान प्राप्त करने के हेतु आते हैं और इस प्रकार मन्दिरों का उपयोग में लिया जाता है।²⁰ अतः अपने राज्य-पालों को फरमाया कि वे लोग अपने प्रान्त के उन स्थानों को, मन्दिरों को नष्ट कर दें। औरंगजेब अपनी धार्मिक कट्टरता का खुलकर प्रदर्शन करते लगा था। अप्रैल १६६१ ई० में उसने प्रान्तीय सूबेदारों को नामिनों के सभी मन्दिरों और विद्यालयों को नष्ट करने²¹ और उनकी शिक्षाओं और धार्मिक कृत्यों को बिल्कुल बंद कर देने का आदेश दिया। अगस्त १६६२ ई. में बनारस के विश्वनाथ और गोपीनाथ मन्दिर को गिरा दिया गया। बुन्देल राजा बीरसिंहदेव द्वारा ३३ लाख रुपयों की लागत में बनवाया हुआ मधुरा का मठमें शानदार देवालय-वेशवराय का मन्दिर-जनवरी १६७० ई० को धराशयी कर दिया गया और उसके स्थान पर मसजिद बनवा दी गयी। इस मन्दिर की मूर्तियाँ आगग लायी गयी और उन्हें जहाँनाग मसजिद की सीढ़ियों पर लगा दिया गया, जिसमें वे नमाज पढ़ने के लिए और

18 Ibid, p. 241.

19. Shri Ram Sharma, Mughal Government and Administration. p. 181

20. V.D. Mahajan, India since 1526, p 151

21. Ed. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV. P. 241.

So large was the official temple-brackers that a Darogha (Superintendent) had to be placed over them to guide and unite their activities.

जानेवाले मुसलमानों के पैरो में लगानार खुदती रहें।^{२२} इसमें पहले ही इस्लाम के प्रसार और प्रचार के लिए हिन्दुओं को कई ढंग में उमने परेशान किया। हिन्दुओं के पर्वोत्सवों पर १६६५ ई० में ही प्रतिबंध लगा दिया गया था।^{२३} औरंगजेब के मन में अपनी प्रजा के विशाल बहुमत अर्थात् हिन्दुओं के प्रति जिननी उग्र घृणा थी, इतनी ही अरुचि उसे शियाओं से भी थी, यद्यपि उसके कतिपय योग्यतम सेनानायक तथा सर्वोत्तम असैनिक अधिकारी शिया थे। वह शियाओं को नास्निक (राफिजी) समझता था।^{२४} १६६६ ई० में शिया-मुस्लिमों को मुहर्रम मनाने पर प्रतिबंध लगाकर तंग किया गया।^{२५}

हिन्दू राजाओं ने औरंगजेब की विनाशलीला की प्रवृत्ति को रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न भी किया। सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं,^{२६} जिन अन्य छोटे धार्मिक भवनों को विनाशलीला का शिकार होना पड़ा, उनकी गणना ही नहीं की जा सकती। अकेले मेवाड़ में १६७६-८० ई० के राजपुत-युद्ध के साथ २४० मन्दिर नष्ट किये गये, जिनमें सोमेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर और उदयपुर के तीन शानदार मन्दिर भी सम्मिलित थे। जयपुर के बफादार राज्य में भी ६७ मन्दिर ढा दिये गये।^{२७} कहा जाता है कि,^{२८} चित्तौड़ के प्रसिद्ध ६३ मन्दिरों को उसने आँखों के सामने नष्ट करवाया था।

२२. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनुदित), पृ० ६

२३. V. D. Mahajan, India since 1526, p. 152

२४. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनुदित), पृ० १२

२५. A L Shrivastava History of India (1000 to 1707), p 675
He persecuted the Shias, particularly Ismalia and Daudi Bohras, and Put down their teachings and practices. Persian Shias whose genius had shown brilliantly in the revenue & military departments alike, and who had made the reigns of Akbar & Shah Jahan glorious, were discriminated against the royal service.

२६. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनुदित), पृ० ६-१०

२७. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 242

२८. Ibid, p 242

घोरगजेब ने मुस्लिमेतर प्रजा पर धार्मिक दबाव डालकर भी इस्लाम का प्रसार सफलतापूर्वक ढंग में करने का प्रयत्न किया । १२ अप्रैल, १६७६ ई० को मुस्लिमेतरो पर जजिया या व्यक्तिगत-कर फिर से लागू कर दिया गया । इस प्रवृत्ति के पीछे उनका इस्लाम के प्रसार का ही हेतु था ।^{२६} जजियाकर का सबसे बुरा फल मुस्लिमेतर गरीब प्रजा पर हुआ क्योंकि उमने गरीबों को एक साल की रोटी छीन ली ।^{२७} जो हिन्दू या मुस्लिमेतर प्रजा यह कर न दे सक्ता, उसे बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता था । इस प्रकार उसकी प्रबल इच्छा सारे देश को इस्लाम बनाने की थी ।^{२८} उक्त कर का जयसिंह, शिवाजी आदि हिन्दू राजाओं ने कडा विरोध किया था । जयसिंह ने घोरगजेब को एक ऐसा पत्र भी लिखा था कि खुदा सिर्फ मुसलमानों का ही नहीं, बल्कि प्रत्येक इन्सान का है । उसके सामने हिन्दू-मुसलमान समान हैं । हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों का घनादर करना वह सर्वशक्तिमान परमात्मा का मजाक उडाना है ।^{२९} शिवाजी ने भी ऐसी नीति का विरोध व्यक्त करता हुआ एक पत्र घोरगजेब को लिखा था ।^{३०} इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में हमने देखा है कि प्राणनाथ ने इस नीति के विरोध में १२ व्यक्तियों की सेना घोरगजेब को समझाने के लिए भेजी थी । निम्नलिखित पद में भी वही बात निर्देशित की गई है—^{३४}

घमुर लगाये रें हिन्दुओं पर जेजिया, वकी मिल्ने नही वानवान ।

जो गरीब न दे सवें जेजिया, ताप मार करे मुसलमान ॥

२६ Richard Burn, The Cambridge History of India, V. IV., p. 242. On 12 April, 1679, an edict was issued reimposing the Jizya tax on the unbelievers with the object of spreading Islam & overthrowing infidel practices.

२७ Sir Jadunath Sarkar, History of Aurangzeb, III, pp. 270-74. The Jizya hit the poorest portion of the population hardest The State, therefore, at the lowest incidence of the tax, annually took away from the poorman the full value of one year's food as the price of the religious indulgence The Jizya meant for the Hindus an addition of fully one-third to every subjects direct contribution to the State.

२८ Shrivastava, History of India (1000 to 1707), p. 643

२९ Ranade, Rise of Maratha Power, p. 81

३० वामन सीताराम मुकादम, छत्रपति शिवाजी चरित्र (१६३४), पृ० ६३६ ।

३४ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरंतन, प्र० ५७, चौ० १६

औरंगजेब के मनमाने धार्मिक अत्याचार और अनाचार से मुस्लिमोंतर प्रजा, विशेषतः हिन्दूप्रजा, हा हावार करने लगी । जज़ियाकर के साथ उसने १६७६ ई० में यात्राकर भी लगा दिया । हिन्दू और मुसलमान व्यापारियों के साथ भी मित्र-भिन्न प्रकार की कर-व्यवस्था थी । इस व्यवस्था के अनुसार, मुसलमान को चुंगी से मुक्ति मिलती थी ।^{३५} हिन्दुओं का अपने धर्मपालन करने का अधिकार न था । अपने मंदिरों का जीर्णोद्धार भी वे नहीं कर सकते थे । इसलिए हिन्दू अपने भगवान की पूजा भी छिप करके ही करने लग गये थे ।^{३६} हिन्दुओं के धार्मिक मेलों पर उसने १६६८ में प्रतिबन्ध लगा लिया ।^{३७} मार्च १६७५ ई० में एक दूसरे अध्यादेश के द्वारा "राजपूतों को छोड़कर अन्य सभी हिन्दुओं के लिये हथियार लेकर चलने तथा हाथियों, पालकियों अथवा अरबी और फारसी घोड़ों पर सवारी करने की मनाई कर दी गई ।" "कलम के एक दार में उभरे सभी हिन्दू बलकों को उनके पदों से बरखास्त कर दिया ।"^{३८} सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, इस प्रकार के नियमों से उत्पन्न अमंतीप उनके अन्तिम राजनीतिक दुष्परिणामों की सूचना देने वाला एक अशुभ संकेत था, परन्तु औरंगजेब इतना विवेकशील और जिद्दी हो गया था कि वह भविष्य का विचार भी न कर पाता था ।^{३९} औरंगजेब हिन्दुओं या शिया का ही नहीं, सूफियों का भी दुश्मन था । सरमद जैसे सूफीसंत को उसने सूली पर चढ़वा दिया था ।^{४०} इस्लाम के प्रचार के लिये उसने क्या-क्या नहीं किया ? उसके लिए

३५. Shrivastava, History of India (1000 to 1707), p. 645.

He also reimposed the pilgrim's tax on the Hindus, each of whom had to pay rupees six and annas four for bathing in the Ganga at Prayag, and a similar sum at other holy places. The emperor abolished customs duties in the case of Muslim merchants, but continues it at the old rate of 5% in case of Hindus.

३६. Shri Ram Sharma, Mughal Government & Administration, p. 191

३७. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 243

३८. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अंग्रेजी से अनुदित), पृ० १०

३९. वही, पृ० १०

४०. रामधारीसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३६४

न सिर्फ़ अत्याचार और अनाचार ही किये, लेकिन हिन्दू अंगर मुस्लिम बन जाए तो उसका बडा गुनाह भी मुफ़ाफ़ कर दिया जाता था । इस्लाम को स्वीकार करने वालो को बक्षिमे और नौकरी मे अछ्छे पद दिये जाने थे ।^{४१} सर जदुनाथ सरकार निगने है, मुस्लिमेतर प्रजा गुनाम जमी खालत मे ही जी रही थी । उनका विराम या प्रगति मुस्लिम शासन के विनाफ़ था । कुरान के नियमो को मनमाने ढंग मे कटक पालन न शासक और शासित के बीच वैमनस्य सडा कर दिया ।^{४२} वीमे देखा जाय तो औरंगजेब मे कई अछ्छे गुण भी थे । वह अदक परिश्रमी था । उसका जीवन बिरतुल मादगीपूरुं था वह नमात्र और रोजा का बडा पाबन्द था । लेकिन उसकी धर्मसकीरांता और अमत्रिधगुता की भावना ने उसके अछ्छे गुणो को भी मिट्टी मे मिला दिया था । सर जदुनाथ सरकार के अनुसार,^{४३} वह अपने गुणो के कारण महान था । उसके ये गुण ऐन थे, जो मनुष्यो के ऊपर शासन करने के सर्वोच्च क्षेत्र को छोडकर जीवन के किसी क्षेत्र मे सर्वोच्च स्थान दिलाने मे समर्थ होते । वह एक सफल सेनापति, मंत्री, आत्मवादी या अध्यापक और आदर्श विभागाध्यक्ष बन सकता था । परन्तु भगवान की सीला न उने सिद्दामन की जिस सकटपूरुं ऊंचाई पर बिठा दिया, वह उसके जीवन को असफल बनाने और उसकी कीर्ति को नष्ट कर देने का कारण बनी । कर्तव्य सन्धी अनुशासन तथा दरबारी सिष्टाचार के विषय मे वह बहुत बडोर था । वह नियमो तथा प्रचलित परम्पराओ का कठोरतम पालन कराता था ।

औरंगजेब के समय मे गुजरात की, विशेषत नवानगर राज्य की, और बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति के विषय मे भी यहाँ चर्चा करना आवश्यक होगा

४१. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol IV, p 243

४२ Sir Jadunath Sarkar, History of Aurangzib, III, pp 251, 264. A non-Muslim . . is a member of a depressed class, his status is a modified form of slavery The growth and progress of non-Muslims, even the r continued existence, is incompatible with the basic principles of a Muslim state
....The literal interpretation of the Quranic Law sets up a chronic, autogonism between the ruled, which has, in the rulers and the end, broken up every Islamic state with a composite population

४३ सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (अनुदित), पृ० २१-२२

क्योंकि हमारे झालोच्य स्वामी प्राणनाथ का प्रारम्भिक जीवन जामनगर (नवानगर) में और उत्तर कालीन जीवन पन्ना (बुन्देलखंड) में व्यतीत हुआ था।

जामनगर राज्य की स्थिति

मुलतान महमूदशाह तीसरे (ई० सन् १५३६-१५५४) के शासनकाल में नवानगर राज्य की स्थापना १५४० ई० (स० १५६६) में राजा जाम रावल ने की थी। जाम राजा कभी-कभी मुस्लिमशासकों का विरोध भी करते थे। गुजरात में बगावत हुई और बागी मुजफर का साथ देनेवालों में से नवानगर का जाम राजा भी था। अतः १५८३ के अन्त में गुजरात के पाँचवें सूबेदार के रूप में खानखानान की नियुक्ति हुई और उसने १५८४ ई० में मुजफर को हरा दिया ^{४४} लेकिन खानखानान को मालूम था कि मुजफर के परिवार को नवानगर की जाम राजा ने शरण दी थी। अतः नवानगर पर आक्रमण करने के हेतु वह नावनगर पहुँचा। लेकिन जामराजा ने मुघ्राफी माग ली। फिर से सातवें सूबेदार कोकलताश के समय में (ई० १५८८ में) तीन गाल वाद मुजफर काठियावाड़ में आया और इस वक्त भी नवानगर के जाम ने उसकी सहायता की। इस बार कोकलताश ने नावनगर पर आक्रमण किया। मुचर गौरी गाँव के पास जाम राजा और कोकलताश के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में जाम राजा को बहुत नुकसान हुआ। यह भयकर युद्ध "मुचर मोरी" युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। शाहीसेना ने नवानगर शहर को जी भर के लूटा। इस भयकर युद्ध में मुगल सम्राट की विजय हुई और सौराष्ट्र के हतभागी हिंदू राजाओं ने सिर ऊँचा उठाने की या स्वतन्त्रता प्राप्त करने की आशा छोड़ दी। लेकिन अकबर की नीति के फलस्वरूप जाम राजा सताजी को नवानगर राज्य पुनः प्राप्त हुआ और उन्होंने मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार ली। अकबर की मृत्यु (१६०५ ई०) के बाद जामसताजी ने पुनः स्वतन्त्र होने की प्रवृत्ति शुरू की। जहाँगीर का शासन काल अकबर के समान जागरूक नहीं था इसलिए उसको

४४. गो० हा० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ८६

४५. Gazetteer of the Bombay Presidency, Vol., Part I, p. 271.
The Viceroy now marched on Navanagar to punish the Jam.
The Jam sent in his submission, and the Viceroy taking
from him, by way of fine, an elephant and some valuable
horses, returned to Ahmedabad.

४६. Ibid, p. 271

४७. शमुप्रसाद देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३०३

खुलवाये थे। ५५ जाम लाखोजी ने अपने काका की रीति-नीति को ही अपना आदर्श बनाया था। उसने अपना सैन्य मजबूत बनाया और स्वतन्त्रता जाहिर की। उसने १६४० ई० में बादशाह के सूबेदार आजमखान को खडनी देना बन्द कर दिया। ५६ इससे आगे बढ़कर जाम ने छोटे छोटे राज्यों से खडनी लेना शुरू किया और अपने सिक्के सौराष्ट्र में शुरू किये। सौराष्ट्र में दिल्ली की सत्ता का खुलकर के अनादर सबसे प्रथम जाम राजा ने किया और उसने एक स्वतन्त्र राजा के रूप में राज्य शासन किया। इसीलिए आजमखान ने नवानगर पर १६४० ई० में आक्रमण किया। लेकिन जाम ने दादा सताजी जैसी भूल नहीं की। वह स्वयं ही सामने चलकर के आजमखान से जा मिला और उसने मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। ५७ जाम लाखोजी की मृत्यु १६४५ ई० (स० १७०१) में हुई। ५८ अब राज्यशासन रणमल प्रथम के हाथ में आया। उसी समय मुगल बादशाह की ओर से गुजरात के सूबेदार के रूप में औरंगजेब की नियुक्ति ई० सन् १६४४ में हो चुकी थी। वह इस स्थान पर १६४६ ई० (स० १७०२) तक रहा लेकिन इसी समय में गुजरात में हिन्दु-मुस्लमान के बीच वैमनस्य पैदा हुआ और कई भगडे हुए। औरंगजेब ने अपनी कौमी राजनीति का गुजरात को अनुभव कराया और इस प्रकार से गुजरात ने उसकी धर्मांधता के दर्शन किये। उसने सौराष्ट्र के सोमनाथ और द्वारिका के मन्दिर तुड़वाए और तीर्थस्थानों में मूर्तिपूजा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सोमनाथ मन्दिर को मसजिद में परिवर्तित कर दिया और कौबतुलर स्लाम (इस्लाम की शक्ति) नाम दिया। ५९ उसने अहमदाबाद के चिन्तामणि मन्दिर को गौबध करके अपवित्र करवा दिया और उसको तुड़वाकर के मसजिद में परिवर्तित किया गया। लेकिन बादशाह शाहजहाँ ने हिन्दुओं को उस मन्दिर का जीर्णोद्धार करने की इजाजत दी। ६० जाम रणमलजी का शासनकाल १६४५ ई० (स० १७०१) से १६६१ ई० (स० १७१७) तक रहा। अर्थात् उनकी मृत्यु से चार वर्ष पूर्व ही नवानगर राज्य की गद्दी को लेकर राज्य परिवार में विवाद उपस्थित हुआ था। इन अन्तिम

५५ (अ) शंभुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३११

(ब) गो० ह० देसाई, गुजरातनो धर्वाचीन इतिहास, पृ० ६६

५६ Bombay Gazetteer, pp 569-570

५७ शंभुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३११

५८ कवि भावदनजी, श्रीयदुवशप्रकाश, द्वितीय खंड, पृ० २३४

५९ शंभुप्रसाद देसाई, सौराष्ट्रनो इतिहास, पृ० ३१२

६० Gazetteer of Bombay presidency, V. I, P. I, p. 280

वर्षों में राममलजी की रानी और उसके भाई ने योजना करके सताजी नामक लडके को राज्य की गद्दी पर बिठा दिया।^{६१} वस्तुतः जामरामल की मृत्यु १६६४ ई० में हुई और तुरन्त ही उसके भाई रायसिंह ने कुमार गताजी को गद्दी पर से हटा दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया।^{६२} जाम रायसिंह ने १६६१ ई० (म० १७१७) से १६६४ (म० १७२०) तक शासन किया। उस समय राज्य-परिवार का मानिक ईमा नामक नौर राममलजी के पुत्र लाग्याजी को लेकर अहमदाबाद गया और सूबेदार की सहायता मांगी। गजेटियर में नरली सताजी का कोई उल्लेख नहीं हुआ।^{६३} कवि भावदानजी के अनुसार, नरली गताजी ने कुतुबुद्दीन से सहायता मांगी और कुतुबुद्दीन ने १६६६ ई० (म० १७२०) में नवानगर पर आक्रमण किया।^{६४} शंभुप्रसाद देसाई ने उस आक्रमण का समय १६७० ई० (म० १७२६)-बताया है।^{६५} गजेटियर के अनुसार, कुतुबुद्दीन ने १६६६ ई० में नवानगर पर आक्रमण किया और रायसिंह की हत्या करके नवानगर पर अपना शासन स्थापित किया। नवानगर का नाम इस्लामपुर रखा दिया गया।^{६६} लेकिन जामनगर (नवानगर) का नाम इस समय इस्लामपुर रखा गया था या मुत्तरमोगीयुद्ध के बाद रखा गया था इसके सम्बन्ध में मत भेद है। "यदुवजप्रकाश" काग ने इसी समय नामपरिवर्तन हुआ बताया है और यही उचित लगता है।^{६७} नवानगर शहर के लिए काजी की नियुक्ति की गई और गताजी को गद्दी दी गई लेकिन सताजी कहीं जमीं हालत में ही था। इस प्रकार सम्पूर्ण सत्ता आठ मास तक मुभलमानों के हाथ में ही रही। नवानगर राज्य फिर से एक बार जाम राजाघा के हाथों में निकलकर मुस्लिमों के हाथों में गया।

शिवाजी ने १६६४ ई०, १६६६ ई० और १६७० ई० में मूरत शहर को लूटा।^{६८} नवानगर के जाम रायसिंह का लडका तमाची, जो अपने पिता की मृत्यु

६१ शंभुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनी इतिहास, पृ० ३१६

६२ वही, पृ० ३१६

६३ Gazetteer of Bombay Presidency, V I, P I, p 283

६४ कवि भावदानसिंह. श्री यदुवज प्रकाश, द्वितीय अंक, पृ० २४२

६५ शंभुप्रसाद ह० देसाई, सौराष्ट्रनी इतिहास, पृ० ३१६

६६ Gazetteer of Bombay, V I Part I, p 283

६७ शंभुप्रसाद सौराष्ट्रनी इतिहास, पृ० ३१५

६८ (घ) Gazetteer of Bombay Presidency, V, I pt. I, p 284

(व) गो० ह० देसाई, गुजरातनी अर्वाचीन इतिहास, पृ० १११

के बाद कच्छ की ओर भाग गया था, उसे मुस्लिमी माँगने पर और सूवेदार को सहायता देने की शर्त पर नवानगर राज्य की गई। वापस दे दी गई। फिर भी बादशाह औरगजेब के जीवनकाल पर्यन्त नवानगर मुसलमानों के हाथों में रहा।^{६६}

अहमदाबाद ने १६८१ ई० में भारी अनाल और जनता के विद्रोह की आग को देखा। सूवेदार मोहम्मद ने इसी समय अतृप्त नरामक व्यक्ति को जहर खिला कर मार डाला। गुजरात के मुस्लिमों-मतिवा और मोमना में दंगा हुआ। दंगे में कई मोमना मारे गये।^{७०} इन्हीं दिनों में बादशाह ने वडनगर में नागरब्राह्मण जाति के हाटकेश्वर महादेव के मन्दिर को तोड़ डालने का आदेश दिया।^{७१} गुजरात के वहीराजाति के प्रति भी बादशाह की तिरस्कार था। १७०५ ई० में उसको यह मालूम हुआ कि वहीरा के मुख्य धर्मगुरु मुल्ला खानजी ने अपने धर्मप्रसार के लिए १२ उपदेशक भेजे हैं और अपने कई अनुयायियों को मुक्ति दिलाने के लिये १, १४,००० रुपये इकट्ठे किये हैं। औरगजेब ने उन १२ उपदेशकों को बंद बरबाया और उन लोगों के स्थान पर मुल्लाओं का धर्मप्रचार के लिये भेज दिया।^{७२} १६६८ ई० में वर्षा की कमी के कारण मारवाड और गुजरात में अकाल की परिस्थिति पैदा हुई थी।^{७३} १७०५ ई० में जब औरगजेब ने मुना कि द्वारिका में मुगलमान यानेश्वर पर हमला हुआ, उसने तुरन्त ही द्वारिका मन्दिर तुड़वाने का आदेश दिया।^{७४} जब पीलाजी गायकवाड ने १७१६ ई० में^{७५} गुजरात पर आक्रमण करना शुरू किया, तब ने गुजरात में मुगलसाम्राज्य के अन्त के डके बजने लग गये थे।

बुंदेलखंड की स्थिति

बुंदेलखंड के बुंदेला मुगलों के कायमी दुश्मन निकले। मुगल शासन के समय बुंदेलखंड का अधिकांश भाग इलाहबाद के सूबे में था। कुछ दूसरे भाग जैसे कालपी,

- ६६ (घ) गो० ह० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ११२
 (ब) Gazetteer of Bombay Presidency, V, I, Pt. I p. 285
 ७० गो० ह० देसाई, गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास, पृ० ११४, ११६
 ७१ Gazetteer of Bombay Presidency, V.I, Pt. I p. 289
 ७२ वही, पृ० २६३
 ७३ वही, पृ० २६०
 ७४ वही, पृ० २६५
 ७५ (घ) वही, पृ० ३०१
 (ब) अनु० यदुनाथ सरकार, आईन-इ-अकबरी, २, पृ० १७७, १६५, १६८-६९

एरच, घोर चंदेरी आदि आगरा और साववा सूबों में थे । बुंदेलों के उत्तर में पहिले देस के इस भाग पर चंदेरी का प्रभुत्व रहा था । हिन्दु १० वीं शताब्दी के अन्तिम अनुषाण में चंदेरी की शक्ति क्षीण हो गई थी । घोरभद्र के पुत्र पंचम के बंगर वीरगिहदेव ने अरन राज्य की सीमाएँ विस्तृत की । उनमें महीनी की अरनी राखधानी बनाया और बार्जिनर, बानवी की अरन राज्य में मिला लिया ।^{१६} अरवर के शासनकाल में १६०० ई० में वीरगिह बुंदेल न दगा मचाया था । उनको दवाने में अरवर की अमरकला मिला ।^{१७} वीरगिह देव के परवाल उनका ज्येष्ठ पुत्र जुमार गिह गही पर बंटा ।^{१८} शाहजहाँ अरन शासनकाल के आरम्भ में ही किसी कारणवत् जुमारगिह में अयमन्न हो गया । अर जुमारगिह आगरा में आगरा औरछा बरा आया । महाबतगा, मोरही लारी और अरदुन्नता के आक्रमणों में जुमारगिह शक्तिहीन हो गया और मार्च १६०६ ई० में शाहजहाँ में अमा माग ली । तदनन्तर वह मुगलमना में ही रहा और अरन पुत्र विक्रमाजीन को वही छोड़कर औरछा बार्जिन लौटा आया ।^{१९} लेकिन मुगल अरनीना में गुटकारा जाने का प्रयत्न उनमें जारी रखा । मुगल सेना के वेणुर्ण आक्रमणों को जुमारगिह रोक न मारा । फिर भी जुमारगिह और विक्रमाजीन अरवों में भाग गये और मोड़ी ने उन्हें मार डाला । ऐसे अन्य विशाहियों के मामल शाही अरिशाह का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए मराठ के आदेशानुसार उनके बड़े हूण गिर मोहोर नगर के दरवाजों पर टाग दिये गये ।^{२०} जुमारगिह की मृत्यु के बाद औरछा का राज्य लगभग दो वर्ष तक चंदेरी के देवीगिह के अधिकार में रहा । परन्तु स्थानीय जनता तथा जुमारगिह के अन्य बुंदेला अनुयायियों के सक्रिय विरोध के कारण विक्रम होकर अरनः देवीगिह औरछा छोड़कर बार्जिन चंदेरी लौट गया । तब जुमारगिह के राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और वही के शासन के लिए शाही कर्मचारी नियुक्त कर दिये गये ।^{२१} लेकिन अब बुंदेलों का नेतृत्व अरमान के पिता अरनराय ने किया । मुगल सेना में कई बार पराजित होने पर भी उन्होंने अरने विद्रोही कार्यो को यथावत् जारी रखा । इस प्रकार के कार्यो में वे अनेक अनिय हो गये थे कि शक्ति के

३६. मान कवि कृत, अरप्रकाश, पृ० ६-७०

३७. V. D. Mahajan, India since 1526, p 156

३८. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा अरमान बुंदेला, पृ० २०

३९. Sir Jadunath Sarkar, History of Aurangzeb, I. p. 17

४०. वही, पृ० २२-२६

४१. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा अरमान बुंदेला, पृ० २३

प्रयोग से उनका दमन करना कठिन था। लेकिन औरंगजेब ने १६६१ में उसको मालवा आदि के राजाओं की सहायता से दबा दिया।^{५२} उनकी मृत्यु के बाद उनके पाँच पुत्रों में से^{५३} छत्रसाल और अंगद ने रिता जैसी ही विद्रोही प्रवृत्ति करनी चाही। लेकिन उन्होंने स्पष्टनया देख लिया कि मुगल साम्राज्य के विरुद्ध बुंदेलखण्ड में कहीं से भी कोई सहायता न मिलेगी। अतः वे निराश होकर छत्रमाल ने मुगलसेना में ही नौकरी करने का निश्चय किया।^{५४} फिर भी मुगलों के प्रति जो असन्तोष उनके मन में था वह बना रहा। उसी समय शिवाजी की अभूतपूर्व सफलताओं के समाचार उनके कानों तक आते रहे और अन्ततः वे शिवाजी से प्रेरणा प्राप्त करने के हेतु उनसे जा मिले। वे कुछ समय तक शिवाजी के साथ पूना में ही रहे।^{५५} यहाँ पर उनको राजनीतिक संबंधी कूटनीति, युद्धकौशल, आदि की जानकारी मिली और उसका उपयोग इन्होंने बाद में बुंदेलखण्ड में किया। शिवाजी ने छत्रसाल को बुंदेलखण्ड में मुगलों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम शुरू करने की सलाह दी। इस प्रकार दक्षिण में स्वतंत्रता की प्रज्वलित मशाल से एक विनगारी बुंदेलखण्ड लायी गई और उससे नर्मदा के उत्तर में विद्रोह की वह अग्नि धधक उठी जो औरंगजेब के साथ ही उसके सारे उत्तराधिपतियों के लिए एक दुरूह समस्या बनी।^{५६} प्रारम्भ में उनके पास न साधन थे और न महयोगी थे। लेकिन उसी समय औरंगजेब के हिन्दू विरोधी कई आदेश निकल चुके थे। इमी के अनुसार ग्वालियर में फिदाईख़ां ने औरंगजेब के प्रसिद्ध मदिंगे को गिराने के उद्देश्य में १८०० घुडसवारों की एक सेना एकत्र की। बुंदेलों ने इस सेना को पराजित किया।^{५७} अब छत्रसाल के लिए बुंदेलखण्ड में आकर उन्होंने ५ घुडसवार और २५ पैदल सैनिकों की टुकड़ी बनायी। क्रमशः उनके साथी बढ़ते गये, क्योंकि फिदाईख़ां के शोरछे पर आक्रमण और औरंगजेब की मंदिरों को नष्ट करने की नीति ने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर चोट की थी, जिसमें बुंदेलखण्ड का जनसाधारण अब छत्रमाल को हिंदू-धर्म का रक्षक और स्वतंत्रता का पोषक समझने लगा था। उनके पिता के पुराने साथी भी अब उनसे

५२. Richard Burn, The Cambridge History of India V IV, p 313

५३. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ३२

५४. वही, पृ० ३४

५५. पल्ला पत्र संग्रह, पृ० ५७

५६. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रमाल बुंदेला, पृ० ३७

५७. लाल कवि कृत छत्रप्रकाश पृ० ८२, ८३

घासिते ।^{८८} छत्रमाल के निम्नतर गावतल्लो में घामोनी के निरुद्धनी प्रदेश में मुगलमता मगभग उठ गी गई थी वही चारों घोर घोरघोरघोर फौज गई । घानी प्रारम्भिक मकरवालों में उभारिती होकर उभरी । घानी कार्यक्षेत्र विस्तृत कर दिया । १६७४ ई० में १६७६ ई० तक छत्रमाल के प्रभावक्षेत्र का विस्तार हुआ । १६७५ ई० में मगभग छत्रमाल ने पन्ना पर घातमग किया थी वही के गौड़ राजा को हारकर घातना प्रकृत्य मसारित किया ।^{८९} छत्रमाल की इन मकरवालों में दूर दूर तक मगति फैल गई । बुंदेलखण्ड में कदा मने भारतवर्ष में उगरी वीरता प्रविष्ट हो गई ।^{९०} छत्रमाल की इस मगति ने ही स्वामी शासनाय को बुंदेलखण्ड की घोर जाने को प्रेरित किया ही यह मभाषित है । दूरदली छत्रमाल ने घानी मक्ति को पुनः मगठित करने के उद्देश्य में १६७६ ई० में नाग्य राजिगो ही घाने वही के निचे घोरगजेव में शमा घातना की ।^{९१} मगति यह मिति घन्यममय तक ही रही । पुनः छत्रमाल ने विद्रोही प्रकृति शुरू कर दी थी वही वही मुठों में विरार पाते रहे । घानी मगातर घमकनवालों में घोरगजेव मुख्य घोर मभाषित हो उठा । छत्रमाल को दवाने के लिए मुगल मनापतिगो की मम्मिदित मक्ति का घाथोत्रन किया गया । इस समय भी छत्रमाल ने मघाट में शमा मगिन में ही मगनी कुमल ममभी । मगति बाद में मुरंत ही उन्होंने काली के घाम लूटपाट शुरू कर दी । गादीपुर के मुठ में उसकी पराजय हुई और वह घमम्न १६८६ में मुगलमना में मम्मिदित हो गया ।^{९२} किन्तु कुछ ही समय बाद उन्होंने फिर बुंदेलखण्ड में लौटने ही मुगलों में शकुना ठान ली । जनवरी १६८४ में मगिन घम्रेव १६८६ तक घोरगजेव का मारा घ्यान दक्षिण में मीलकुंश तक बीजापुर के राजगो तथा मराठों की मला का घन्त करने में लगा रहा और इस समय का फायदा उठाकर छत्रमाल न राठ पनवागी म्हादि छोटे-छोटे कस्बों और जागीरों पर घातना घघिकार म्हामिन कर लिया ।^{९३} घोरगजेव के उत्तराधिकारियों के शासन-काल में छत्रमाल की यही प्रकृति जारी रही । मराठों की मगि छत्रमाल भी घाने राज्य की शासन की ममम्यालों पर विशेष घ्यान नहीं दे सके, क्योंकि उनकी

८८. वही, पृ० ६४

८९. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रमाल बु देवा, पृ० ४७

९०. गोरेवाल निजारी, बु देवलखण्ड का मदिपल इतिहास, पृ० १८३

९१. पन्ना पत्र सप्रद, पत्र १०१

९२. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रमाल बु देवा, पृ० ५४

निरंतर युद्धों में ही लगे रहना पड़ता था।^{६४} लोप इन युद्धों में प्रस्त थे। छत्रमाल की रणनीति मुगलों ने खुले मैदान में युद्ध करने की न थी। इतना स्पष्ट है कि उनकी प्रतिभा शिवाजी की तुलना नहीं कर सकती। अपनी प्रजा की भलाई के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे।^{६५} उनका धार्मिक दृष्टिकोण बहुत ही उदार था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल हिन्दू प्रजा के दमन की कहण कहानी है। इस्लाम धर्म के नाम पर हिन्दू प्रजा और हिन्दू-धर्म का विनाश देशव्यापी था। विशेषत औरंगजेब की मुस्लिमतर प्रजा के प्रति जो क्रूर और धर्मांध नीति थी उनसे प्रजा प्रस्त थी।^{६६} औरंगजेब की मद्द्काशाओ और धर्मांधता ने कई निर्दोषों का खून बहाया।^{६७} वस्तुत वह अपने जमाने को भी अच्छी तरह समझ न पाया, वह उल्टी चाल चलने वाला आदमी था और अपनी सारी योग्यता और उत्साह के बावजूद, उसने अपने पूर्वजों के काम को मिटाने की कोशिश की।^{६८} सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं,^{६९} उस अहृदय की उम भावुक उदारता, परास्त शत्रुओं के प्रति उस शूरचित विशालहृदयता और निजी जीवन में उस सहज आत्मीयता की कमी थी, जिसने महान अकबर को अपने समकालीनों और आगामी पीढ़ियों के प्रेम, और प्रशंसा का पात्र बना दिया। अंग्रेज प्यूरिटनों को भाति औरंगजेब निर्दय दण्ड और प्रतिहिंसा के पुगने सिद्धान्तों में प्रेरणा ग्रहण करता था और वह भूल गया था कि दया भी ब्रह्मांड के सर्व शक्तिमान न्यायाधीश का एक विशिष्ट गुण है। ऐसे अशात और अत्याचरपूर्ण वातावरण में मुस्लिमतर

६४ वही, पृ० १३०

६५ से० विद्योगी हरि, छत्रमाल ग्रन्थावली, पृ० ८१। अपने इन्ही विचारों को छत्रमाल ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

छत्रमाल जन पालिवो, अरहि घालिवो दोय।

नहि विसारियो, धारियो, धराधरन कोउ होय ॥

बालक लौ पालहि प्रजा, प्रजापाल छत्रमाल।

ज्यो सिंसु हित अनहित सुहित, करत पिता प्रतिपाल ॥

६६. Richard Burn. 'The Cambridge History of India,' V. IV, p. 334

६७. Baijnath Puri, Indian History—A Review. p 84 and lastly Aurangzeb, the most shrewd, ambitious and bigoted ruler who shed more innocent blood than any one else.

६८. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त), पृ० २२६

६९. सर जदुनाथ सरकार, औरंगजेब के उपाख्यान (घ पेजी में अनुदित), पृ० २३

भारतीय प्रजा को जीवित रहने की शक्ति भक्तों और मन्नों की ममभाव, प्रेम और समन्वयवाद युक्त वाग्विषयो ने दी है ।

(ख) सांस्कृतिक गृष्टभूमि

डा० राधाकृष्णन् ने ठीक ही कहा है कि किसी भी जीवन समाज में निरन्तर बने रहने की शक्ति और परिवर्तन की शक्ति, दोनों ही होनी चाहिए । किसी प्रगम्य समाज में एक पीढ़ी से लेकर दूसरी पीढ़ी तक शब्द ही कोई प्रगति होती हो । परिवर्तन को बहुत मन्देह की दृष्टि में देखा जाता है और सारी मानवीय ऊर्जाएँ स्थिति को यथापूर्व बनाए रखने पर केन्द्रित रहती है । पर किसी मध्य समाज में प्रगति और परिवर्तन ही उसकी गतिविधि की जान होते हैं । समाज के लिये अन्य कोई वस्तु इतनी हानिकारक नहीं है जितनी कि घिमीपिटी विधियों से और पुरानी पड़ गई आदतों से चिपटे रहना, जो कि केवल जड़ता के कारण बची बनी आती है ।^{१००} भारतीय सांस्कृतिक धारा भी कई परिवर्तनों और प्रतिक्रियाओं को साथ में लेकर बह रही है । अनेक विदेशी जातियों ने इस देश पर आक्रमण किये, पर इनके आक्रमणों और शासन ने यहाँ की मूल सांस्कृतिक धारा को नष्ट नहीं किया । इसीलिये डा० राधाकृष्णन् ने कहा है कि, किम विचित्र सामाजिक कीमिया-गिरी में भारत ने अपने विजेताओं को वश में किया और उनको रूग्न्तरिन करके अपना ही बना लिया ।^{१०१} इनने सामाजिक देशान्तरो गमनों (प्रवासनों) में, उचलपुखलों और राजनीतिक परिवर्तनों में, जिन्होंने अन्त्यत्र समाज का हन ही बदन डाला है, वह कैसे लगभग ज्यों की त्यों बनी रही ? इसका क्या कारण है कि उनके विजेता अपनी भाषा, अपने विचार और प्रथाएँ उस पर लाद पाने में सफल नहीं हुये; यदि थोड़ी बहुत सफलता मिली भी, तो बिल्कुल छिछली और ऊबरी ढग की ?^{१०२} फिर भी, इतना स्पष्ट है कि, ईसा की १२वीं शताब्दी तक भारतीय सस्कृति की पावन-क्रिया बहुत ही अच्छी थी ।^{१०३} मुस्लिम आक्रमणों ने इस शक्ति को मन्द कर दिया । मुस्लिम सस्कृति के साथ चिरकाल तक सम्पर्क में रहने के कारण इस देश के निवासियों के सामाजिक जीवन—कला, शिक्षा, रहन-महन, आदि—तथा धार्मिक जीवन व विचारों पर उसका प्रभाव पडा, जो स्वाभाविक ही था ।

सामाजिक जीवन

चीनी यात्री फाह्यान च द्रगुप्त के शासनकाल में भारत में आया था और उसने तत्कालीन समाज का चित्र देने हुये भावनीय जनता के सुवमय जीवन का

१००. डा० राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, पृ० १३१

१०१ वही, पृ० ११६

१०२ निबद्धत ज्ञानी, भारतीय सस्कृति, पृ० ३६७

वर्णन किया है।^{१०३} वंमा सुत्रानुभव भारत ने पुन हर्ष के शासनकाल में किया। छकबर के शासनकाल से पहले इस समाज ने अत्याचार और घमांधता को सहन किया। छकबर ने ही इनको फिर से मानो कि शांति और एकता के दर्शन करवाये।^{१०४} लेकिन उससे पहले हिन्दू लोग ऐसे संसार में जी रहे थे जिसमें विवाद सर्वव्यापी था। सारा वातावरण सन्देह, अनिश्चितता और भविष्य के अत्यधिक भय में भरा है।^{१०५} मुरिलमो के आगमन के साथ ही भारतीय संस्कृति ने नया मोड़ लिया।^{१०६} प्राचीन मय्यता के कई अन्यतम नमूने मुसलमानों के प्राथमिक आक्रमणों के युग में ही समाप्त हो गये थे। ई० सन् की सातवीं शताब्दी से अरब सौदागरो के साथ प्रवेश करने वाले इस्लाम का तत्कालीन भारत के हिन्दू राजाओं ने स्वागत किया था।^{१०७} इंगीलिये टाउन्मेन्ड ने कहा है कि यहाँ पर इस्लाम जबरदस्ती के कारण नहीं फैला।^{१०८} उनके इस विधान को अंशतः सत्य मान लें। लेकिन, समस्त मानव-समुदाय को मुस्लिम बनाना और किसी भी अन्य धर्म-मत का नाश करना मुस्लिमशासन का आदर्श रहा। राजकीय व सामाजिक आपनियाँ काफिर पर धोपी जाती थी और उसको मुसलमान बनाने के लिये रिश्वत का उपयोग किया जाता था। इस्लाम न मानने वालों की सख्या का बढना शासन के लिये भय रूप था, इंगीलिये शासन नीति रही कि बिन मुस्लिम प्रजा अन्दर ही अन्दर अपनी गरदन काटे। चाहे किमी भी पक्ष की कतल होती हो, पर इस्लाम को फायदा ही था। काफिरों की सख्या कम हो इसलिये छकबर ने ऐसे लोगों को लडने दिया था। इस तरह बिनमुस्लिम नागरिक जीवन जो नहीं सकता था, उमका जीवन दलित-वर्ग का-सा जीवन था। मुसलमान शासक ने उसके जीवन व मालमिलिकयत का नाश नहीं किया, इसलिये उसे कई राजनीतिक व सामाजिक मुसीबतें सहनी पड़ी और जजिया कर देना पडा। हिन्दुओं को जीने भर का अधिकार था क्योंकि उनके मर जाने से राज्यकोश में कर की कमी हो जाने का भय था।^{१०९}

१०३. V. A. Smith, Oxford History of India, p 154

१०४. Will Durant, Our oriental Heritage, p. 454

१०५. Dr. S. Radhakrishnan, Religion and Society, p. 2.

१०६. P. Thomas, The Story of the Cultural Empire of India, p. 201

१०७ (अ) Logan Malbar, Vol 1, p. 245

(ब) प० सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, पृ० ५७

१०८. M. Townsend, Asia and Europe (1911), p. 44

१०९. डा० पीताम्बरदत्त बड्डवाल, हिन्दीक ब्य में निर्पुण सम्प्रदाय, पृ० ६८

राजनैतिक दशा के समान हिन्दुओं की सामाजिक दशा भी शोचनीय थी। ये भिन्न-भिन्न जातियों और उपजातियों में विभक्त थे। वे मिलकर काम नहीं कर सकते थे।^{११०} सामान्य प्रजा को इस्लाम के स्पष्ट और सरल सिद्धांत हितकर लगे और उन्होंने इस्लाम को स्वीकार किया। विशेषतया भाग्यनीय वर्गों व्यवस्था के कारण, नौकी ममभी जान वाली जाति के अन्याय का अनुभव करने वाले वे लोग थे। संभव है, ऐसे लोगों के इस्लाम-स्वागत पर मे ही अर्नेल्ड ने कहा है कि यहाँ के लोगों ने इस्लाम को स्वेच्छा में अपनाया।^{१११} श्री मन्थकेतु विद्यालंकार ने बताया है कि^{११२} इस्लाम का उद्देश्य यह था कि वह सम्पूर्ण विश्व को आत्मसात कर ले। उसकी दृष्टि में सब मनुष्य एक बराबर थे, बशर्ते कि वे इस्लाम को स्वीकार कर लें। मुसलमान बन जाने के बाद ऊँच-नीच, सूत-असूत और स्वामी दास का भेदभाव नहीं रह जाता था। भारत के जाति भेद-प्रधान हिन्दू धर्म के मुकाबले में इस्लाम की यह बात बड़े महत्त्व की थी। इस देश के शूद्रों व अन्य नीच ममके जाने वाले लोगों के लिए अपनी स्थिति को ऊँचा बनाने का यह सुवर्ण अवसर था। हिन्दू धर्म का परित्याग कर इस्लाम को स्वीकार कर लेने मात्र में वे शूद्र या असूत की हीन स्थिति से ऊँचा उठकर शासन श्रेणी में सम्मिलित हो सकते थे। शूद्रों की दशा बड़ी दयनीय थी।^{११३} यदि उच्च जातियों का शूद्र और असूतों के प्रति भेदभाव का व्यवहार था तो दूमरी और छोटी जातियों में कई उपजातियाँ थीं जिनका प्राप्त में भी भेदभाव का सम्बन्ध था। विविध हिन्दू जातियों में अनेक कुनीन होने का विचार भी मुगलकालीन समाज में भली-भाँति विकसित हो गया था, और कुनीन समझी जाने वाली जातियाँ अन्य लोगों को अनेक हीन ममके लगी थी।^{११४} अकर के काल तक जातियाँ-उपजातियों की संख्या अत्यधिक बढ़ गई थी। अकर के शासनकाल दर्याय वायस्य, चौहान, चन्देल, गहड़वाण, गौमती, गहमोन, अहिर, लोध, कुर्मी, घाघरी, मेहतर, भील, कोल, खासिया, खारी आदि ब्राह्मणोत्तर जातियाँ पंदा हो गई थी।^{११५} हिन्दुओं में व्यवसाय और स्थान के आधार पर जो जातियाँ रुढ़िगत

११०. ईश्वरी प्रसाद, भारत वर्ण का इतिहास, पृ० १६३

१११. T. W. Arnold, The Preaching of Islam (1913), p. 255
'By far the majority of them, entered the pale of Islam of their own free will'

११२. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ४६०

११३. R. V. Russel, Tribes and Castes of the Central Provinces, Vol. I. P 72

११४. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५२

११५. G. S. Ghurye, Castes and class in India, p 110

वन गई थी, उन्होंने अपना-अपना एक ऐसा संगठित रूप धारण कर लिया था कि उसके किसी व्यक्ति का बहिष्कृत कर दिया जाना कठिनतम दंड था। हिन्दुओं की तरह मुसलमानों में भी आपस-आपस में भेदभाव था ही। सुन्नी और शिया में पारस्परिक भेद थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही में विकृतियों ने घर कर लिया था। कबीर ने इसके बारे में कहा है—“इन दोउन राह न पाई।”

मुगलकालीन सामाजिक जीवन सामन्त पद्धति पर आश्रित था, जिसमें बादशाह का स्थान मूर्धन्य था। उसके बाद अमीर-उमराओं का स्थान था, जो बड़े आराम के साथ जीवन व्यतीत करते थे। न केवल बादशाह के, अपितु अमीर उमराओं के भी बड़े-बड़े हरम (मन्तःपुर) होते थे, जिन में सैकड़ों हजारों स्त्रियाँ निवास करती थीं। अबुलफजल ने आईने अकबरी में लिखा है कि अकबर के समय में राजधानी में इतनी वेश्याएँ (५००० स्त्रियाँ)^{११६} थीं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती थी।^{११७} औरगजेब ही एक ऐसा शासक था जिसने मद्यपान और वेश्यावृत्ति को दूर हटाने का प्रयत्न किया था, अलबत्ता उसे सफलता न मिली। औरगजेब की धर्मचुस्तनीति के आन्दोलन में मद्यनिषेध और वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध का ममावेश हुआ। इन दोनों के लिए उनकी छोर से किये गये अथरु प्रयत्न नितान्त अमफल रहे। न संपूर्ण मद्यनिषेध वह लागू कर सका और न वेश्यावृत्ति को बहिष्कृत कर सका या उनको विवाहित करा के समाज में स्थान दिला सका। औरगजेब की चुस्त नीति भी सत्सार के सबसे पुराने व्यवसाय वेश्यावृत्ति को काबू में न ला सकी। क्योंकि इनकी कानूनी पाबन्दी होने पर भी सूरत में कई वेश्याओं का होना बनाया गया है।

अमीरउमरा और भवसाधारण जनता के बीच की एक मध्य श्रेणी का विकास भी इस युग में हो गया था। सर्व साधारण जनता की दशा अत्यन्त हीन थी। वे लोग अपनी प्राथमिक आवश्यकताएँ भी कठिनता से प्राप्त कर पाते थे।^{११८} शाहजहाँकालीन स्थिति का वर्णन करते हुए मोरलैंड ने बड़ा ही कर्ण चित्र दिया है। दूमरों को वस्त्र पहनाने के लिए सख्त परिश्रम करने वाले जुगाहे स्वयं वस्त्रहीन रहते थे। आधे और शहरों की धुंधा मिटाने के लिए कड़ी मेहनत करने वाले किसान स्वयं धुंधात रहते थे। अपने आपको गुलामों के व्यापारियों को सुपुर्द करने के

११६. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५०

११७. अबुल फजल, आईने अकबरी (बनकमैन् द्वारा अनुदित), पृ० १६२

११८. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५१

अतिरिक्त मनुष्यमक्षण, आत्महत्या या क्षुधा से पीड़ित होकर मर जाने का उपाय ही उनके लिए बचा था ।^{११६}

ही माय माय प्रो० मरकार ने बताया है कि^{१२०} किमानों और साधारण जनता कोशेती में प्रोत्साहन मिलने वना प्रयत्न मुगल काल में किया जाता था और बलवान निर्बलों के प्रति अत्याचार न बनें इसनिये मावधानी रक्खी जाती थी । किसान भूखा न मरता था और कई सालों का महमूल लेना बाकी हो तो सरल हत्तों में लिया जाता था ।^{१२१} जब कभी मम्राट की मेना गावों में मे होकर गुजरती और किमानों को उसमें नुकमान होना तो उन किसानों में कर बम लिया जाता था अथवा नुकमान की माया के मुताबिक पैंगे दिरे जाते थे ।^{१२२} सूवेदार की जबरदस्ती पर बादशाह में फरियाद की जा सकती थी और उस फरियाद के आधार पर अधिकारी को सना पर मे हटा दिया गया हो ऐमे कई उदाहरण शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में मिलते हैं ।^{१२३}

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने ठीक ही बताया है^{१२४} कि सर्व साधारण जनता को राजकर्मचारी में डरकर के जीना पडता था । मजदूर और नौकर लोग उन से स्वेच्छापूर्वक वेतन व मजदूरी तय नहीं कर सकने थे । छोटे दूकानदारों को भी समीर उमराओं और मनसबदारों का भय सदा बना रहना था । शक्ति सम्पन्न राजकर्मचारी बाजार भाव से कम कीमत पर उनमें माल खरीदने थे, और कीमत की प्राप्ति के लिये वे उनकी कृपा पर ही निर्भर रहते थे । वे जानबूझ कर गरीबी का जीवन बिताते थे, क्योंकि वे सदा राज कर्मचारियों की लूट व शोषण में उरने थे । फिर भी इतना निश्चिन्त रूप से कहा जा सकता है कि^{१२५} कीमतों की रमी के कारण साधारण जनता भी बहुत कम खर्च में अपना निर्वाह कर सकती थी । एक आदमी का प्रतिदिन का खर्च दो घाने में अधिक नहीं था । मुगल युग में भी दामता की प्रथा प्रचलित थी, फिर भी कहना उचित होगा कि गुलामों की मर्यादा इस युग में बहुत

११६. W. H. Moreland, From Akbar to Aurangzib, pp. 304-5
 १२०. Sir Jadunath Sarkar, Mughal Administration, pp 85-86
 १२१. Ibid, p. 88
 १२२. Frederick Augustus, The Emperor Akabar etc., (Trans. by A. S Beveridge), pp. 273-77
 १२३. Sir Jadunath Sarkar, Mughal Administration, p 108
 १२४. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५५१-५२
 १२५. V. A. Smith, O-ford History of India, p. 391

कम थी। गुलामी का क्रय विक्रय कोई समाधारण बात नहीं थी, और बड़े नगरों में कोई भी मनुष्य कीमत देकर दास-दासी को खरीद सकता था। गुलामी के प्रति बड़ा निर्दय व्यवहार होता था। वे स्त्रियों और बच्चों को भी गुलाम बना लेते थे। इस-निये समाज में निराशा और भय का वातावरण रहता था। परिणाम स्वरूप, शासक वर्ग और मध्य श्रेणी का जीवन विनासिता की ओर अग्रसर हो रहा था। मुसलमान समाज का नैतिक स्तर बहुत ही नीचा हो गया था। बाल विवाह की प्रथा दूर करने का प्रयत्न अकबर ने किया था। उसने दहेज प्रथा, बहु विवाह और निकट सम्बन्धियों के विवाह को रोकने के लिए भी आदेश दिये थे। मुगल युग में बालविवाह और दहेज प्रथा का विकास हो चुका था। विधवा विवाह को नहीं अपनाया गया। फिर भी विधवाओं के सती हो जाने की प्रथा निकाल देने का प्रयत्न किया गया था। समाज में नियन्त्रण-शक्ति का इतना अभाव था कि नैतिक बन्धन ढीले पड़ गये थे। विनासिता और कामान्धता का साम्राज्य बढ़ गया था। फिर हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान समाज अधिक पतित था। १६वीं शती के हिन्दू धार्मिक मिलनसार, उदार, प्रसन्नमुख, न्यायप्रिय, चारामप्रिय, कुशल व्यापारी, मत्पनिष्ठ, कृतज्ञ और रूढ़िवादी थे।^{१२६}

भले ही मुगलों का साम्राज्य स्थापित होने पर कुछ समय के लिए हिन्दुओं को धर्मांधता के दर्शन कम करने पड़े हों। लेकिन औरंगजेब के समय में हिन्दुओं को सिर उठाने का साहस नहीं होता था। वे शानदार घोड़े की सवारी नहीं कर सकते थे। अच्छे वस्त्र नहीं पहन सकते थे। हिन्दू राजा राज्यारोहण के वक्त टीका न लगा सकता था। हथियार वाककर धूमना बन्द कर दिया गया। १६६८ में औरंगजेब ने देशभर के तीर्थों पर स्नान के मेले बन्द कर दिए। धीरे-धीरे होली और दीवाली की भी मुमानियत हो गई। यदि कोई इन त्योहारों को मनाना ही चाहे, तो वह बाजार से बाहर मना सकता था।^{१२७}

गुजरात को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि अकबर, जहाँगीर और शहाजहाँ का समय भ्रान्तिपूर्ण था। औरंगजेब के शासन दम्यन जैसा देशभर में हुआ, वैसा गुजरात में भी अराजकता, गैर व्यवस्था, लूट, अकाल जैसी यातनाओं का सामना किया। औरंगजेब की धर्मांधता से गुजरात की जनता भी परेशान थी। इसीलिए धी बन्हेयाबाज मुंशी ने बताया है कि औरंगजेब की नीति एवं मराठाओं की लूटने अराजकता और कमनसैबी के एक नये काल के प्रारम्भ को अपनी मुहर

१२६. Max Muller, India—what can it teach us? (1919), p. 57

१२७. Snri Ram Sharma, Mughal Government and Administration pp 185-220

लगा दी।^{१२८} गुजरात में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध भी अच्छे थे, क्योंकि गुजरात की जनसंख्या के आठ-दस प्रतिशत मुस्लिम थे वे पहले हिन्दू ही थे। अपनी भूमि के सामूहिक व सामाजिक प्रभाव को दूर हटाकर वे अलग न हो सके।^{१२९} गुजरात के सामाजिक जीवन में संकुचितता के और मुद्दों के दर्शन होते हैं, इसका कारण देने हुए श्री कन्देपालाल मुशी ने कहा है कि, १६वीं-१७वीं शताब्दी में गुजरात ने अपना लोहा हथौड़ा बंधव पुन प्राप्त किया। मुगलशासन प्रदेश के कारण उमने एक निश्चिन्त अस्तित्व बना लिया और वह पुन समृद्ध हुआ। राजनीतिक प्रभाव को सीमितक्षेत्रों तक सीमित करने में प्रजा मफल हुई। संकुचित परम्परा के अन्तर्गत मुगल और मन्तों प्राप्ति के लिये उन्होंने सामाजिक अवरोधों को और भी चुस्त बना दिया। इस समय दर्याने ज्ञानियों के संकुचित विकास की ओर मनुष्य आकर्षित होने जा रहे थे। सामाजिक बन्धन अधिक जटिल हुए, समुदाय के लिये व्यक्ति को मिटाना पड़ा, सम्पृश्यता ने प्रवेश किया। ... समाज विभक्त होने पर भी आत्मनिर्भर बना, पारम्परिक आधार और सेवा के भाव का अपने स्तर पर व्यापक और गहराई तक प्रसार हुआ। सामाजिकतन्त्र ने अपनी स्वतन्त्रता गंवा दी थी लेकिन उमने प्रतिकारात्मक शक्ति प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार अपनी जाहिर पराजय के समय में भी सभ्यता विजयी हुई।^{१३०} अलवना, गुजरात ने भी अत्याचारों को मटन किया था। जजियाकर-लागन-महसूल आदि के देशभर में भय में अधिक धन गुजरात ने दिया था। जो करीब ६०,७८,४६,१३५ दाम था।^{१३१} १७वीं शताब्दी में बारबार कौली और राजपूतों के कारण अज्ञान और भय का वानावरण फैल जाना था। फिर भी, तत्कालीन भारत में गुजरात अधिक समृद्ध प्रदेश था। जब औरंगजेब ने तीर्थयात्राकर लेना शुद्ध किया तब गुजरात के धनिकों ने मन्दिर खुले रखवाने के लिए धन देने की तैयारी बतायी थी।^{१३२}

राजपूतों के साथ जो दूरदर्शितापूर्ण व्यवहार वावर ने शुरू किया था बाद में विजयन औरंगजेब के सिवा सभी बादशाह ने जारी रखा था, अतः राजस्थान

१२८. Dr. K. M. Munshi, Gujarat and its Literature, p 258

१२९. Ibid, p 261

१३०. Ibid, pp 224-225-228

१३१. गो० हा० देसाई, गुजरातનો अर्वाचीन इतिहास, पृ० २४६

१३२. Shri Ram Shirma, Mughal Government & Administration, p 65
'European travellers speak of rich Hindus of Gujarat agreeing to pay one lakh of rupees a year for permission to keep their temples open under Aurangzeb'

में सामाजिक जीवन इतना अशान्तिपूर्ण न रहा। अकबर ने अपने पितामह की नीति को राजपूतों के साथ विवाह आदि रीति से सुदृढ़ किया। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में भी राजस्थान में जीवन अशान्तिपूर्ण नहीं था। इस शान्त वातावरण का भोका मिलने पर हिन्दु-राजाओं ने श्रेष्ठ राजनीति से धीमे-धीमे अपने राज्य को पुष्ट कर दिया।^{१३३} जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ही मारवाड़ राज्य की पुत्रियों की मतान थे, इसलिये राजपूत राजा और प्रजा में उनके प्रति आदर था और भय का वातावरण बिलीन हो गया था। जिस दिन शाहजहाँ मत्तारुह हुआ उस दिन को उदयपुर में आनन्द-उत्सव के साथ मनाया गया। किमी भी मुस्लिम बादशाह के राज्याभियेक के प्रसंग पर हिन्दुओं ने वसा आनन्दोत्सव नहीं मनाया था।^{१३४} लेकिन औरंगजेब ने मत्ता पर आने ही राजपूतों को दुश्मन बना लिया। उसके अत्याचारों में तर्ग आकर मेवाड़ के राजा राजसिंह ने औरंगजेब को जो पत्र लिखा था उस पर से समाज-जीवन का चित्र उपस्थित होता है। पत्र में लिखा था, “आपकी प्रजा अत्याचार में अत्यन्त पीड़ित है, लोग दुर्बल हो गये हैं। चारों ओर से प्रदेश निर्जन हो जाने के तथा कई सक्कों के ममाचार मिलते हैं। राजमहलों में मुक्तिमन्त दारिद्र्य दिखाई पड़ता है। बादशाही और राजाओं की जब ऐसी हालत है तो सामान्य लोगों की दुर्दशा की बात ही क्या? ... चारों ओर व्यापारी रो रहे हैं, मुसलमान अव्यवस्थित हो रहे हैं, हिन्दुओं पर आपत्ति है। प्रजा का दुःख इतना बढ गया है कि शाम को भोजन भी नहीं मिलता और दिन भर परेशानी में अपना मर पिटते हैं।^{१३५} राणा राजसिंह के समय में मेवाड़भूमि भयकर अकाल और महँगाई से पीड़ित थी।^{१३६} भारत को अन्य भागों की तुलना में मेवाड़ में दुर्भिक्ष और महँगाई का प्रमाण सविशेष था। टॉड ने बताया है कि न खाने योग्य चीजें लोग दुर्भिक्ष के कारण खाने लगे पति अपनी पत्नी को तथा पत्नी अपने पति-मतानों को छोड़-छोड़कर भागने लगे थे, माँ आप अपनी मतानों को बेच देते थे। लोग क्षुधा-मृपा से पीड़ित थे। जातिभेद हट गये, बल पराक्रम-ज्ञान का लय हुआ। लोग कन्दमूल वृक्ष के पत्तों खाने लगे। कई कुटुम्बों का नाश हुआ।^{१३७} प्रजा में चारित्र्य उच्च बढ़ा का था। लोग परम्परावादी और अधश्रद्धालु थे। स्त्रियों का स्थान सम्माननीय था। सम्पूर्ण

१३३. कर्नल टॉडकृत राजस्थान का इतिहास, ग्रन्थ पहला (गु० सं०), पृ० १६८

१३४. वही, पृ० १६५

१३५. वही, पृ० २१८

१३६. वही, पृ० २३०

१३७. वही, पृ० २३०-२३१

मुस्लिमशासन दरम्यान राजपूत नारियों का मन्चरित्र पूर्ववत् घटन रहा था।^{१३८} बहुपत्नीवाद और परदा प्रथा भी अतीव प्रथा जैसी दूमरी प्रथा त्रिगुणव्यावृत्त की थी। जैसे स्त्रियों अपने स्वामी को गौरव के लिए प्रखरित चिन्तानि में अपना गौरव समर्पित कर देती थी, वैसे अपने गर्भ में उत्पन्न बच्चा का भी, अपने पति के गौरव की रक्षा के लिए दुनिया में उसके जन्म के बाद तुरन्त ही उसका वध किया जाता था।^{१३९}

बुन्देलखण्ड का प्रजाजीवन भी युद्ध और लूट में परेशान था। मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना आरम्भ कर दिया था, परन्तु बुन्देलखण्ड में इसका अधिक जोर न रहा। ब्राह्मणों ने हिन्दू समाज को मुसलमानों के समर्थ में बचाने के लिए बड़े-बड़े नियम बनाये।^{१४०} जहाँगीर ने गद्दी पर बैठने के बाद कीर्तिपुर में जब बुन्देलखण्ड का मारा राज्य दे दिया तब लोगों ने शान्ति का अनुभव किया था।^{१४१} शाहजहाँ के समय में बुन्देलखण्ड में एक बड़ा प्रवाल पड़ा और लोगों को पत्र का कष्ट होने लगा।^{१४२} औरंगजेब के समय में अध्यात्म और अत्याचार के सिवा कुछ नहीं था। औरंगजेब के स्वभाव में कई मुसलमान सरदार नाराज थे। औरंगजेब हिन्दुओं को कष्ट देता था, इसमें हिन्दू लोग भी नाराज हो गये थे।^{१४३} बहुपत्नीवाद का उदाहरण राजा छत्रमान ही को ले। उनके कई विवाह हुए थे और उनकी १७ रानियाँ थी।^{१४४}

मुस्लिम समय में बुन्देलखण्ड में भी परदा की प्रथा बढ़ रही थी, परन्तु महाराज छत्रमान ने इसे रोकने का प्रयत्न किया और स्त्रियों को बिना परदे निकलने का हुकम दिया और स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार करने वालों के प्रति कठिन दण्ड की व्यवस्था की गई।^{१४५}

भारत की वनभूषा, रहनसहन और खानपान पर भी मुगलयुग का बहुत स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस्लाम और हिन्दूधर्म के सम्पर्क के कारण मुगलयुग में एक ऐसी मस्जिद का प्रादुर्भाव हुआ, जो विशुद्ध रूप में न हिन्दू थी, और न मुसलमान।

१३८. वही, पृ० ३३६

१३९. वही, पृ० ५००

१४०. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ८७

१४१. वही, पृ० १३७

१४२. वही, पृ० १४३-१४४

१४३. वही, पृ० २०५

१४४. वही, पृ० २१६

१४५. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२३

भारत की यह नयी सस्कृति हिन्दू और मुगलमान दोनों संस्कृतियों के तत्वों के सान्निध्य व सामंजस्य का परिणाम थी। वास्तुकला, धर्म, भाषा, चिकित्सा, संगीत, वेशभूषा, खानदान आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दुओं और मुगलमानों का यह सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।^{१४६} मुगलों के कलाप्रेम का एक कारण यह भी था कि तैमूर के वंशजों ने ईरान और तुर्किस्तान में कला की अच्छी उन्नति की थी। तैमूर वंश का नाम कला के जागरण में सम्बद्ध माना जाता है। बाबर इसी वंश की सन्तान था। अतएव, उसके वंशजों में कला का प्रेम जागा, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।^{१४७} मुगलकालीन चित्रकला की समीक्षा करते हुये पर्सी ब्राउन ने लिखा है, भारत में मुगलयुग की चित्रकला मुगलशासन के समय के साथ चली। १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अन्त में अकबर का आश्रय पाकर शाही कलाप्रेमी जहाँगीर के शासन-काल में वह सम्पूर्ण रूप में विकसित हुई। उसके अनुगामी शाहजहाँ के समय में उसके पतन के प्रारम्भिक चिह्न देखने लगे और औरंगजेब के असहिष्णुतापूर्ण शासन में उसके मृत्युघट की ध्वनि चारों ओर फैली गयी। चित्रशैली की दृष्टि से इसकी अ.यु. अल्प होने पर भी, ढाई शताब्दी तक फैली हुई थी और भारतीय कला के इतिहास में एक विशिष्ट शैली के रूप में ही नहीं लेकिन एक प्रभावपूर्ण घटना के रूप में उसका उचित उल्लेख हुआ है।^{१४८} अकबर कालीन १७ प्रसिद्ध कलाकारों में से १३ हिन्दू थे जिनके बारे में अबुलफजल ने कहा है कि समार में मुश्किल से ही कोई इनकी समकक्षता कर सकता है।^{१४९} जहाँगीर के उदार प्रोत्साहन से जहाँगीर-कालीन भारतीय चित्रकला विश्व की सबसे विशेष उन्नत चित्रकला थी। शाहजहाँ के समय में चित्रकला की मुगलशैली का ह्रास शुरू हो गया था क्योंकि उन्हे वास्तु-कला, भवन निर्माण और शिवालयों से अधिक प्रेम था। ताजमहल मुगलयुग की वास्तुकला की सर्वात्कृष्ट कृति है, जिसकी बाहरी सजधज हिन्दू कारीगरों द्वारा की गई थी।^{१५०} मुस्लिम मूर्तिपूजा के विरोधी थे अतः मूर्तिकला का विकास असम्भव था। फिर सहिष्णु बादशाहों के काल में तथा जिस प्रदेश में मुस्लिमशासन नहीं था, हिन्दुओं के अनेक मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण मुगलयुग में हो सका। महाराणा कुम्भा का कुम्भस्वामी विष्णु का मन्दिर, महाराज मानसिंह का गोविन्द देव का मन्दिर, महाराज बीरसिंहदेव का औरछा में चतुर्भुज मन्दिर आदि इसके ज्वलंत

१४६. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५८०

१४७. रामधारीसिंह "दिनकर", संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४१३

१४८. Percy Brown, Mughal Painting, p. 86

१४९. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ५७६

१५०. Richard Burn, The Cambridge History of India, Vol. IV, p. 564

उदाहरण है।^{१५१} शाहजहाँ की मृत्यु के बाद जैसे वास्तुशिल्प और विप्रकला का हल्ला हो गया वैसे मगीत का भी हुआ। घर-घर, जहाँ-जहाँ और शाहजहाँ के समय में मगीत गाना ने उन्नति की थी। लेकिन औरंगजेब जलित कलाओं का बटूर दुश्मन था। वी० डी० महाराज बताते हैं कि, मुगलशासक मगीत के आश्रयदाता थे।..... अपने शासनकाल के प्रारम्भिक दस वर्ष तक औरंगजेब की भी मगीत का शौक था। अपने दरबार में कई गायकों को उगन आश्रय दिया था। किन्तु औरंगजेब ज्यो-ज्यो वृद्ध होना गया, वह मगीत का विरोधी होना गया और दरवारी मगीतकारों को उमने निकाल दिया।^{१५२}

हिन्दी भाषा में अपने सम्पूर्ण इतिहास में जो सर्वश्रेष्ठ कवि उत्पन्न किये, वे, मय के मय, मुस्लिम शासन काल ही में जन्मे थे। हिन्दी भाषा मगल के समय साहित्य के समस्त अपनी त्रिम मृष्टि का दावा करती है, वह मारी की मारी समृद्धि उमने पठानों और मोगला के समय में ही यज्ञित की थी।^{१५३} महाराज छत्रमान के समय में बुन्देलखण्ड में बर्त प्रसिद्ध कवि हो गये हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को उत्तम कविनाओं में विभूषित कर दिया है।^{१५४} दसवीं तरह, मुगल शासन के अन्तर्गत गुजरात में जलिन और मुशकम्बा की स्थापना हुई तथा उमरा अमर साहित्य पर भी दिम्बा पडा।^{१५५} श्री कन्हैयालाल मु भी न कहा है, १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगलशासन प्रदग होन की वजह से गुजरात में जलिनपूणे बालावग्ण स्थापित हुआ। नयी साहित्यिक परम्परा का उद्भव हुआ। स्वल्प, अभिव्यक्ति और शिल्प को लेकर राम और आन्याय बने, त्रिनम पुराण की कवासों या मुप्रसिद्ध प्रसंगों को जीवन की घषावें पड्डिन को माध्यम बनाया गया।^{१५६} इसीलिये यह कहना उचित है^{१५७} कि मुगलकाल ने महान साहित्य और शिक्षाप्रवृत्तियों के दर्शन किये हैं।

-
१५१. गत्यन्तु विद्यालकार, भारतीय सभृति और उमका इतिहास, पृ० ५७५
 १५२. V D Mahajan, India since 1526, pp 240-41
 १५३. रामधारीमह "दितकर", सभृति के चार अध्याय, पृ० ४३०-४३१
 १५४. गोरेलाल निधारी, बुन्देलखण्ड का मक्षिल इतिहास, पृ० २०३
 १५५. प्रो० कु जद्विहारी मेहना,—प्रो० रमण शुक्ल, गुजरातनु सभृति-दर्शन,
 पृ० २५०
 १५६. Dr. K M Munshi, Gujarat and its Literature, p. 237
 १५७. Shri Ram Sharma, Mughal Government & Administration,
 p 9 "The Mughal period saw great literary & educational
 activity"

(ग) भारतीय धर्म-दर्शन

प्राणनाथ के उदय से पहले ही भारत वर्ष में हिन्दू धर्म पर संकट के बादल छा गये थे । इन के युग तक आते आते भारतीय चिन्तन तथा साधना के प्रवाह की अनेक धाराओं का उद्गम हो चुका था और कई धाराएँ विकसित हो चुकी थी । यह भी स्पष्ट है कि, मुसलमानों के आगमन के पूर्व ही भारत के कई धार्मिक सम्प्रदाय कई पारस्परिक विरोधों के कारण प्रकट हो चुके थे । इनीलिए सम्भवत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी^{१५८} और श्री रामधारी सिंह "दिनकर"^{१५९} ने भक्ति आन्दोलन संतमत और सतसाहित्य के सदस्यों में बताया है कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इन सभी का रूप वंसा ही होना जैसा आज है । भारतीय पांडित्य ईसा की एक सहस्राब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था । यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना—अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार—न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता । उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेके लिए जा रही थी, उसका वक्तव्य विषय कथमपि विदेशी न था । फिर भी इस बात का स्वीकार करना ही होगा कि इस्लाम के कारण हिन्दू धर्म नयी शक्ति, नव-जीवन और मन्वुनी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील और जागरूक रहा । अतः वेस्ट-कोट का कहना अशत ठीक लगता है कि इस्लाम के अनुयायियों की उपस्थिति से जातिभेद, आत्मा का पुनर्जन्म और ईश्वर का अस्तित्व जैसे विषयों पर लोगों को विचार करने की, मानने-समझने की प्रेरणा मिली ।^{१६०} प्रतिक्रिया और परिवर्तन दोनों साथ ही चलते हैं । जो धर्म के सदस्यों में प्रेरणा ने कहा है वही सम्प्रदायों को भी लागू होता है कि यदि वे समय के प्रवाह को न समझे तो उनका विकास एवम् स्थिरता—अस्तित्व अधिक दिन तक नहीं रह सकता ।^{१६१} जैसे ही भारतीय धर्म ने कई स्वरूप लिये और उन स्वरूपों में कई परिवर्तन आये । मनुष्य ने परम आत्मा

१५८. आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २, १५

१५९. रामधारी सिंह "दिनकर", सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ३७०

१६०. H. G. Westcott Kabir and Kabir Panth, p. 45

"The Presence of the followers of Islam stimulated thought on such subjects as caste, spiritual birth and the personality of God."

१६१. Pratt Why Religions Die, ? p. 122

का आविर्भाव नहीं तो और क्या है।^{१६४} बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शक्ति नवी शताब्दी के बाद प्रायः नष्ट हो गयी थी। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के कारण वज्रयान तथा सहजयान के प्रति लोगों के हृदय में आदर की भावना न रही। बारहवीं शताब्दी स्मार्त सम्प्रदाय उत्तर भारत में पूर्णरूपेण फैल चुका था। लेकिन इतना स्पष्ट है कि तत्कालीन मुख्य-मुख्य धार्मिक सम्प्रदाय—वैष्णव, बौद्ध, जैन, शैव, शक्ति—एक दूसरे के नजदीक आ गये थे। ऐसा लगता है कि सम्प्रदाय एक ही बात को अपने-अपने ढंग से कह रहे हैं, यहाँ तक कि कट्टर मुगलमान साधक भी कोई नई बात नहीं कह पा रहे हैं।^{१६५} वेद सबसे अधिक महत्व यज्ञ को देते थे। यज्ञों की प्रधानता के कारण समाज में ब्राह्मणों का स्थान बहुत प्रमुख हो गया था। इन सारी बातों की समाज में आलोचना चलने लगी और लोगों को यह सदेह होने लगा कि मनुष्य और उसकी मुक्ति के बीच में ब्राह्मण का घना, सचमुच ही, ठीक नहीं है। आलोचना की इसी प्रवृत्ति ने बढ़ते-बढ़ते, आखिर को, ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व तक आकर वैदिक धर्म के खिलाफ खुले विद्रोह को जन्म दिया, जिसका सुसंगठित रूप जैन और बौद्ध धर्मों में प्रकट हुआ।^{१६६}

जैन धर्म ऋषभदेव (आदिनाथ) को प्रथम तीर्थंकर मानता है। जैन धर्म की ईश्वर के सम्बन्ध में जो मान्यता है उस पर से अनुमान किया जाता है कि अष्टादश रूपेण रहित जो हो उनको तीर्थंकर माना जाता है। जिसमें धल, भोग, उपभोग दान और प्रति-ग्रह ये पाच अन्तराय; तथा निद्रा, भय, अज्ञान, जुगुप्सा, हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, अविरति, स्मर (काम), शोक और मिथ्यात्व ये अष्टादश दोष न हो उसे जिन देव अथवा गुरु कहा जाता है और वे ही ज्ञान-तत्त्वज्ञान के उपदेशक व तीर्थंकर।^{१६७} श्री शिवदत्त ज्ञानी लिखते हैं कि वर्धमान महावीर जैन मत का सस्थापक तथा सुधारक था। उसकी कठिन तपस्या के परिणामस्वरूप उसे 'जिन' की पदवी मिली, जिससे उसके अनुयायी जैन कहलाये। किन्तु जैन मत के मानने वालों का मौलिक नाम 'निगणथ' मालूम होता है, जिसका उल्लेख बौद्ध साहित्य में आता है।^{१६८} वर्धमान महावीर जैनमत का चौबीसवाँ तीर्थंकर था। जैन लोगों के अनुसार उसके धर्म

१६४. प्रो० आनन्द शंकर बापुभाई ध्रुव, हिन्दू वेद धर्म (गुजराती संस्करण),

१९१६, पृ० २००

१६५. श्याम सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० १६३

१६६. रामधारी सिंह "दिनकर" संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १२०

१६७. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० ५६

१६८. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय, संस्कृति पृ० २१८

का प्रारम्भ बौद्ध काल में महावीर स्वामी द्वारा नहीं हुआ था। वे अपने धर्म को मृष्टि के समान ही घनादि मानते हैं। उनके मतानुसार वर्धमान महावीर जैन धर्म का अन्तिम तीर्थंकर था।^{१९१} लेकिन, तेईसवें तीर्थंकर पारश्वनाथ को ऐतिहासिक लोग जैनधर्म का सम्स्थापक मानते हैं और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर को मणोधक। पारश्वनाथ, महावीर के दो सौ वर्ष पूर्व हुए थे। महावीर गौतम बुद्ध के समसामयिक थे; परन्तु बुद्ध के निर्वाण के पहले ही उनका अन्त हो गया था।^{१९०} यास्नववादी दर्शन और आचारवादी साधनायुक्त जैन धर्म अन्य धर्मों की तरह विकासशील न रहा तथा कई अशुभावहारिक तत्वों के कारण भारत के बाहर न जा सका, लेकिन अपने देश में भी अप्रभाव ग्यो बँठा।^{१९१}

जैनधर्म में जो नैतिक तप और अध्यात्मवाद के गिद्वान पर पुरोगामियों का प्रभाव लक्षित होना हो लेकिन उसका ज्ञान का गिद्वान मौलिक है। उसमें मति, धृति, अविधि, मनः पर्याय और पूरणज्ञान (केवल) जैसे ज्ञान के पाँच प्रकार माने गये हैं। वर्धमान महावीर ने १० वर्ष की तरस्या के बाद जो अनुभवपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया वही पूरणज्ञान-केवलज्ञान। अनुभव मूलक उनका अज्ञाना प्रत्यक्ष और शिष्यों का मुना-मुनाया होने के कारण "परोक्ष" कहलाया।^{१९२} जब सब बुद्ध पविर्ननशील है, तब कहा ही नहीं जा सकता कि कोई भी वस्तु कभी भी सातत्य प्राप्त कर सकती है। यही जैनमत का अनेकान्तवाद है।^{१९३} जीव (भोक्ता), अजीव (भुक्ता), पुण्य, पाप, आश्रय, सवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष जैसे नौ तत्वों को प्राधान्य दिया गया है। इसलिए कहा जाता है कि जैनदर्शन ने धर्म को महत्त्व दिया था। अच्छे-बुरे कर्मों का फल अनुपपन्न पाता है। समारबन्धन से मुक्ति के लिए भुमुषुको सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र्य को महत्त्व देना चाहिये। सम्यक् ज्ञान वास्तविक रूप और अविस्था को प्रस्तुत करता है।

समय का प्रभाव जैन धर्म पर भी पड़ा और जब मूर्तिपूजा के तत्त्व ने प्रवेश पाया तब जैनियों में दो मुख्य सम्प्रदाय निकल पड़े—दिगम्बरी और श्वेताम्बरी। दोनों के अर्थ और मन्दिर अलग-अलग रहते थे। दिगम्बरी साधु नग्न रहते हैं और श्वेताम्बरी श्वेत वस्त्र पहनते हैं। आगे चलकर के इस धर्म में देवमेत (मं० ६६०

१६६. मत्स्यवेतु विद्यालकार, भारतीय सम्प्रति और उसका इतिहास, पृ० १४०

१७०. श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्मदर्शन (१९५३), पृ० १२४

१७१. Will Durant, Our oriental Heritage (1954), pp 419-422

१७२. श्री सावलियाविहारी लाल वर्मा, विश्वधर्मदर्शन, पृ० १२४

१७३. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० २१६

लगभग) और जैनसाधु-मुनिरामसिंह (लगभग विक्रम की ११ वीं शताब्दी) ने सुधार की प्रवृत्ति की थी और तत्कालीन प्रचलित पाखण्डादि का घोर खंडन किया था।^{१७४} बाद में सं० १५३४ में ग्रहमदाबाद के सुंपक नामक व्यक्ति ने म्यानकवासी पन्थ चनाया और हूँढ़िया आदि अनेक पथ पंदा हुए थे।^{१७५}

जैन साधना और सिद्धांतों ने तत्कालीन समाज को आकर्षित किया था, लेकिन वैष्णव और शैवमत ने जैनमत के अच्छे सिद्धान्तों को ग्रहण करके धक्का पहुँचाया। प्रगतिशील अन्य मतों को राज्याश्रय मिलने पर दक्षिण भारत में तो इस मत का विकास ही नुक़ गया।^{१७६}

फिर भी, जैनधर्म का हिन्दूधर्म पर व्यापक प्रभाव पड़ा। २४ तीर्थंकरों की तरह विष्णुके २४ अवतार मानकर मूर्तिपूजा आदि को लाना पड़ा, सात तीर्थों की तरह सात पुरी की स्थापना करनी पड़ी; अहिंसा परमोधर्म को स्वीकार करना पड़ा और जातिभेद निकालना पड़ा। ग्रन्. माना गया है कि हिन्दी के संतकवि जैनकवियों की कृतियों में प्रभावित थे।^{१७७}

बौद्ध धर्म अनात्मवादी है और तत्कालीन ब्राह्मणधर्म की कुरीतियों के विरोध में खड़ा हुआ था। यह धर्म दार्शनिक जंजाल में डूब रहा और उमने यही समझना चाहा कि, तृष्णा ही दुःख का कारण है और तृष्णानाश का नाम ही निर्वाण है। भोग और तप इन दो चरम सीमाओं को न मानते हुए इस धर्म ने मध्यम मार्ग अपनाया। मुख्यतः यह आचारप्रधान धर्म है। श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कहते हैं कि, बुद्ध के अनुसार पूर्व जन्मों के कृत कर्मों के कारण इस जीवन का प्रवाह चल रहा है उसे हम अपने प्रयत्नों द्वारा विच्छिन्न कर सकते हैं जैसे दीपक में से बनी या तेल को हटा लेने से ज्योति की उत्पत्ति रुक जाती है, उसी प्रकार इस जन्म के संस्कारों का नाश भी बुद्ध के बताये हुए प्रयत्नों से ही हो सकता है और निर्वाण की प्राप्ति संभव है और जीवन का ध्येय भी यही है कि दुःखपूर्ण संसार से छुटकारा मिले। सिद्धार्थ को इसी सिद्धांत का ज्ञान होने से बुद्धत्व प्राप्त हुआ था कि दुःखों का कारण खोजकर उसका नाश कर देने में दुःखों का प्रवाह विच्छिन्न हो सकता है। चूँकि कोई "कार्य" बिना निश्चित कारणों के उत्पन्न नहीं हो सकता (प्रतीत्य समुत्पाद) अतः "कारणों" की

१७४. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा (भूमिका), पृ० ४८

१७५. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास (गु० सं०), पृ० ६१

१७६. Dr. Bhaskar Anand, Medieval Jainism (with special reference to the Vijainagar empire), pp. 270-272

१७७. प्रा० परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, पृ० ५६

खोज करना जानी का काम है ।^{१७८} इमीनिये उन्होंने चार आर्यमत्स्य प्रस्तुत किये । जैनधर्म की तरह बौद्धों के भी तीन रत्न थे—बुद्ध, सध और धर्म । मध के सदस्य हुए बिना निर्वाणप्राप्ति अमम्भव थी । उसमें उपासक और भिक्षु वैसे दो प्रकार के सदस्य थे और दोनों के लिए भिन्न-भिन्न नियम थे । बौद्ध धर्म में जानिपाति का कोई भेद न होने से समाज में जो वर्ण ब्राह्मण से जितना ही दूर था, वह बौद्ध धर्म की ओर उतने ही वेग से निघा ।^{१७९} प्राचीन वैदिक माहित्य की तीन मन्त्रिणाओं जैसे त्रिपिटक ग्रन्थ बौद्धधर्म के मूल सिद्धांतों के कोष हैं ।

सम्प्रदायवादी प्रवृत्तियों ने इस धर्म में भी प्रवेश किया । बुद्ध के उपदेशों का तात्पर्य ग्रहण करते हुए हीनयान और महायान वैसे दो सम्प्रदायों का उदय हुआ । अशोक के पूर्वतक बौद्धमन ही मवंस्वीकार्य रहा, अशोक के समय और उसके बाद हीनयान और महायान का स्थान बना रहा । हीनयान (स्थविरवादी निहाय) बुद्ध की मानवता पर विश्वास रखना था और महायान बुद्ध को अलौकिक व ध्रमानव रूप देने में तत्पर थे । हीनयान बुद्ध के प्राचीन सिद्धांतों को लेकर स्थिर रहा । इस सम्प्रदाय ने नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों पर जोर दिया और निर्वाणप्राप्ति के लिए आत्मनिग्रह आदि को आवश्यक माना ।

भागवत धर्म के प्रभाव से कई नये तत्वों ने महायान सम्प्रदाय में प्रवेश किया । देववाद और बहुदेववाद फैलने लगा तथा बुद्ध भगवान् बोधिमत्स्य के रूप में धवतारी देवता बन चुके थे । विष्णु के अवतारों की कल्पना के साथ हिन्दू मन्दिरो का और मूर्तियों का निर्माण होता था, वैसे बौद्ध देवी देवताओं के लिए स्तूपों का निर्माण किया गया । हिन्दू देवियों में जो स्थान लक्ष्मी-पार्वती का था, वैसे ही स्थान प्रजापारमिताओं में मञ्जुश्री को दिया गया । इन परिवर्तनों का प्रवेश करना आवश्यक था ।^{१८०} बोधिमत्स्य की कल्पना महायान सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता है । बोधिमत्स्य ससार के मममन् प्राणियों के समग्र दुःखों का नाश कर, उन्हें निर्वाण प्राप्ति करा देना अपने जीवन का उद्देश्य मानता है । ससार का एक-एक प्राणी जब तक मुक्त नहीं हो जाना तब तक वह स्वयं निर्वाणमुख को भोगने के लिए उद्यत नहीं होता । उसके जीवन का ध्येय स्वार्थ-सिद्धि न शंकर परोपकार रहता है । वह जगत् के प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही स्वल्प समझता है ।^{१८१}

१७८. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, एम० ए०, हिन्दी माहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० ५७

१७९. रामधारीमिह "दिनकर", मस्वृति के चार अध्याय, पृ० १४६

१८०. Edward J Thomas, History of Buddhist Thought, pp, 178-79

१८१. डा० बलदेव उपाध्याय, धर्म और दर्शन, पृ० ११३-११४

इस प्रकार महायान सम्प्रदाय या जो कहिये कि भारतीय बौद्ध सम्प्रदाय मन ईसवी के आरंभ में ही लोकमत की प्रधानता स्वीकार करता गया। यहाँ तक की अन्त में जाकर लोकमत में घुल मिल कर लुप्त हो गया।^{१८२}

शाक्त प्रभाव में इस धर्म मत में तंत्रसाधना का प्रवेश हुआ और मन्त्रयान वज्रयान और सहजयान प्रकट हुए। मध्यकाल में उत्तरी भारत में बौद्ध तान्त्रिकों का बड़ा प्रभुत्व था। प्राचीन बौद्ध साहित्य में भी तन्त्रमन्त्र का थोड़ा-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है।^{१८३} इस साधना में वामपंथी बौद्ध साधना वज्रयान नाम से और दक्षिण पंथी साधना सहजयान नाम से अभिहित हुई। बुद्ध के उपदेश मातृशताब्दी के ग्रामपास मन्त्रतंत्र के रूप में परिवर्तित हुए और इस क्रिया का प्रतिविव ही मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान साधना है। वज्रयानी सिद्धान्तों को ग्रहण करने वाले ८४ सिद्धों में से सरहपा, पदमत्रज, लुईवा, मबरपा, अनगत्रज आदि प्रसिद्ध हैं। वज्रयान में सब कुछ पूर्ण शून्य रूप माना जाता है। इनके प्रमुख देवता वज्रमत्त्व है। सहजयान में शून्यता को प्रज्ञा तथा करुणा को उपाय कहा गया है। प्रज्ञा को स्त्री तथा उपाय को पुरुष माना गया है। दोनों के मिलने से ही ज्ञान प्राप्त होगा यह स्वीकृत हुआ।^{१८४} प्रज्ञा और उपाय का मिलन कैवल्यानन्द है। प्रज्ञा और उपाय का योगपरक अर्थ लिया गया। वज्रयोग अर्थात् शुक के ऊर्ध्वीकरण को ध्यान और योगसाधना से सिद्धों ने कठिन कार्य को सरलता से अपनाया।

श्री रामचारी सिंह 'दिनकर' कहते हैं, चारित्रिक समय में घुटिया तो बुद्ध के समय में ही आरम्भ हो गयी थी, किन्तु वे खुलकर कही नहीं जाती थी। अथाकृत की अवहेलना महायान में आरम्भ हुई और चारित्रिक घुटियों को सार्वक निन्दित करने की चेष्टा वज्रयान ने शुरू की। जब सभी बन्धन टूट गये और रास्ता काफी आसान हो गया, तब लगभग दमवी मदी में आकर, वज्रयान का एक संप्रदाय अनेकों सहजयान कहलाने लगा। असल में, सहजयान और वज्रयान के बीच आरम्भ में विशेष भेद नहीं था।^{१८५} डा० भारती इसे वज्रयान में अलग शाखा के रूप में नहीं

१८२. आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ८

१८३. डा० वलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन, पृ० ४२५

१८४. (अ) विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २४७

(ब) Winternitz, A History of India Literature, p. 388

१८५. रामचारी सिंह, 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २३२

स्वीकार करने ।^{१८१} महत्त्वदान के मुताबिक ममत्त महत्त्व ही महत्त्व ही सब का स्वस्व है । किन्तु इस मत ने विश्व को बह्मत्त माना और शरीर को माण्ड्यानि का माध्यम माना गया । इसनिचे, महत्त्वदाने काया है—

एषु मे सुरमरि जमुणा, एषु मे यशसाधरः ।

एषु पद्मान वज्राग्नि, एषु मे षड रिषाधरः ॥

नेत्रु-पीठ उग्रपीठ, एषु मह ममद् पण्डितशो ।

देवा-भरिषम विन्य, महं मुद् धन्तु दिट्टशो ॥^{१८२}

काया माधना का महत्त्व नाथ व मित्रों में अधिष्ठ है । इस सम्प्रदाय ने महत्त्वा-वन्द्या की महामुग की धरण्या माना है । जब महत्त्वावन्द्या में शून्य और विदु का मुहाम स्फारित होना है, तभी महामुग की धरण्या उत्पन्न होती है । फिर भी वे द्वैतवादी नहीं थे, पूर्ण द्वैतवादी थे । वे मिथ्या विधि विधानों के बट्टर विरोधी थे । गुरु महिमा नात्रिक मतों की विमोचना है, जो इनमें भी दिग्याई देती है । मन्त्र-दान, ब्रह्मदान और महत्त्वदान की तरह कान ब्रह्मदान की धारा भी प्रसिद्ध है ।

डा० त्रिपुराण^{१८३} इस बात को स्वीकार करने है कि, बौद्ध तांत्रिकों ने मतों का मीथा सम्बन्ध था । यही कारण है कि वे गोम उनमें बहुत अधिक प्रभावित हुए थे । उनकी तन्त्र की अनुभवगम्यता, धर्मधर्मों की धमान्यता तन्त्र का बाह्यावाच्य पर होना, महत्त्व तन्त्र की स्वस्व धारणा, महत्त्वावन्द्या की धारणा, शून्यवाद, धर्मिधर्मिक, विनभरणा, नादविन्दुमाधना, कल्पन व द, मण्डनमण्डन की प्रवृत्ति, माधना में कान या राम का महत्त्व, कायाशोधन, गुणवाद एवम् योगमाधना आदि बातों ने मतों को पूरी पूरी प्रदान की थी ।

बौद्धधर्म प्रारंभ में धनात्मवादी और आचार प्रदान धरण्य था, लेकिन तांत्रिक उपासना के प्रभाव में आकर वह भी बहुत कुछ वाममार्गी हो गया । ब्रह्मदान, महत्त्वदान और मंत्रतन्त्रदान आदि बौद्ध सम्प्रदायों की मान्यनाएं महत्त्व में भक्ति ने प्रभावित है । भक्तिमाधना के प्राय सभी तन्त्र उनमें धन्तुंक्त दिग्याई देते हैं ।^{१८४}

१८६. डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध माहिन्य, पृ० १४२

१८७. राहुन नाह्यापादन, हिन्दी काव्य धारा, महत्त्व-पद मन्त्र ४३-४८

१८८. डा० गोविंद त्रिपुराण, हिन्दी की त्रिपुरा काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २६०-२६२

१८९. इशामनुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की त्रिपुरा धारा में भक्ति, पृ० १३२

नाथ-योगी सम्प्रदाय को कोई बौद्धमत का योग क्रिया प्रधान रूप मानते हैं, जो कालान्तर में शैव सम्प्रदाय से प्रभावित हुआ। कई विद्वान इसे विशुद्ध शैव सम्प्रदाय की कोटि में रखते हैं, जिन पर बौद्धतात्रिकों का प्रभाव पड़ा। वास्तव में नाथयोगी सम्प्रदाय पर शैव और बौद्ध मतों का मिश्रित रूप पाया जाता है। 'विक्रम' की मातृश्री से नवी शनाब्दी के भीतर, बौद्ध और हिन्दू तान्त्रिक, वाममार्ग की उपामना में एक हो रहे थे। तंत्रों की साकेतिक भाषा को न जानने में उनका भ्रम का प्रचार हो रहा था। वाममार्ग की उपासना ऐसे गूढ़ शब्दों में बनाई जाती थी कि अधिकारी साधक ही उसके वास्तविक अर्थ को समझ सकता था। फलतः तान्त्रिक सिद्धियों का दुःप्रयोग होने लगा। यौगिक क्रियाओं के उद्धार के लिए ही नाथसम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ।^{११०} इसे सिद्धमत कहने का कारण यही दिया जाता है कि सिद्धों द्वारा निर्णिण तत्त्व को सिद्धान्त कहा जाता है और नाथयोगी अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थों को "सिद्धान्त ग्रन्थ" ही कहते हैं।^{१११} राहुलजी ने इस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य गोरखनाथ को वज्रयान का ही आचार्य कहा है।^{११२} डा० रामकुमार वर्मा ने इसको दार्शनिक दृष्टि से शैवमत के अन्तर्गत माना है, परन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से उमका सम्बन्ध पतञ्जलि के योग में माना है।^{११३} इतना स्पष्ट है कि मध्यकाल में कार्य-साधना में विश्वास रखने वाले सभी सम्प्रदायों में मौनिक अन्तर था। जैसे सहजयानी अपनी साधना का अन्तिम हेतु महामुक्ति की प्राप्ति मानते थे और नाथयोगी की साधना का हेतु या अमरत्व और महेश्वर प्रप्ति का; तथा सहजयान की तरह वाममार्ग के पक्ष को तत्त्वतः नहीं माना। सहजयान महजवृत्ति की वृत्ति के द्वारा प्रनासक्ति की उन्नति मानता था, जबकि उा वृत्तियों के दमन में ही नाथ-सम्प्रदाय विश्वास रखता था। अतः एक का रास्ता था शोचन (सन्नीमेशन) तो दूसरे का दमन।^{११४} फिर भी इतना कहना उचित होगा, नाथ-योगी सम्प्रदाय ने मध्यकाल में अर्वाचित सभी धर्म साधना में सारग्रहण किया था और अभिनव समन्वित स्वरूप इमने प्रस्तुत किया। इस मत के अनुयायी योगी, कनफटा, दर्शनी, आदि के नाम में पुकारे जाते हैं।^{११५} श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के मतानुसार, यह पथ प्राचीन रसायन सम्प्रदाय का ही एक विकसित रूप था,

११०. श्री सांवलिया विहारीलाल, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २७०-२७१
१११. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० १
११२. राहुल सांकृत्यायन, गंगापुरातत्त्वाक (पत्रिका), २२१
११३. डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १५२
११४. डा० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य; सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ५१
११५. Briggs, Gorkhnath & Kanphata Yogies (1938), p 1

शैवमत व पतञ्जलि के योगदर्शन की भूमि पर यह खड़ा हुआ, थोड़ा बहुत बौद्ध प्रभाव भी इस पर अवश्य पड़ा था, पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह मूलतः बौद्ध-योगी सम्प्रदाय था और कालान्तर में हमने शैवमत का रूप ग्रहण कर लिया था ।.....
 भूत नाथ सम्प्रदाय मूलतः शैवमत ही था जो बौद्ध तांत्रिकों ने प्रभावित हुआ था, यही नहीं उसने भक्ति, घट्टतवाद तथा प्राचीन योग को भी ग्रहण किया था ।^{११६}

वास्तव में इस सम्प्रदाय के विकास क्रम के सदर्भ में निश्चित रूप से निष्कर्ष निकालना आसान नहीं है । नाथयोगी सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक आदिनाथ माने जाते हैं । किसी ने इसके प्रवर्तक गोरखनाथ को माना है और किसी ने मत्स्येन्द्रनाथ को । इतना कहा जा सकता है, कि ८४ सिद्धों की तरह ९ नाथ माने जाते हैं । लेकिन इनके नाम-क्रम कई रूपों में मिलते हैं । डा० हजारिप्रसाद ने महानिर्वाणतन्त्र के आधार पर ९ नाथों के नाम दिये हैं—^{११७} जिनमें गे नाथयोगी सम्प्रदाय की दो भिन्न-भिन्न धाराएँ बहाने वाले मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ ही अधिक प्रसिद्ध रहे हैं । माना जाता है कि नाथयोगी सम्प्रदाय परिष्कृत रूप में नवीं शताब्दी के मध्य में प्रवर्तित हुआ और स्पष्ट ही गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित कहे जाने वाले पद्यों में से धर्मनाथ पद्य का क्षेत्र कच्छ, मोराष्ट्र और गुजरात रहने पर, मान लिया गया है कि धर्मनाथ नामक परमहंस ने ई० स० की पाचवीं शताब्दी में नाथयोगी सम्प्रदाय की स्थापना की थी ।^{११८} इतना निश्चित है कि कच्छ-मोराष्ट्र में इस सम्प्रदाय का प्रभाव था ।^{११९}

मत्स्येन्द्रनाथ ने सहजयोग साधना को ही महत्त्व दिया था । शिव की शक्ति को बिन्दु की सजा दी गई है और बिन्दु में नाद का प्रादुर्भाव होता है । नादमय, वाणी तथा पद रूप होता है । ध्यानयोग को महत्त्व देते हुए अनहदनाद की अनुभूति का संकेत किया गया है । उसमें उन्मत्तावस्था-प्राप्ति होती है और वही सहजावस्था है । आत्मिक सिद्धि ही सहजावस्था में प्राप्ति होती है और ईतभाव नष्ट होते हैं । नियम मोक्षप्राप्ति के लिए बाधारूप है इसलिये नियमों का तथा पूजन, नैवेद्य, होम, दान, आचार आदि का पालन नहीं करना चाहिए । “पादुशी भावना यस्य सिद्धि-

११६. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिंदी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०३

११७. डा० हजारिप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय,

११८. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास (गु० स०), पृ० ६८

११९. (अ) Bombay Gazetteer-Kathuawar Vol. 8, pp 155-56;
446-47

(ब) Bombay Gazetteer-Cutch Vol. 5, pp. 85-88

धर्मवति तादृशी" अर्थात् भावना और मानसिक साधना को ही मत्स्येन्द्रनाथ ने महत्वपूर्ण स्थान दिया था ।

गोरखनाथ का हठयोग विशेषतः शास्त्रीय योग मार्ग पर स्थित होने पर भी बहुत से स्वतः अनुभूत सत्यों का भी उन्होंने उसमें समावेश किया था । वज्र्यानी साधना के पारिभाषिक शब्दों के सावृत्तिक अर्थ को पारमार्थिक रूप भी उन्होंने दिया और ब्राह्मणविरोधी साधनामार्ग को परिष्कृत किया था ।^{२००} उनके दार्शनिक सिद्धान्त वेदान्त और अद्वैत सिद्धान्त पर आधारित होने पर भी, निर्मल आत्मतत्त्व के लिए इन्द्रिय-नियमन और प्राणों के नियमन का महत्व स्थापित किया । उनके मुताबिक अज्ञानजनित वासना को हटाने के लिए पूर्ण समाधि की आवश्यकता है । कायाकल्प से प्राप्त सिद्धि के मदभ्रम में गोरखनाथ का कहना है—

“अथवू नव घाटी रोकिले वाट, घाई बखिजे चौसठि हाट ।

काया पलटे अविचल विध, छावा विवरजित निपजे सिध ॥”^{२०१}

शरीर में शक्तिशालिनी वस्तुएँ तीन हैं—विन्दु (शुक्र), वायु और मन । विन्दु को ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा ऊर्ध्वमुख किया जा सके तो वायु और मन को वश में किया जा सकता है । इन्द्रियनिग्रह से ध्यान, प्राणसाधना से प्राणायाम और मन-साधना से प्रत्याहार सिद्ध होते हैं ।^{२०२} गोरखनाथ ज्ञानवाद, जातिवाद, पूजन, पंच महार के विरोधी थे । गोरखनाथ का सम्प्रदाय समन्वयवादी और उदार था । उनकी साधना में भक्ति का कोई स्थान न होने पर भी,^{२०३} सम्भव है उन्हें भक्ति प्रति तिरस्कार न हो—

‘तहा सत्य बीबी संतोप साहिजादा, विमा, भगति द्वं दाइ ।

आदिनाश नानी मछींद्र नाथ पूता, काया नगरी गोरय बसाई ॥”^{२०४}

हिन्दी सत माहित्य नाथयोगी सम्प्रदाय से ही प्रभावित लगता है और कबीर, दादू आदि इस सम्प्रदाय की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं ।^{२०५} डा० पीताम्बर दत्त बड़वाल के मतानुसार, निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है ।

२००. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ-सम्प्रदाय, पृ० ६३-६८

२०१. डा० पीताम्बर दत्त बड़वाल, गोरखवाणी, स० ५०, पृ० १६

२०२. डा० गोविंद त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २८०

२०३. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० १८८

२०४. डा० पीताम्बरदास बड़वाल, गोरखनाथ, पृ० १२१

२०५. सिद्धिनाथ तिवारी, निर्गुण काव्य दर्शन, पृ० ६४

भक्तिपाग का जन पहले योग की ही धारा में बहा था। इस मन्त्रप्रदाय की कल्पानिक पाग नात्रिा वाममात्रियों में ही अधिक प्रभावित थी। नाथयोगी मन्त्रप्रदाय ने कयनी धोर कर्मों में एव पता का होना प्रति-घावश्यक माना है, जिसका प्रभाव निगुंणमतो पर भी पडा है।

शैवमत बहुत प्राचीन धर्ममन है। इस मन का प्रचार प्राणनाथ के प्रादुर्भाव में पहले उत्तरी भारत में था। शैव धोर वैष्णव मतों में पारस्परिक घादान-प्रदान भी हो चुका था। शाक्तमत भी प्रचलित था, लेकिन पंच महारों को मानने वाले शाक्त मतवादियों के प्रति शैवों धोर वैष्णवों के मन में निरन्धार की भावना भरी पडी थी। शैव, शाक्त, धोर वैष्णव मतों में एक धोर तो अपरिनिधित रूप में घादान-प्रदान हो रहा था धोर दूसरी धोर साम्प्रदायिक कट्टरता धोर कट्टोरता के कारण भावमकीर्णता धोर कट्टरता का विवाग हो रहा था। यो तो मारे भाग्य वर्षों में सिधु, कृष्ण, राम धोर दुर्गा की उपासना होती है फिर भी कहा जा सकता है कि भारतवर्ष के अधिकांश हिन्दुओं के उपास्यदेव शकर है।^{२०९}

महाभारत के शानिपर्व में साह्य, योग, पंचभ्रात्र, वैदीय धोर वाशुपत इन पांच दानंनिव मतों का निर्देश है। वाशुपत में श्रुतपाशुपत धोर वाशुपत वैसी दो उपासनाएँ हैं। शैवों में जो पांच भेद हैं उनमें में भस्मधारणा करने वाले सामान्य शैव भ्रूनिष्ठित निवनिग की धर्चना करने हैं धोर निवाध्यानादि घटविधा भक्ति करने हैं। मिश्रशैव विष्णु, उमा, गणुगति धोर सूर्य की पूजा करने हैं धोर पीठस्थ निग की पूजा करने हैं। ये शकराचार्य के अनुयायी म्मानं शैव हैं।^{२००} धोर शैव मानते हैं कि अग्निव जगत्, कर्ता, भर्ता, हर्ता ब्रह्मस्वस्व निव है। वे मारे विश्व का निवमय मानते हैं। वे तिगायत के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें निवाडंत, शक्तिविजिष्ठाडंत, डंताडंत, घादि प्रकार हैं।^{२०१} इस मत के अनुसार कर्म में ही शान होता है, जिसमें मुक्ति होती है। ये गजुहिमावाने पजों में नही मानते धोर वर्णाश्रम धर्म को पुराने मानते हैं। वामवर्ण्य मुधारवादो शास्ता है, जिसमें निग धारण किया गया। रगो गयी थी। लेकिन वर्णाश्रम धर्म का खडन किया, प्र ह्यणों के महत्त्व का गोरकार न किया, वेदों को घमान्य रखा, निव के घन्य देव-देवी को मानना गवकार किया, विधवाविवाह को तरफदारी की, अत्येष्टिक्रिया की घनावश्यकता घादि मानिक मन प्रचलित किए। इनके अनुयायी धरने को धीर

२०९. श्री सांविनिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २०६

२०७. वही, पृ० २६४

२०८. वही, पृ० २६५

शैव और लिगायत कहते हैं। परन्तु आचार-विचार में अन्तर होने से प्राचीन वीर शैव, पाशुपत शैव और वामवपन्थी लिगायत स्पष्ट रूप से भिन्न थे।^{२०६} कापालिक शैवमत मानने वाले तान्त्रिक साधु होते हैं। ये पंचमकार का सेवन करते थे और भैरव या शक्ति को बलि चढ़ाते हैं। शिवाईतवाद भक्तिप्रधान मार्ग है। वे शिव को परब्रह्म मानते हुए उसकी उपासना करते हैं। उनके अनुसार कामनात्याग से पाप नाश और पाप नाश से चित्त शुद्धि होती है। वे ब्रह्म को सगुण और सविशेष मानते हैं। वासनारहित बंधन मुक्त होता है और अन्ततः असीम आनन्द प्राप्ति होती है। यही मुक्ति है। इनमें से वीर शैवमत भक्ति तत्त्व के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।^{२०७} उमने दक्षिण में तत्कालीन वैष्णवमत के निर्माण में सहयोग दिया था और उस भक्तिप्रवाह ने उत्तर में आकर सन्तों पर प्रसर डाला।^{२०८}

हरकार्य सिर्फ शक्ति से ही होता है। हर कोई अल्प-अधिक मात्रा में शक्ति रखता है और उसके मुताबिक कार्य सिद्ध होता है। अतः ब्रह्मचर्य, प्राणायाम आदि द्वारा ज्ञान स्वरूप शक्ति को प्राप्त करने का जो प्रयत्न क्रिया वही शाक्तमत। बाद में पुराणों के प्रभाव से उन मत में कई परिवर्तन आये और माना जाने लगा कि शक्ति अनेक असुर का विनाश करने वाली देवी है। इस परम्परा में अम्बिका, तुलजा, भवानी आदि की मूर्ति पूजा की जाने लगी। इस परम्परा की दक्षिण मार्गी कहा जा सकता है। लेकिन इस देश में आयी हुई सेमिटिक जैसी जातियों ने शाक्तमत को अपनाते के साथ कई नये तत्व जोड़ दिये और वाममार्ग का अस्तित्व स्थापित किया।^{२०९} इस तरह, शास्त्रोक्त साधना पद्धति दक्षिणामार्गी, जिसके प्रधान आचार्य शंकराचार्य थे,^{२१०} और तान्त्रिक रूप से शक्ति की साधना पद्धति वाममार्गी जैसे शाक्त सम्प्रदाय की दो धारा हैं।

शान्कधर्म का लक्ष्य परमात्मा के साथ जीव की अभेद सिद्धि है। साधक अपने उपास्य देव के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। वह यही रहेगा—

“अहं देवी न चाग्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।

मच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुतदस्वभाववान् ॥”^{२११}

२०६. प्रो० रामदास गोंड, हिन्दूत्व, पृ० ६६७-६६८

२०७. श्याम मुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्भूतशाखा में भक्ति, पृ० ६८

२०८. A. P. Karmarkar, The Religions of India, p. 296

२०९. शाह देवजी लल्लुभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० ७२

२१०. Payne, The Shaktas, p. 24

२११. डा० बलदेव उपाध्याय, आर्यसंस्कृति के मूलाधार, पृ० ३०७-३०८

हैं। इसमें मत्स्य-प्राप्ति के सदर्भ में विस्तार से चर्चा की गई है। कौनसा अनुमान सच निकल सकता है और अगर गलत निकले तो क्या संभव है इन तत्त्वों की चर्चा मुख्य रूप से है। आत्मा आरीरिक बन्धन से और जग्नमरण के दुःखों से मुक्ति पाना चाहती है। ईश्वरपामना से ही कंबलप्राप्ति होती है। साक्ष्यदर्शन ने यही कहना चाहा है कि यह समार आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ऐसे त्रिविध दुःख में पूर्ण है। मत्स्य ज्ञान और विवेक ने त्रिविध दुःख से मुक्ति मिलती है। ध्यान, योग, वंराग्य आदि आवश्यक है। प्रकृति सत्व, रजस् और तमस् गुणों में बनी हुई है और क्रमशः सुप्त, दुःख और मोह को उत्पन्न करते हैं। इस दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व नहीं माना गया, क्योंकि प्रकृति ही अपने आप विकसित होकर इस मृष्टि रूप हो जाती है, ऐसा मानने पर ईश्वर के अस्तित्व को मानना अनावश्यक है। बाद में आचार्यों ने सोचा कि अगर पुरुष दृष्टा ही है और अंधी प्रकृति स्वतः कुछ नहीं कर सकती, तब प्राकृतिक विकास का प्रारंभ कैसे होता है? इसीलिये नामेश आदि आचार्यों ने ईश्वर के अस्तित्व को माना। लेकिन यह दर्शन प्रारंभ से ही निरीश्वरवादी नहीं था, ऐसा माना जाता है।^{२१६} योग-दर्शन ने ईश्वर के अस्तित्व को माना है। इसके मतानुसार सांसारिक जीवन की उत्पत्ति इच्छाओं के कारण होती है अतः अतित्वनिरीच आवश्यक है। यही अच्चा योग है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याह, ध्यान, धारणा, समाधि इन अष्टांग योग के साधन से शरीर और मन को पुष्ट किया जा सकता है और उन दोनों पर कुबामना का असर नहीं होता। इस तरह कंबलप्राप्ति हो सकती है। परन्तु क्रियायोग भी आवश्यक है। इसमें तप, स्वाध्याय आदि का महत्त्व रखा गया है। पूर्वमीमांसा ने कर्म को ही धर्म माना है, इसीलिए इसे धर्ममीमांसा भी कहते हैं। पहले कर्म और बाद में ज्ञान का निहाण किया गया है अतः इसे पूर्वमीमांसा भी कहा जाता है। नित्त, नैमित्तिक यज्ञादि करने से ही सच्ची मुक्ति प्राप्त हो सकती है। सब कर्मों का प्रारंभ वेदों से होता है। इस दर्शन में यज्ञों का ही प्राबल्य है, दार्शनिक सिद्धान्त गीण। वेद के ब्राह्मण भाग में यज्ञ सम्बन्धी वाक्यों से उत्पन्न शका को दूर करने का इस दर्शन ने प्रयत्न किया है। इनके सिद्धान्तानुसार कर्म ही परम सत्य है और ईश्वर-धर्म है।^{२२०} उत्तरमीमांसा के मतानुसार इस जगत् में ब्रह्म ही सत्य है और पुरुष-प्रकृति उनके परिवर्तित स्वरूप है। जगत्, जीव, ब्रह्म या परमात्मा-इन तीन के स्वरूप तथा पारस्परिक सम्बन्ध का निर्णय इसमें किया गया है। इसने

२१६. आ० आनन्दशंकर वापुभाई ध्रुव, हिन्दू वेद धर्म, पृ० १८७

२२०. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय सस्कृति, पृ० २३३

प्रकृति तथा माध्य पुरुषों को एक ही परमवस्तु ब्रह्म में अविभक्त रूप में समाविष्ट करके जड-चेतन-द्वैत के स्थान पर अद्वैत की स्थापना की। उत्तर-मीमांसा की लेकर शंकराचार्य ने अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्य ने द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद और वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद जैसे विभिन्न मत स्थापित किये।^{२२१}

वेदान्त में प्रस्फुटित शाखा-प्रणायाधो का उदय और विकास मध्ययुग में ही हुआ। शंकराचार्य ने वेदान्तमूलो पर भाष्य लिखकर, एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस नये धार्मिक आन्दोलन के दार्शनिक अणु की वेदान्त या अद्वैतवाद व साधना के अणु को स्मार्तमार्ग कहते हैं। प्राचीनकालीन वेदान्तदर्शन को शंकराचार्य ने नूतन और परिष्कृत स्वरूप दिया और इतना प्रचार किया कि जाकर वेदान्त नाम विख्यात हुआ। वैदिक धर्म का जो ह्रास हो रहा था, उसे रोकने का तथा उसे पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को दिया जा सकता है। उन्होंने अपने इस अद्वैतवाद के प्रचार द्वारा, यौद्धों को, उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का सण्टन करके अपवस्थ कर दिया। तत्कालीन अद्वैतिक तान्त्रिक मतवादी, जो अनाचार फैला रहे थे उनकी उन्होंने खतरा भी। मर्वोर्गरि, हिन्दूगानि को सगठित करके भावी धार्मिक आक्रमण में भारत की रक्षा की।^{२२२} वास्तव में यह कहना असंयुक्ति में नहीं खपेगा कि वेदान्त में अपूर्व रूप में ब्रह्मेवाली भक्तिमार्ग के लिए उन्होंने रास्ता साफ कर दिया था।

शंकर का अद्वैतवाद विशेषतः १० उपनिषद् के भाष्य, गीता भाष्य, ब्रह्म-सूत्र के भाष्य और माण्डूक्य कारिक पर आधारित माना गया है।^{२२३} वेदान्त के मुताबिक, ब्रह्म और जीव में एवम है, माया से अनुभूति होती है। उन्होंने आत्मा को निश्च, निर्विशेष, निर्विकल्प, निश्चल, अद्वैत और निर्विकार कहा है। "आत्मा आत्मान जानाति" यह अद्वैतवाद को मान्य है। अद्वैतवाद ने ब्रह्म का मृष्टि विकास-क्रम का मूल स्रोत माना है। शंकर के मायावाद का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जो दिखलाई पड़ता है, वह मरत्य नहीं है, वह आभासमात्र है। अविद्या अर्थात् अज्ञान के कारण ब्रह्म इस जगत् के रूप में दिखाई देता है। ऐसे दिखाई पड़ना ही ब्रह्म के मायान्वित होने के कारण है। वैसे अनेकत्व आभासमान है और एकत्व ही मरत्य है। एक अण्ड मन्निदानन्द घन का अनुभव करना ही ज्ञान है। उन्होंने ज्ञान को प्राधान्य दिया है और कर्म तथा

२२१ श्री सांवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० १७५

२२२. वही, पृ० २६७

२२३. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ८२

उपासना को गौण स्थान दिया है। इस तरह ज्ञान मार्ग का मडन किया और जनसाधारण में अद्वैतवाद प्रसार के लिए सगुण रूपों की पूजा के अनेक स्रोत बनाये। "अहिंसा परमोधर्म.", "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या", "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" और "जीवो ब्रह्मैव नाम परः" आदि उक्तिपदों के वाक्यों से ज्ञानमार्ग मोक्ष के लिए श्रेष्ठ है, वैसा सिद्ध किया। "अहं ब्रह्मास्मि" की अनुभूति ही मोक्ष है।

अद्वैतवाद ने जप, तप, व्रत, उपवास, दान, प्रायश्चित्त आदि को पुनर्जीवित किया। इसमें षोडशों की अपेक्षा अधिक पवित्रता और चरित्र की दृढ़ता थी। अद्वैत वेदान्त के साथ साथ विष्णु, सूर्य गणेश और शक्ति इन पाँच स्वरूपों की उपासना पर जोर दिया गया। अद्वैतवाद विचार के क्षेत्र में अधिक प्रतिनियामावादी होने पर भी व्यावहारिक रूप में उदार था। मैक्डोनेल ने यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि अद्वैत विचारधारा को शंकराचार्य ने नया जीवन दिया था।^{२२४} लेकिन स्मार्त उपासना को प्रचलित करने वाले शंकराचार्य ही थे।^{२२५} प० जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा है कि,^{२२६} शंकर ने वर्णव्यवस्था की बुनियाद पर ब्राह्मणों के द्वारा बने समाजी जीवन को स्वीकार किया। लेकिन उन्होंने बताया कि किसी भी जात का कोई आदमी सबसे ऊँचा ज्ञान हासिल कर सकता है। शंकर के दर्शन और उनके दृष्टिकोण में बुनियाद से इन्कार करने का और आत्मा की मुक्ति के लिए, जो उनकी दृष्टि में आदमी का परम ध्येय है, साधारण प्रवृत्तियों में बचने का भाव है। त्याग और वंशाय पर भी बराबर जोर दिया गया है। "....." उनमें दार्शनिक और विद्वान् का, जडवादी और रहस्यवादी का, कवि और सन्त का, और इन सब के अलावा एक व्यावहारिक सुधारक और योग्य सगठनकर्ता का एक अजीब मेल था। अद्वैतवाद ने सगुणोपासना को मान्य रखा इसलिए शंकराचार्य के देहपात बाद जितने पथ प्रस्फुटित हुए, उनमें शुद्ध शंकर सिद्धांत कायम रहे।^{२२७}

वैदिककाल के वरुण तथा इन्द्र का स्थान महाभारत काल में विष्णु को मिला और भगवान् विष्णु के रूप में उनकी पूजा होने लगी। वैष्णव मत को मूल विचार भागवत धर्म में निहित थे। भागवत मत ने पाँचरात्र मत का जो स्वरूप धरल किया, उसी का विकसित स्वरूप है वैष्णव मत।^{२२८} आ० परशुराम चतुर्वेदी ने कहा है उसके अनुसार, वैष्णव धर्म का नवीन सगठन, वेद के देवता विष्णु, दर्शन के

२२४. Macdonell, India's Past, pp. 147-48

२२५. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० २४

२२६. प० जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त), पृ० १४२-४३

२२७. Bombay Gazetteer, Vol. IX, Pt. 1, p. 532

२२८. श्यामसुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० १०६

देवता गोपाल के गमन्वय से हुआ, जो ईमा के तीन मी वषं पूर्व घटित हुआ होगा होगा ।^{२२६} तीमरी-चौथी शताब्दी तक अग्न धर्ममतो के अत्यधिक प्रभाव के कारण वैष्णवमत दबी हुई स्थिति में जीवित रहा । लेकिन जब शाकर वेदान्त ने अद्वैतवाद के मडन के मदर्भ में भागवतधर्म पर प्रहार किये उनकी प्रतिप्रिया के कारण ही वैष्णवमत ने नया जीवन प्राप्त किया । प्रारम्भ में जो पूजा सिर्फ विष्णु की ही की जाती थी, बाद में उन्ही के अवनार स्वरूप कृष्ण की और बाद में राम की पूजा आरम्भ हुई तथा भिन्न भिन्न आचार्य वा मन्तो ने विष्णु-कृष्ण-राम की पूजा घर घर फैला दी और वैष्णवमत भी ।^{२३०} इन आचार्यों-मन्तो में रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वन्नभाचार्य और चेतन्य का योगदान उल्लेखनीय है ।

रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया । इस सम्प्रदाय में लक्ष्मी तथा विष्णु और उनके अवतारों की उपासना होती है । अद्वैतवाद की कड़ी आलोचना की गई । रामानुजाचार्य ने चिन्, अचिन् और ईश्वर तत्त्वों की प्रतिष्ठा की । चिन् तत्त्व, जीव, अचिन् तत्त्व अर्थात् जड पदार्थ जगत् और ईश्वर अन्तर्यामी शक्ति है । उन्होंने ब्रह्म के दो रूप बताये-चिन् और अचिन् । जगत् ब्रह्म का ही स्वगत भेद है, अतः वह सत्य है । अचिन् तत्त्व ससार का मूल है ।

मूलतः केवल नहीं, परन्तु चिन्-अचिन् की सूक्ष्म वा स्थूल अवस्था में स्पष्टतः विशिष्ट रहता है, अतः यह मिथ्यान्त 'विशिष्टाद्वैत' के नाम में प्रसिद्ध है ।^{२३१} मोक्ष का अधिकारी वही है, जो भक्ति माधना पूर्ण करता है । मोक्ष यानी वैकुण्ठगमन और ईश्वर मामीष्य । 'भक्ति न छाटी, मुक्ति न मागी, तब जम मुनों मुनाकों (तुलसीदास) की तरह विशिष्टाद्वैतवादी न मुक्ति चाहता और हिन्दुत्व जिमें स्वर्ग बहता है तथा इस्लाम बहिस्त बहता है, उसकी कामना नहीं करता ।^{२३२} आत्मा का बन्धन कर्म के द्वारा होता है । कर्म और ज्ञान के द्वारा भक्ति का उदय होता है । शकर के यहाँ कर्म व ज्ञान में बैर है, परन्तु रामानुज समुध्यवादी हैं । कर्म अर्थात् नित्य नैमित्तिक कर्म निष्काम भाव से करना चाहिए ।^{२३३} ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों में से भक्ति ही श्रेष्ठ मार्ग है, लेकिन भक्ति में सरलमार्ग प्रपत्ति का है जिसमें न ज्ञान की, न योगाभ्यास की तथा न विद्याभ्यास की जरूरत रहती है । वैसे ज्ञान-

२२६ आ० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृ० ४८

२३० श्री मांवलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्मदर्शन, पृ० २८०

२३१- प्रो० आनन्दगणकर वापुमाई प्रोब, हिन्दू वेद धर्म, पृ० २६५

२३२ रामधारीसिंह "दिनकर", ससृष्टि के चार अध्याय, पृ० ७४

२३३ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी माहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० १५२

कर्मभक्ति मात्र ब्राह्मणों तक मर्यादित है, लेकिन प्रपत्तिमार्ग सब जातिपाति के लोगों के लिए खुला था। प्रपत्ति के बारे में कहा जाता है यह इस्लाम का प्रभाव था लेकिन रामानुज को यह विचार इस्लाम में नहीं मिला और इस्लाम तब तक भारत में फैला कहाँ था?.....यह भी ध्यान देने की बात है कि ब्राह्मणों के साथ निम्न जातिपाति के लोगों को भी वैष्णवमन मानने का, प्रवेश करने का अधिकार सबसे पहले रामानुज ने ही प्रदान किया। विशेषकर के दक्षिण भारत में जातिविचार से नियंत्रित समाज में निम्नजाति को समान कक्षा पर ला दिया। इस दृष्टि में स्पष्ट है कि रामानुज का यह भक्ति आन्दोलन मानव की मुक्ति का शकरी रूप का अधिक सफल साधन बना।^{२३३} लेकिन बाद में उनके अनुयायियों को ही लौकिक स्वरूप पसन्द न आया और कालान्तर में उसमें दो पंथ पड़ गए। गुजरात में रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत ने पूर्ण आदर प्राप्त किया था और ब्राह्मणों में भी अधिक शक्ति, लौहाणा, कायस्थ आदि जातियों में विशेष सत्कार प्राप्त किया था। उसकी शाखा समान रामसनेही, रामनंदी आदि पंथों में अन्य वैष्णवों से भी अधिक मन्वा थी।^{२३४}

यहाँ पर दक्षिण से उत्तर में रामभक्ति लानेवाले और बाद में सारे देश में उसे फैलाने वाले रामानन्द को याद कर लेना भी आवश्यक है। रामानुजाचार्य के खानपान आदि के बठोर नियम उन्हें मान्य नहीं थे। उन्हें जातिपाति के भेद और मूर्ति पूजा जैसे तत्त्व पसन्द न थे। रामानन्द के मतानुसार, भक्ति में सासारिक कष्ट तथा आवागमन से भक्त बच सकता है। रामोपासना ही आवश्यक है। इस तरह रामोपासना का प्रवर्तन उन्होंने किया। वैसे वे विशिष्टाद्वैतवादी थे, लेकिन उपासना करते थे विष्णु के अवतार स्वरूप राम की। संभव है, उस समय ऐसे धर्म की आवश्यकता हो जो हिन्दुओं की वीरता को गायें तथा त्याग-माहिष्णता की ओर प्रेरित करे। ऐसा धर्म भगवान राम को लेकर खड़ा किया जा सकता था और रामानन्द ने वही किया।^{२३५} उन्हीं की प्रेरणा ने हिन्दी साहित्य को कबीर दिया है।

निम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है।^{२३६} विशिष्टाद्वैत में जैसे विष्णु और लक्ष्मी को पूज्यस्थान दिया गया था, वैसे द्वैताद्वैत-

२३३. (अ) रामधारीसिंह "दिनकर" संस्कृत के चार अध्याय, पृ० ३७२
 (ब) आ० क्षितिमोहन सेन, मध्ययुगनी साधना धारा (गु० सं०), पृ० २३
 (स) D. A. Pai, Religious Sects in India among Hindus, p. 8
२३४. Bombay Gazetteer, Vol IX, Part 1
२३५. रामधारीसिंह "दिनकर" संस्कृत के चार अध्याय, पृ० ३७६
२३६. K. M. Sen, Medieval Mysticism India p. 49

वाक ने कृष्ण और राधिका को पूज्यस्थान दिया। भक्ति क्षेत्र में उन्होंने मह्यभाव को प्रतिष्ठित किया। इनके मन में भक्ति ही मुक्ति का साधन है और उपासना में ईश्वर प्राप्ति होती है। दार्शनिक दृष्टि में, निम्बार्काचार्य भी विष्णु, यज्ञिष्णु और ईश्वर के भेद को मानते हैं। ज्ञान और भोगप्राप्ति के लिए जीव भगवान् पर ध्यात्त है। जीव का नियामक ईश्वर है। जीव वर्ता है और मोक्ष दशा में भी उपमोक्त वस्तुत्व रहना है। ध्यान ध्यान शरीर में ध्यान जीव है। जीव ईश्वर का अंग है। जीव भिन्न भी है और अभिन्न भी। ईश्वर की कल्पना विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत की एक-सी है। जीव और ईश्वर में द्वैत द्वैत का सम्बन्ध निम्ब और सर्वत्र है। माधव दशा में ब्रह्म में जीव अद्वैत होने पर ध्यान स्वप्न को गीता नहीं। जीव और जगत् की ईश्वर की शक्ति माना गया है। ध्यान देने योग्य बात यही है कि निम्बार्काचार्य में अभेद पर नहीं, लेकिन भेद पर विशेष महत्व दिया है। इन दोनों आचार्यों की भक्ति में यही भेद है कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत ध्यान योग पर भक्ति को आधारित रखता है और निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत की साधना धरने मूलभाव का त्याग नहीं करती।^{२३७} द्वैताद्वैत माधवाचार्य का विशेष रूप में विरोधी नहीं दीगता। इसमें मगुणभक्ति की ही माना, प्रेमलक्षणा भक्ति का सत्कार दिया और वैदिक क्रिया का स्वीकार करते हुए रामानुजाचार्य के साधनाभक्ति के तत्त्व ब्रह्म कर दिये। गुजरात में निम्बार्काचार्य का सीधा प्रभाव क्या पडा था यह कहना मुश्किल है, लेकिन इतना निश्चिन्त है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य में प्रेमलक्षणा भक्ति को विशेष स्थान मिला है। सम्भव है राधानाथ ने नरसिंह मेहता के पूर्व गुजरात की वैष्णवमृष्टि में स्थान पाया था, उमका कुछ श्रेय निम्बार्काचार्य को भी जाता है।

द्वैतवाद के प्रयत्नक माधवाचार्य ने भक्तिक्षेत्र में माधुप्रे भाव का महत्व स्थापित किया। उन्होंने ब्रह्म संप्रदाय की स्थापना की। शंकराचार्य को अद्वैतवाद मिट्ट करने के लिए माधा की कल्पना करनी पडी और रामानुज द्वैत मिट्ट कर सके। निम्बार्काचार्य ने भी अद्वैत माना है, लेकिन ज्ञान और भक्ति की दृष्टि में द्वैतवाद पहना था जिसने शंकराचार्य के अद्वैत की कड़ी आलोचना की हो।^{२३८} वास्तव में माधवाचार्य की विष्णु और लक्ष्मी की उपासना से इतना स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने रामानुजाचार्य की तरह विष्णु की उपासना पर ही जोर दिया है। उन्होंने विष्णु के स्वरूप राम और कृष्ण को भी लिया है, परन्तु गोपाल की उपासना का उन्होंने

२३७ आ० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव मत, पृ० ८५

२३८ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि,

उल्लेख नहीं किया। डा० भाण्डारकर ने कहा है कि, २३६ मध्य के मत में व्यूह, वासुदेव तथा ग्रन्थों के लिए कोई स्थान नहीं था। वे विष्णु को ही परब्रह्म के रूप में मानते थे, राम और कृष्ण की उपासना यहाँ नहीं है। राधा का नाम भी नहीं आया। प्राचीन भागवत सम्प्रदाय यहाँ तक आकर नुप्त हो गया और मामान्य वैष्णव धर्म को स्थान मिल गया। आ० परशुराम चतुर्वेदी जैसे विद्वान् इसी बात को प्रस्तुत करने में भूल कर बैठे हैं कि माधवाचार्य के मत में व्यूह, वासुदेव आदि को स्थान नहीं है और न उनके उपास्यदेव विष्णु, एवम् राम तथा कृष्ण नामक अवतार हैं। २४० द्वाँतवाद ने उपासना के तीन अंग बताये हैं—अर्चन, नामकरण और भजन। भक्ति ही मुक्ति का साधन माना गया है। ध्यान के बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। ज्ञान के लिए वे वैराग्य, शम-दम, शरणागति गुण और भगवत सेवा, भगवत प्रेम, प्राणीमात्र से सहानुभूति आदि को महत्त्वपूर्ण माना है।

इस मत के पाँच भेद बताये हैं—परमात्मा-आत्मा के बीच, परमात्मा-प्रकृति के बीच, आत्मा-प्रकृति के बीच, आत्मा-आत्मा के बीच और जड़-जड़ अर्थात् अणु-अणु के बीच भेद है। विष्णु के समीप नामांकित दुःखों का नाश करके आनन्द से रहना यही मोक्ष है और सामीप्य मुक्ति माध्वमत का लक्ष्य है।

शुद्ध द्वैत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य ने माया के कारण अशुद्ध ब्रह्म से माया की प्रलपन कर, उसे शुद्ध किया और इस तरह अद्वैत शुद्ध हो गया। वही वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत। वास्तव में विष्णु स्वामी के रुद्र सम्प्रदाय का ही उन्होंने पुनरोद्धार किया। विष्णु स्वामी ने भूतिपूजा को शास्त्र सम्मत बताया था और विष्णु की पूजा-भक्ति में मोक्ष प्राप्ति होती है, यह सिद्ध किया था। उन्होंने कायाकण्ठ को निरर्थक और विष्णु के नाम स्मरण को मोक्ष का साधन बताया था। उन्हीं के वंशज लक्ष्मण भट्ट उत्तर भारत में गये और वहाँ पर उनके पुत्र वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग अर्थात् शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की। २४१ शुद्धाद्वैतवाद ने स्नेह, आसक्ति और प्रीति पर जोर दिया और घोषित किया कि भगवान की प्राप्ति प्रयत्न से नहीं, लेकिन प्रीति से होती है। साधना को सरल करने की प्रवृत्ति, जो रामानुज से आरंभ हुई थी, उसकी चरम पूर्णता वल्लभाचार्य में दिखाई पड़ती है। शुद्धाद्वैत ने भक्त के लिए मात्र

२३६. Dr. Bhandarkar, Vaishnavism, Shaivism and other minor cults,

२४०. आ० परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म पृ० ८८

२४१. आ० क्षितिमोहन मेन, मध्ययुगीन माधना धारा (मु०सं०), पृ० २४

आत्ममर्पण की शक्ति रयी और जेप सब भगवान पर छोड़ने को कहा ।^{२४२} भगवान की प्राप्ति का माध्यम गगात्मन वृत्तियों को बनाया गया । प्रेम और वात्सल्य मुख्यतः जीवन की दो भावनाएँ हैं । घन भगवान के स्वामी और जिगु स्वप्नों को ही उन्होंने प्रागृह्य माना । वेम भी तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल ही शुद्धाद्वैत का प्रदत्तन हुआ था । मुग्धिम धात्रमणो मे प्रस्त समात्र की वीर्य और निराशा दूर करने के लिए कोई मधुर धात्रपंगु तन्व की आवश्यकता थी ही । घन उन्होंने लौकिक वादशाहों के भी वादशाह, धर्मौकिक गीतोक वागी कृष्ण की मोन्दयं, मगीन और वेमव मे धात्रपंगु नीलाधो को शत्रुधाम पर उतार कर जनता के मन को तेजी मे धात्रपिन किया । वल्लभाचार्य का पुष्टिनामं १६वीं शताब्दी मे हिन्दू मम्प्रति का मरक्षण गिविर था तथा हिन्दू-मुग्धिम के बीच फंसे हुआ धृष्णा के तन्व को दूर किया था ।^{२४३} दार्शनिक दृष्टि मे, शुद्धाद्वैत ने ब्रह्म के निर्गुण और मगुण दो रूप माने हैं । माया मे ब्रह्म मगुण नहीं होता, परन्तु मगुण निर्गुण स्वरूप स्वाभाविक स्वरूप है । ब्रह्म एक होकर भी घनेक है, वह स्वतन्त्र होने पर भी भक्ताधीन है । रय, रयी और मारयी एक ही मत्ता के तीन रूप हैं । लीला निमित्त कृष्ण परब्रह्म हम जगन के रूप में घपने धात्र रूप मे बदल जाना है तथा जीव बनकर जीव जगन के माय श्रीरु करता है । धर्षात्रु जगन मन्य है क्योंकि लीला धाम भगवान स्वयं जगन के रूप मे व्याप्त है । ब्रह्म कारण है, जगन कार्य है और जब कारण मन्य है, तो फिर कार्य भी मरय होगा ही ।^{२४४} ब्रह्म के उन्होंने तीन रूप बनाये हैं, पूर्ण पुरुषोत्तमरमरूप श्रीकृष्ण जिमको उपनिषदो ने परब्रह्म कहा है, धरर ब्रह्म जिमका प्रादुर्भाव कल, कर्म, स्वभाव, प्रकृति, जीव देवादि के रूप मे होता है तथा धरर्यामी रूप ०४ अवतारी ब्रह्म । परब्रह्म मन्, चिन्, आनन्दमय और धरर ब्रह्म भी । लेकिन धरर ब्रह्म का धान्द "गणितानन्द" है, दोनो के बीच मात्रा का धन्तर रहता है । जीव ज्ञान मार्ग मे धरर ब्रह्म मे मिलकर एक हो गकता है, जो मायुज्य भक्ति मे मभव है । उन्होंने जीव तीन प्रकार के बनाये हैं, शुद्ध, मुक्त और ममारी, ममारी के धामुरी और देव दो प्रकार मे मे देव के दो उपभेद मर्यादा मार्गीय और पुष्टि मार्गीय हैं । जीव मे मन् और चिन् तत्व हैं, लेकिन पुष्टिमार्ग के सहारे ही आनन्द उत्पन्न किया जा मकता है । वल्लभाचार्य जगन और समार मे धन्तर मानते हैं, यह एक मर्यादा नवीनदर्शन है । ईश्वर के मन् धात्र का विन्तार ही जगन् है । समार नश्वर है । शुद्ध जीव, जगन को कृष्णमय देवता है, स्वामी रूप मे कृष्ण की सेवा करके परमा-

२४२. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी माहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० १७६

२४३. वही, पृ० १७८-१७९

२४४. वही, पृ० १८२

नन्द मे तल्लीन रहता है। भगवान के अनुग्रह को भागवत में पुष्टि कहा है (पोषणं तदनुग्रहः)।^{२४५} पुष्टिमागीय भक्ति के चार प्रकारों में मर्यादा पुष्टि भक्ति, प्रवाह पुष्टि भक्ति और शुद्ध पुष्टि भक्ति है।

अचिन्त्य भेदाभेदमत के प्रवर्तक हुए महाप्रभु चैतन्य। रामानुजाचार्य ने ब्रह्म-कांड को आवश्यक माना, मध्वाचार्य ने भी उसका स्वीकार किया और बल्लभाचार्य ने भी पूजनअर्चन की पद्धति दी। लेकिन चैतन्य के मतानुसार, भक्तिरस में डूबे रहने वाली के लिए उक्त कोई आचार की आवश्यकता नहीं। वैसे पुष्टि-माधना और चैतन्य का मधुर भाव प्रायः एक-सा है। इस मत ने श्रद्धा, विश्वास और प्रेम को महत्वपूर्ण माना। सब लोग समान भाव से ईश्वर भक्ति कर सकते हैं और भक्ति ही सभी जातियों को शुद्ध करने वाला तत्व है। अतः उन्होंने मुस्लिम आदि विधर्मी और निम्न जाति वालों को भी अपनाया था। शान्त, दास्य, वात्सल्य और मधुर इन पांच भावों को भक्ति के लिए आवश्यक माना, लेकिन मधुर भावपूर्ण भक्ति को वे श्रेष्ठ मानते थे। डा० रत्नकुमारी ने कहा है कि, भक्ति को स्वतन्त्र रस मानकर मधुर भक्ति को श्रेय देना बगाल के वैष्णवमत की विशेषता है। उनकी यह भक्ति माधना ही उनके धर्म का मूल है।^{२४६} दार्शनिक दृष्टि से, अचिन्त्य भेदाभेद ने ब्रह्म को मणुए और सविकीर्ण माना है। उनकी दृष्टि से भगवान के सभी रूप नित्य है। जगत सत्य है और अनित्य है। जीव अणु रूप है, ईश्वर जीव में व्याप्त है, जीव एक नहीं अनेक हैं और जीव नित्य है। ईश्वर, जीव, प्रकृति और काल ये चार तन्त्र हैं, जिनमे से जीव, प्रकृति और काल ईश्वराधीन है। अतः जीव, प्रकृति और काल शक्तियाँ हैं, जबकि ईश्वर शक्तिमान है। जिस भक्ति से ईश्वर प्राप्त होते हैं, उस भक्ति के विधि भक्ति और रुचिभक्ति वैसे दो प्रकार हैं। गोपियों ने रुचि भक्ति का ही सहारा लिया था और चैतन्य को यही दृष्ट था।

अन्यत्र कहा जा चुका है कि शंकराचार्य के अद्वैतवाद ने ही वास्तव में भक्ति-मार्ग की धारा के लिए रास्ता खोल दिया था, क्योंकि उसके कारण रामानुजाचार्यादि आचार्यों में प्रतिक्रियाएँ खड़ी हुईं और भक्ति धारा समग्र भारत में बहने लगी। विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और अचिन्त्य भेदाभेदवाद के कारण भारत की चारों दिशाओं में कई उपसम्प्रदाय, पंथ या मार्ग खड़े हुए, जिनसे वैष्णवमत की परम्परा बनी रही। इनमें से प्राणनाथ पूर्व और उनके

२४५. भागवत, अध्याय २/१०

२४६ डा० रत्नकुमारी, १६वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ०, २३६

समकालीन पंच-उपसम्प्रदायों को जाचना आवश्यक है। महापुरापिया, रामावत, रामदासी, राधावल्लभी, सतानी, हरिदासी, मोकृनेश, टट्टी मार्ग, वारकरी पंच, नरसिंह सम्प्रदाय आदि सगुण भक्ति सम्प्रदाय और महानुभाव, कबीर पंच, नानक पंच, रैदासी, चोगमेना, दीन इलाही, सतनामी, नारायणी, परब्रह्म सम्प्रदाय, निरंजन मत आदि निर्गुण मतवादी और सुधारक पंच प्रचलित थे। लेकिन सभी में से राधावल्लभी, सतानी, महापुरापिया, रामावत, वारकरी, नरसिंह सम्प्रदाय, रामदासी पंच, कबीर पंच, रैदासी पंच, परब्रह्म सम्प्रदाय, सतनामी, सत्यपंच, महानुभाव पंच, निरंजन मत और बाउल सम्प्रदाय प्रमुख थे। इन सम्प्रदायों और पन्धों में से बालान्तर में कई परिवर्तन हुए होंगे इतना तो निश्चिन्त रूप से कहा जा सकता है।

राधावल्लभी सम्प्रदाय में राधावल्लभ की उपासना हमकी विशेषता है। इसमें राधा को अधिक महत्व दिया जाता है। राधा महाशक्ति और कृष्ण आत्मानुवर्ती हैं। इस सम्प्रदाय में सती या किररी भाव में भक्ति की जाती है। वारकरी सम्प्रदाय वैदिक धर्म पर आधारित है। कृष्ण ही मोक्ष दाता है और उनकी भक्ति से मोक्ष प्राप्ति होती है। अद्वैतवाद के सहारे ज्ञानभक्ति का अद्भुत सामंजस्य इस सम्प्रदाय में स्थापित हुआ। नरसिंह सम्प्रदाय के मुताबिक, भक्ति और प्राणीमात्र के साथ प्रेम करने में मुक्ति मिल सकती है। रामदासी सम्प्रदाय ने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के सहारे मुक्ति प्राप्ति होती, यह प्रचलित किया। अतः मनुष्य कर्मयोग के मार्ग पर चलकर, शुद्ध मन से चले तो उसका जन्म मफल बनना है बल्कि परलोक में भी वह सुख पाता है। इस सम्प्रदाय के गृहस्थी और विरक्त अनुयायी हैं। महापुरापिया सम्प्रदाय रामानुजाचार्य के दार्शनिक विचारों पर आधारित था। वे मूर्तिपूजा नहीं करते लेकिन भागवतग्रन्थ की पूजा करते हैं। भक्ति ही विश्व के लिए कल्याणकर है और उसके लिये वर्णाश्रम धर्म की भिन्नता को कोई स्थान नहीं है।^{२५७} रामानन्दी सम्प्रदाय ने विनिष्ठाद्वैत को ही आदर्श मत माना, लेकिन लक्ष्मी और विष्णु के स्थान पर इस सम्प्रदाय ने सीताराम की उपासना आरंभ की। वे ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में मानते हैं। विरनोई सम्प्रदाय का आराध्य परमात्मा-तत्त्व विष्णु रूप है और विष्णु की नित्यमेवा आवश्यक है। अहिंसा-धर्म का महत्व है। लालपयी रामनाम के जप और कीर्तन को महत्व देने हैं और श्रद्धा, पवित्रता, नम्रता और प्रेम आवश्यक मानते हैं। राम ही परमात्मा है। दाडू का परब्रह्म सम्प्रदाय परम तत्त्व को सर्वत्र व्याप्त समझता है और परमतत्त्व को शून्य, परमपद, निर्वाण जैसे शब्दों से पुकारा है। ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण है अनुभूति। सहजमार्ग की साधना

इस सम्प्रदाय को स्वीकार्य थी। सहजसमाधि की अवस्था ही मोक्ष है। बावरीपय^{२४८} ने आध्यात्मिक दीवानेपन को महत्व दिया। मनुष्य का जीवन लक्ष्य परमरत्न की पूर्ण अनुभूति करना ही होना चाहिए। बाबालाली पंथ की साधना के अंतर्गत शम-दम, चित्तशुद्धि, दया, परोपकार, सहजभाव तथा सत्य-दृष्टि जैसी बातें आती हैं।^{२४८} भक्ति और प्रेम से प्रभु की प्राप्ति होती है। राम इनके इष्टदेव है। सत्तनामी सम्प्रदाय के मतानुसार, ईश्वर निर्गुण निराकार है और वह एक है। मूर्तिपूजा का इसमें विरोध है। सूर्य की उपासना की जाती है। दान इलाही पंथ समन्वयवादी पंथ है। उसके अनुसार ईश्वर एक है और उसकी मानसिक पूजा करनी चाहिए। हिंदू-मुस्लिम अनुयायियों के लिए अल्लाहोपनिषद् धन्य पूज्य है। किनारामी अघोरपय ने जाति-भेद का भेद नहीं माना। वे रामावतार की उपासना करने हैं और मूर्तिपूजा अमान्य है। इमामशाही पंथ के अनुयायी भागवत, रामायण, गीता आदि धर्मग्रन्थों को पूज्य मानते हैं और इमामशाह के उपदेशों का श्रद्धाभक्ति से पाठ करते हैं। महानुभाव पंथ कृष्णोपासक पंथ है और उनकी भक्ति मधुर भाव की भक्ति जैसी प्रतीत होती है।^{२४९} ये लोग मूर्तिपूजा के विरोधी हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था को भी नहीं मानते। ईश्वर निर्गुण-निराकार है लेकिन भक्तों पर कृपाकर सगुण रूप समय-समय पर धारण करते हैं। वाडल सम्प्रदाय समन्वयवादी सम्प्रदाय है और प्रतिमापूजन, वर्णाश्रम आदि का विरोधी है। जब तक तृष्णा का पूर्ण रूप में नाश नहीं होगा, निर्वाण सम्भव नहीं है। इसके मतानुसार, प्रेम परमात्मा का सहज रूप है और मनुष्य उसका अंश-रूप है, इसलिए मनुष्य और ईश्वर का सहज-धर्म प्रेम है। यह सहजभाव तत्व नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव इस सम्प्रदाय पर था यही कहना है लेकिन वैष्णवमाधना के तत्त्व अधिक है।^{२५०}

कबीर मत ने जातिभेद, मूर्तिपूजा, तीर्थ, दत्त, माला, छापातिलक को नहीं माना। सत्य और धर्म के लिए सहज होना चाहिए। सत्य ही सहज है और वह सहज प्रेम, भक्ति तथा दया में ही है। प्रत्येक जीव परमात्मा है। कबीर की भक्ति एक विचित्र भक्ति थी। निर्गुण ब्रह्म की प्रतीति ज्ञान से ही सम्भव है। तर्क उमका आधार है, बुद्धि अस्त्र है जिससे सत्य का उदघाटन हो सकता है।^{२५१} राम के महारे

२४८. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ५६२

२४९. डा० श्याम-मुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणवारा में भक्ति, पृ० १२०

२५०. Dr. Sushilkumar De, Vaishnava faith and movement, p p. 20-22

२५१. डा० मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ७७

ही मुक्ति संभव है। कबीरमत दार्शनिक नतर्वचिन्तन का नहीं था। मगुल्ल भक्ति और धवतारवाद को न मानने हुए भी उसमें भक्ति और भगवान् का भक्तवत्सलता के प्रति भास्था के दर्शन होते हैं। निश्चयन और एकात्मिक प्रेम् को महत्त्व दिया जाता है।

नानक द्वारा प्रबलित मिश्र धर्म मध्यकालीन भारत में एक प्रचलित धर्म रहा। इस सम्प्रदाय के मतानुसार, ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है और उसमें त्रिक्राम रखना चाहिए। उसके मिश्र अन्य कोई पूज्य नहीं है। निष्काम कर्म करना चाहिए और धर्म-सदाचार का पालन करना चाहिए। अन्यमात्रव अन्य पूज्य है और वही गुरु है। मृत्यु के समय कर्म और कर्त्तव्य ही काम प्रायेण। राम और कृष्ण ने किया था वैसे कर्त्तव्यपालन ही आवश्यक धर्म है। इसी मार्ग पर चलने में धामिर आत्मा परमारमा में लीन हो जाती है।^{२५२} इस्लाम की प्रतिजिमा में मिश्र धर्म का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, लेकिन नये आन्दोलन में हिन्दू-धर्म को विगुद्ध धर्म बनाना ही मुख्य उद्देश्य रहा था, विन्तुल संभव है। मिश्रधर्म में इस्लाम के थोड़े-बहुत तत्वों की भी घपनाया था। वास्तव में मिश्रधर्म अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक सम्प्रदाय था।^{५३}

भक्ति की निर्गुणधारा को प्रभावित करने वाले मनो में से निरंजन मत है, त्रिसके कारण निर्गुण साधना सारे भारत में फैल गई थी।^{२५४} निरंजन मत ने मगुल्ल साधना और मूर्तिपूजा का विरोध नहीं किया। यह निर्गुणमतवादी सम्प्रदाय था।

उपयुक्त वैष्णवमतवादी साम्प्रदायिक धारा न और निर्गुण साधना ने मध्यकालीन सामाजिक जीवन को आरवन्त किया होगा और जीवन जीने का महारा दिया होगा।

विदेशी धर्म-दर्शन

डा० ताराचन्द की तरह यह गलत मान लेता होगा कि इस्लाम के कारण ही धर्म ने नये स्वरूप धारण किये अथवा भारत में नये धार्मिक आन्दोलन के पीछे इस्लामी आदर्शों की प्रेरणा थी।^{२५३} वास्तव में इस्लाम के कारण हिन्दू लोग अपने धर्म के प्रति विशेष आग्रहक हो गए और उसे जीवन्त और प्रगतिशील बनाये रखने के लिए उसके स्वरूप में परिवर्तन और परिवर्द्धन करते रहे। भारत में विजेना के रूप में

२५२. श्री साँवतिया बिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० ३१८-३१९

२५३. Dr. J. E. Carpenter, *Theism in Medieval India*, p. 488

२५४. (घ) K. M. Sen, *Medieval Mysticism*, p. 707

(ब) जितिमोहन सेन, मध्ययुगीन साधनाधारा (गु०स०), पृ० ३६

२५५. Dr. Tarachand, *Influence of Islam*, pp. 111-115.

प्रवेश पाने वाले मुस्लिम आक्रमक अपने साथ अपना इस्लाम धर्म भी लाये, जिसका भारतीय जनता को अनुभव करना पडा और हो सके वहा तक उसे आत्ममात् करने का प्रयत्न भी करना पडा ।

अरब राष्ट्र को एक धर्म सूत्र में आवद्ध करने वाले हजरत मुहम्मद ईसाई पादरियो की तरह ईश्वर आराधना और एकान्तवास के लिए गुफाओं में पड़े रहते थे । उनके दिव्योपदेश का ग्रंथस्व स्वरूप है कुरान, जो इस्लाम का पूज्य ग्रन्थ है । कुरान के अतिरिक्त मुहम्मद माहव की ग्रन्थ सभी नसीहतेँ, कहावतेँ और सभी रिवायतेँ "हदीस" कहलाती है और वे इलाही अर्थात् ईश्वरीय नहीं मानी जाती । हिन्दू धर्म में वेदों की तुलना में जो स्थान ब्राह्मण ग्रन्थों का है, वही स्थान इस्लाम में कुरान की तुलना में हदीस का है ।^{२५६} तत्कालीन परिस्थिति के कारण कुरैशियों के साथ हजरत मुहम्मद को जो कार्य करना पडा, वही कार्य उनके अनुयायी मुस्लिम आक्रमक हर जगह करते रहे—बलान् इस्लाम का स्वीकार कराना और दूसरे हाथ में तलवार । कुरान ने इस्लाम धर्म के लिये चार सिद्धान्त प्रतिष्ठित किये, सोम, सलात, हज्ज और जकात । सयम के हेतु सोम का (उपवास का) महत्त्व बताया गया है । सलात (नमाज) वस्तुतः सध शक्ति बढ़ाने वाली होती है । एक स्वर से, एक ही मात्रा और भाव में, परवरदिवार के चरणाविद में अपने आप को अर्पित करने के लिए, अमीरी-गरीबी का भेद छोड़कर नमाज पढ़ने है और व्यक्त करते हैं कि अल्लाह के आगे सब समान हैं । कुरान ने पाँच बार नमाज पढ़ने के लिए नहीं निर्दिष्ट किया, लेकिन बाद में यही मान्यता चलती रही है । इन धार्मिक कर्तव्यों के साथ कुरान ने कई बातों के लिए मना भी किया है । मद्यपान, जुआ खेलना, अन्याय करना, मूद लेना आदि कार्यों की पाप में गिनती की जाती है । मनुष्य का यह जन्म सर्व प्रथम और अंतिम है अर्थात् इस्लाम पुनर्जन्म को नहीं मानता । अल्लाह ही सब कुछ है और सर्व व्यापी है । कुरान का ईश्वर सम्बन्धी दर्शन हिन्दुओं के अद्वैत और द्वैतवादी का मिला जुला स्वरूप है ।^{२५७} प्रत्येक व्यक्ति के शुभा शुभ कर्मों के रक्षक व लेखक फरिश्ते (देवदूत) हैं । लेकिन आलमगर में व्यक्ति को अशुभ (बुरे) राह पर प्रेरित करने वाले तत्व शैतान (पापात्मा) हैं । अर्थात् हमारे मनजगत् में असद् और सद् तत्वों का निवास है । अहंकार, तिरस्कार आदि का त्याग करना चाहिए और भगवान का प्रेम प्राप्त करने के लिए पहले भगवान के बन्दों को प्यार करो । हजरत मुहम्मद के उपदेशों में दया, अहिंसा आदि के भाव होते हुए भी व्यवहार में इस्लाम अपने शैशवकाल में कट्टरपंथी और असहिष्णु था । सधर्ष में ही पड़े रहने से

२५६. श्री साँवलिया विहारोलाल वर्मा, विश्व धर्म दर्शन, पृ० २५३

२५७. श्री साँवलिया विहारोलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन. पृ० २६०

इस्लाम में ज्ञान, भक्ति और मानवीय मोहार्द के तत्व कम विकसित हुए।^{२५०} मुहम्मद ग़ाज़ि की मृत्यु के बाद वाले प्रथम चार गनीफा आदर्श और सदाचारी थे। लेकिन बाद में गनीफाओं की नीति शासन विस्तार की और सकुचित साम्प्रदायिकतावादी हो गई थी और इस्लाम धर्म आचार प्रधान बन गया था। नमाज़, रोज़ा आदि न मानने वालों की कत्ल कर दी जाती थी और इस पवित्र कार्य को 'जिहाद' कहा गया। जिहाद के सदर्भ में ही मुस्लिम आक्रान्ता भारत में आये थे। इस्लाम कठोर और भावना रहित होता रहा। हिन्दू धर्म में सिर्फ़ यज्ञोपवीत की प्रचुरता की प्रतिप्रिया स्वर्ण कर्द धर्म मन और सम्प्रदायमुँतडे हुए बंसे इस्लाम में भी प्रतिप्रिया स्वर्ण गुत्रि, शिवा, बहावी, सागागानी, सूफ़ी आदि मन उपस्थित हुए। लेकिन इनमें हृदयपथ को ही प्राधान्य देने वाला सम्प्रदाय है सूफ़ी साधकों का। उनके मतानुसार प्रभु की प्रेरणा शुद्ध हृदय में ही प्राप्न होती है। इस्लाम में ईश्वर और जीव का पृथक माना है लेकिन सूफ़ीमत न भारतीय वेदात के सहारे प्रेम को माध्यम बनाया और ईश्वर-जीव के बीच अद्वैत सम्बन्ध स्थापित किया। इस मत के शंशयमान में ही इसको दबा देने के प्रयत्न शेतों और उलेमाओं न किये, जो मन्मूर की हत्या में जाहिर है। लेकिन परम्परावादी और सूफ़ी साधकों के वैमनस्य-भाव को दूर किया इमाम गज़ाली ने। उन्होंने सूफ़ी मत को कुरान के अनुकूल गिद्ध कर दिया। अब यह कहना अनुचित होगा कि निगुंण-मतवाद में विरोध और नदन की प्रवृत्ति अत्यन्त उग्र है, जो सूफ़ी-साधना में नहीं है।^{२५६} सूफ़ीमत भी गज़ाली पूर्व बंसा ही उग्र रहा होगा। भारत में प्रवेश करते वक्त सूफ़ीमत का यही सामजस्यपूर्ण स्वरूप हो चुका था।^{२५०} सूफ़ीमत के प्रारम्भिक कालीन साधक वैराग्य भावना में युक्त थे। ध्यान और भक्ति को अपने आप को सपूर्ण धारित कर सके इसलिये वे सामारिक वेदना में दूर रहना चाहते थे। वे प्रवल धार्मिकवृत्ति-भक्ति से आकृष्ट थे और धार्मिक आचारों और विधानों का पालन करने के बजाय आराम तपस और आत्मशुद्धि पर वे ज्यादा जोर देते थे।^{२५१} परम्परावादी इस्लाम मत के अनुसार, अन्नाह प्रेम का विषय नहीं हो सकता। अल्लाह अर्द्धा का विषय है। अल्लाह स्वामी है और मनुष्य उमका बन्दा है। बन्दा कभी अपने मालिक (अल्लाह) में वैयक्ति सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। लेकिन सूफ़ीमत ने इन विधानों को

२५०. डा० मोतीसिंह, निगुंण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०

२५६. डा० मोतीसिंह, निगुंण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३०

२६०. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३५४

२६१. History of Philosophy, Eastern & Western, p. 497

प्रस्वीकार किया। गजानी के बाद सूफी मत में भी कई उपसम्प्रदाय उपस्थित हुए। मसूरी पथ के कवियों ने कबीर आदि निर्गुणवादियों की तरह परम्परावादी इस्लाम की कड़ी आलोचना की है। सूफीमत साधना की १४ अवस्थाएं बतायी हैं, जिसमें मत्पानुभूति के लिए तीव्र श्रौस्मुख्य, गुरुप्राप्ति और उपदेश ग्रहण, आध्यात्मिक जागरण की अवस्था, वैराग्य की अवस्था, आत्मपरिष्कार की अवस्था, भावावेश अवस्था, आशिक अनुभूति की अवस्था, याथाएं और उनमें सघर्ष की अवस्था, विरह की अवस्था, आत्मसमर्पण की अवस्था, मिलन की पूर्वावस्था, मिलनावस्था, पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था और तादात्म्यावस्था का समावेश किया गया है।^{२६२} सूफी मत में कर्म का महत्व नहीं है, म धरु आराध्य के साथ मिलनावस्था को प्राप्त कर लेता है। इस मिलन स्थिति को केवल आराध्य ही समझ पाता है। आत्मानुशासन आवश्यक है। सूफीमत अरिग्रहवाद है। इस साधना के लिए न कोई नियम है और न कोई इसका विज्ञान। बवनों से मुक्ति का नाम सूफीमत है। जगत सीमित और अपूर्ण है, अतः अपूर्णताओं की ओर में भागें बन्द करके, पूर्ण का चिन्तन करना ही सूफीमत सिखाता है। प्राणवायु और ऐन्द्रिक सगठन पर सूफी मत ने जोर दिया है।^{२६३} इस तरह सूफीमत वेदान्त, बौद्धदर्शन, यूनानी “नियोप्लेटोइज्म” तथा कुरानमत से अनेक धारणा को लेकर अपना विकास करता गया।^{२६४} सूफीमत के निजामिया, साबिरिया, मुहरावर्दी, कादरिया, नकशवंदियाँ आदि सम्प्रदायों का विकास प्रायः १२वीं शताब्दी के बाद भारत में होता रहा। दार्शनिक दृष्टि से बहूदिहा (अद्वैतवादी) और शहूदिया (मर्वात्मवादी) दो मुख्य संप्रदाय हैं। जीवन एक तरीका (यात्रा) है और उपासक एक सालिक (यात्रिक) है। शरीरगत में पश्चाताप, तरकित में पवित्रता और ईश्वर स्तुति, मारफन में चिन्तन और मूर्च्छितावस्था (जो अभिप्रावस्था है) और हकीकन ब्रह्म से मिलन की अवस्था (बस्न) है। अन्तिम अवस्था में “मैं” तूँ का भेद मिट जाता है। सालिक (साधक) अरिफ (मच्चा जाता) बन जाता है। ईश्वर के प्रति मच्चे “इश्क” से ही बस्न की स्थिति प्राप्त होती है। सूफी धर्म का मुख्य सिद्धान्त “फना” का सिद्धान्त है, जबकि साधक को आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है तो स्वहता स्थिति हो जाती है। सूफीमत जगन को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानता है। ब्रह्म और जीव में तात्त्विक एकता है। ब्रह्म प्रेयसी है, जीव प्रेमी; ब्रह्म सौन्दर्ययुक्त है, जीव प्रेमयुक्त और प्रेम से सौन्दर्य की यगुभूति हो

२६२. बाबू गुलाबराय-डा० शम्भुनाथ पाठे, रहस्यवाद और हिंदी कविता,
पृ० ७३-७४

२६३. Nicolson, The Mystics of Islam, p. 26

२६४. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३६०

मरती है। माधना का ध्येय ब्रह्म और जीव की एकाता का है, जिनके लिए माधना-
गिरना का त्याग आवश्यक है।

प्राणनाथ के समय में इस्लाम धर्म इतना प्रबल नहीं था जितना सूफीमत।
परम्परावादी मुस्लिम धर्म ने हिन्दुओं को धार्मिक नहीं किया था, लेकिन भारतीय
माधना को छोटी इज्जत देनेवाला सूफीमत भारतीय जनमानस को मरुतता में धरती
छोड़ धार्मिक बन गया था। नौगोत्रिक दृष्टि में, सिन्ध के बाद गुजरात मुस्लिमों के
समय में विजेत माना गया था। घन मुस्लिमों का प्रवेश और परोक्ष प्रभाव गुजरात
की जनता पर और श्योरागी वर्ग पर विशेषरूप में पड़ा होगा। उन दिनों भारत का
विदेशों में श्योराज बढ़ाने में गुजरात के बन्दरगाहों का काम उपयोग होता था।
विशेषतया परखाना, इरान, बगदाद, बमरा के श्योरागी गुजरात में घा वसे थे,
सिन्ध-मुल्तान मार्ग उनके लिए अनुकूल था। कई मुस्लिम मत, शीनिया और धर्म-
प्रचारकों ने गुजरात में मुस्लिमशासन में पूर्ण ही प्रवेश कर लिया था। वास्तव में इन
करीबों, मनों-घोषियों के कारण और भारतीय विचारों के धारण में उनके मत के
प्रति भारतीय मानस में विरोध नहीं ब्रह्मा और इस्लाम का प्रचार एवम् प्रचार सामाजी
में हुआ। फिर भी यह धारणा बिन्दुल ग्यत है कि धार्मिक मन्त्राओं पर मुसलमानों
प्रभाव के कारण ही सूफी मन्त्रशास का उदय हुआ। २६४ मत्र तो यही है कि सूफी-
मत का उद्भव स्वतंत्र रीति में हुआ।

कहा जाता है कि ईसाई धर्मप्रचारकों ने ई० स० की पहली शताब्दी में ही
२६५ भारत में प्रवेश कर लिया था और उनका प्राग्भिक स्थान बना मनवार तट।
बाद में छोटी और मातुर्वी शताब्दी में भी इन प्रचारकों के भारतनिवास के प्रमाण दिये
जाते हैं। संभव है व्यापारिक मन्त्राओं के कारण ईसाईयों ने प्रवेश पाया हो और भारत
में धर्मप्रचार का कार्य भी उन्होंने शुरू किया हो। दक्षिण के हिन्दूराजा ईसाई गिरजाओं
का हिन्दूमन्त्रियों-मा सम्मान करने से और ईसाई धर्मप्रचारकों को उदारतापूर्वक
सुविधाएं देने से। १७वीं शताब्दी के अन्त में पोर्तुगल लोगों ने भारत घाना प्रारम्भ
किया और भारत में शासन करने के साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार करने के प्रयत्न
किये थे। पश्चिमी समुद्रतट के जिन प्रदेशों पर शासन स्थापित किया था, वहाँ उन्होंने
जयईस्वी में लोगों को ईसाई बनाने का भी प्रयत्न किया था। लेकिन वे असफल रहे। २६७

०६५. Edward G Brown, Religious Systems of the world, pp.
315-316

०६६ मन्त्रांकु विद्याकर, भारतीय मन्त्राधि और उनका इतिहास, पृ० ६०६

०६७ यही, पृ० ६१०

ई० स० १५८० म अकबर के दरबार में कुछ ईसाई धर्मप्रचारकों का आगमन हुआ और उन्होंने आगरा, दिल्ली, लाहौर आदि शहरो में गिर्जाघर भी खड़े किये थे ।^{२६१} श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा लिखते हैं, सर्वप्रथम मेण्ट टोमस ने दक्षिण भारत में आकर बहुत लोगों को ईसाई बनाया । बाद में १५ वीं शताब्दी में ईसाई लोग भारत में आये । यहाँ उनकी सख्या प्रायः २६ लाख है । भारत में ईसाई धर्म के उपदेशकों ने दूर-दूर आकर जंगली जानियों को ईसाई धर्म में दीक्षित किया । उनही भाषाओं में बाइबल का प्रकाशन कर उसका प्रचार किया । ईसाई मिशनरियों ने अनेक स्कूल, कॉलेज, अस्पताल तथा अनाथालय खोले, जिनके द्वारा गौण रूप से अपने मत का प्रचार किया । पोर्तुगीजों के सिवा अन्य किसी ईसाई प्रचारक ने जोर-जुल्म नहीं किया ।^{२६६}

ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव पैलेस्टाइन में हुआ था । रोमन सम्राटों ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था, अतः पारचात्य देशों में इसका प्रसार तीव्र गति से हुआ । राज्याश्रय के साथ धर्मप्रचारकों का सहयोग भी इस प्रकार एव प्रचारकार्य में था ही । ईसाईधर्म का प्रादुर्भाव यहूदी धर्म में से हुआ था । विचित्रता की बात यही है कि प्राचीन हिन्दुत्व (वैदिक धर्म) से बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हुई उसी प्रकार, ईसाई धर्म भी यहूदी धर्म की कुक्षि में उत्पन्न हुआ है । दूसरी विचित्रता यह हुई कि भारत में पिता (हिन्दुत्व) ने पुत्र (बौद्धमत) को निर्वात्मन दिया, किन्तु, फिलस्तीन में पुत्र (ईसाईयत) ने ही पिता (यहूदी धर्म) को अपदस्त कर दिया था ।^{२७०} ईसाई धर्म का धर्मग्रन्थ बाइबल है । बाइबल के उपदेशानुसार, परमेश्वर एक है और तिरंजन, निराकार, उदीनिम्बहृष है । बाइबल को पूज्य और सत्य मानना, ईसा को परमेश्वर का पुत्र मानना, ईश्वर आराधना और सत्य का पालन करना चाहिये । ईसा अमर है और उनका महिमामय पवित्र शरीर विद्यमान है । God the Father, God the Son and God the Holy Ghost ये तीनों एक ही हैं । अन्य जीवों को भी ईश्वर ने मनुष्यों के उपकारार्थ ही बनाया है । ईसाईधर्म पुनर्जन्म को नहीं मानता और ज्ञान की सर्वथा उपेक्षा करता है । संपूर्ण शरणागति ही मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक है । ईसा ने अपने को निना भगवान का पुत्र समझा और इसीलिए उनकी भक्ति ही सबको तारनेवाली है । आत्मबलिदान और भ्रानृभाव पर जोर दिया । ईसाईधर्म ने हिन्दुओं की ब्रह्म, त्रिगुण, महेश, -त्रिमूर्ति- की कल्पना को ग्रहण किया है । ईसाईधर्म ने

२६८. शाह रेवजी लल्लूभाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० १३४

२६९. श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० २४२-२४३

२७०. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृ० ५२२

मूर्तिपूजा का निषेध किया है, लेकिन ईसा और मरी की प्रतिमाओं का पूजन किया जाना है। मूर्तिपूजा के विरोध में ई० मन् ७५४ में सफल आंदोलन भी हुआ था। पोप के विरोध में मार्टिन लूथर ने ई० १५१७ में घोषणा उठायी थी और भागे चल कर के ईसाई धर्म में तीन सम्प्रदाय पैदा हो गये थे। ईसा के शिष्यों ने ईसा के जीवन और उपदेशों का सग्रह किया गया, जो "न्यू टेस्टामेंट" कहलाया तथा यहूदियों की बाइबल भी इस बाइबल में मिला देने पर उसे "ग्रोन्ड टेस्टामेंट" के नाम से अभिहित किया गया। ईसा का मनुष्यहृदय को परिवर्तित कर उसमें आदर्श मनुष्यता को प्रतिष्ठित करना ही लक्ष्य था। इस पृथ्वी पर Kingdom of Heaven उतारना था। माना जाता है कि ईसा पर अद्वैत-वेदान्त का प्रभाव पडा था। क्योंकि उन्होंने कहा कि प्रत्येक जीव उसी एक ईश्वर का अंश है और वह (ईश्वर) अशी है। जितने शरीरधारी जीवात्मा है वे मेरे ही है।

पोतुंगल लोगो से पहले ईसाई धर्म का भारत में यथेष्ट आदर था। फिर भी हिन्दू लोगो ने ईसाई धर्म का मुकाबिला किया और बहुत अंश तक वे सफल रहे।

यहूदी धर्म

इस्लाम और ईसाइयत ने जिनमें जन्म लिया था वह यहूदी धर्म संसार के प्राचीन धर्मों में से एक है। इस तरह यहूदी धर्म से इस्लाम और ईसाइयत दोनों का सम्बन्ध है। गैमेटिक मूर्ति पूजक थे और यहूदियों के आदि पंगम्बर हजरत इब्राहीम ने मूर्ति पूजा का विरोध किया तथा एक-वाद की प्रथा चलायी। यहूदी धर्म के दो पंगम्बर हजरत दाऊद (David) और हजरत मूसा (Moses) के सहयोग का परिणाम ही पुरानी बाइबल (old Testament) है। २७१ हजरत मूसा ने भगवान के आदेश अनुसार धर्म की स्थापना की। उन्हें ही यहूदी धर्म का प्रवर्तक बताया जाता है। २७२ यूनानी बाइबल (old Testament) यहूदी धर्म का मूलग्रन्थ है। इनके सिद्धान्तानुसार जिहोबा (हेब्रू भाषा के इलोहा का हजरत मूसा ने यह नामकरण किया) के पास तीन कुंजियाँ हैं जो वर्ण, जीवन और मृत्यु से सबंध रखती हैं। जिहोबा सारे सत्कार का मित्त है, वह दयावान है और मृष्टि का रचियता है। वह एक, पवित्र और निराकार है। मनुष्य के अन्तिम काल के प्रायश्चित्त पर उसके भाग्य का आधार रहता है। यहूदी सनो ने पश्चात्ताप के आश्रु का महत्व रखा है। प्राचीन यहूदी धर्म के मुताबिक यज्ञ का भी स्थान ऊँचा है। इस धर्म ने सन्यास आस्था को नहीं माना। यहूदी मत की दश मुख्य आशयों में माता-पिता का आदर करने का, अभि-

२७१. रामधरिसिंह "दिनकर", सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५२२

२७२. श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृ० १०६

चारनिषेध, अहिंसा, लालचरहितता और चोरी न करने के उपदेश मुख्य हैं। अन्य किसी देवता को वे नहीं मानते और ईश्वर का व्यर्थ नाम लेने की मना करमायी गयी है। हजरत मूमा के प्रति यहूदी धर्म वाले अपार श्रद्धा रखते हैं। माना जाता है कि २७३ इस धर्म में गुप्तयोग-विद्या गुरुशिष्य परम्परा से चली आ रही है और धर्म शास्त्रों में सिर्फ इस धर्म की बाह्य बातें दी गई हैं। यहूदी धर्म ने ई० स० ६१४ के समय में भारत में प्रवेश किया था। वे अरबस्तान से भारत आये थे। बाद में १५वीं व १६वीं शताब्दी में जब ब्रिटिश व्यापारी यहाँ आते रहे, तो उनके साथ ये लोग भी यहाँ पर आने लग गये थे। फिर भी इस धर्म का भारत के धर्मों और सम्प्रदायों पर कोई गहरा प्रभाव नहीं पडा होगा इतना स्पष्ट है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल से पूर्व धर्म क्षेत्र में गुह्य साधना के लिए जिन भावनाओं का प्रचार हो रहा था उस ढंग को साधना के क्षेत्र में शैव-शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायों ने भी अपनाया। परिणाम स्वरूप इस युग की धार्मिक चेतना में ह्यामोन्मुखी प्रवृत्ति प्रवेश करने लगी। लोगों का धार्मिक विचारों के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। पाश्चात्य विद्वान वेबर, कोय, प्रियर्सन, विल्सन आदि ने भारतीय भक्ति प्रवाह को ईसाई धर्म की देन ही माना है। जबकि डा० हुमायूँ कबीर, डा० ताराचन्द, डा० आबिद हुसैन आदि इसे मुस्लिम संस्कृति का परिणाम मानते हैं। श्री बलगाधर तिलक, श्री कृष्ण स्वामी आयगर आदि भारतीय विद्वानों ने इन मतों का खण्डन किया। आ० हजारीप्रसाद जी, ता भक्ति आन्दोलन को भारतीय जनमानस की पराजित मनोवृत्ति का परिणाम भी नहीं मानते और वे इस्लाम की प्रतिक्रिया वाले मन्तव्य को उपहासास्पद ही मानते हैं। सच तो यह है कि भारतीय भक्ति प्रवाह प्राचीन दर्शन प्रवाह की एक अविच्छिन्न धारा है। धर्म के क्षेत्र में विविध आदर्श प्रस्तुत हुए। इसमें खडन-मंडन की प्रवृत्ति भी अधिक हुई। सर्वधर्म समन्वय की भावना भी आकार ले रहा था और परिणामी सम्प्रदाय उसी भावना का एक परिणाम है।

परिणामी सम्प्रदाय के अक्षरातीत ब्रह्म श्रीराज राजेश्वर श्री कृष्ण है। परम धाम की ब्रह्मांगनाओं एवं अक्षर ब्रह्म को दुःख रूपी बाललीला देखने की इच्छा हुई। अतः पूर्ण ब्रह्म को मये ब्रह्मांड की रचना करनी पडी। क्षरब्रह्मांड की रचना हुई और उसमें ब्रज मण्डल की स्थापना की गई। गौलोक धाम में परब्रह्म ने श्री कृष्ण के रूप में जन्म लिया। काल माया के ब्रह्मांड में अखंड रास का खेल हुआ। ब्रह्मांगनाएँ अपने मूल धाम को भूल गयी। श्री कृष्ण ने अपनी योग शक्ति से तीसरे ब्रह्मांड की

रचना की। ब्रजजीना के बाद व्यावहारिक गमनीया हुई। अक्षर ब्रह्म के हृदय में जो लीना हुई वह वास्तविक, निम्न वृन्दावन की प्राणिभाषिक और काल माया के प्रजा मण्डल में जो गमनीया हुई वह व्यावहारिकी मानी जाती है। काल माया के तीमरे ब्रह्मांड में ब्रह्मामनाश्री ने मनुष्य जन्म विविध जातियों में धारण किया और मोह माया में परब्रह्म को भूल गयी। उन्हें जागृत करने के लिए ही प्रणामी सम्प्रदाय के आदि गुरु देवचन्द्र जी का अवनरण हुआ ऐसी साम्प्रदायिक मान्यता है। सम्प्रदाय 'माहेश्वरतन्त्र' (अ० ८०) के आधार पर मानता है कि ब्रह्म धाम में प्रभु ने ब्रह्म शक्तियों को आदेश रूप में सूचित किया था कि हे ब्रह्मागता, कदाचिन् मोहूर्ण समुद्र में आप कभी निमग्न हो जाएंगी तो उस समय मुन्दरी नामक शक्ति (देवचन्द्र) मायात-स्वरूप में आप सबका उद्धार कर जागृत करेगी। यह परम तेज स्वरूपा मुन्दरी शक्ति मारवाड देश के उमर कोट नामक ग्राम में किसी पवित्र कुल में नर रूप धारण करेगी। चन्द्र नाम में अर्थात् देवचन्द्र इस नाम में लोक में प्रसिद्ध हो सबकी अशुभ गति-जन्म मरण रूप आवागमन को मिटा देगी। 'माथ ही, अथर्ववेद (काण्ड ५ सूक्त १ म० ३) के आधार पर यह भी माना गया है कि श्री देवचन्द्र जो अपने आत्म बल को उन मंत्रों के लिये श्री प्राणनाथ जी के शरीर में जोड़ देंगे। इसलिए कि उनकी शुद्ध दीप्ति सुवर्ण के समान फले।' इस प्रकार स्पष्ट होता है कि, राजस्थान के उमर कोट ग्राम में गुरु देवचन्द्र जी ने कायस्थ परिवार में जन्म लिया और मान वर्ष की अवस्था में ही धर्म भावना में लीन रहने लगे; राजस्थान छोड़कर कच्छ होने हुए जाम नगर में वे आ गये और १८ वर्ष पर्यन्त एक निष्ठा में श्रीमद् भागवत का अवलोकन-मनन किया। श्री कृष्ण के साक्षात् दर्शन में तारतम्य मात्र ग्रहण किया और श्री कृष्ण के आदेशानुसार प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना की। साराजन विभिन्न परिस्थितियों ने इस सम्प्रदाय के उद्भव में प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य किया।

(ब) प्रणामी सम्प्रदाय और उसका विकास

मनुष्य जीवन और समाज जीवन में मोड़ आते रहते हैं और उन दोनों से सलग्न धर्म का प्रवाह भी मोड़ लेना ही रहता है। हिन्दू-धर्म ने जहाँ पर ऐसे मोड़ लिये हैं वहाँ पर वह सूक्ष्म-यथ छोड़ता रहा है। ऐसे ही सूक्ष्म-स्वधर्म को निशाना बनाकर के कई सन्त, उग्रसन्त और पथ प्रसिद्धित होने हैं। प्रणामी सन्त का प्रादुर्भाव भी उक्त परिस्थितियों की आवश्यकता पूर्ति के लिए हुआ।

प्रणामी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक श्री देवचन्द्र जी थे। लेकिन इसके प्रसार और प्रचार का श्रेय स्वामी प्राणनाथ को ही मिलना है। माहित्य और समाज में यह सम्प्रदाय कई नामों में अभिहित होना है। अर्थात् इस सम्प्रदाय को निजानंदी

सम्प्रदाय और प्रणामी सम्प्रदाय के अतिरिक्त धामी पंथ अथवा धामी सम्प्रदाय, २७४ मेहराज पथ, २७५ चाकला पथ, २७६ खिजडा पथ, २७७ प्राणनाथी सम्प्रदाय, २७८ परनामी सम्प्रदाय, २७९ परिणामी सम्प्रदाय, २८० नाम में भी प्रसिद्धि मिली है। गुरु देवचन्द्र जी से तारतम्यज्ञान की प्राप्ति के बाद स्वामी प्राणनाथ ने देश विदेश का भ्रमण किया और फलतः उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का एवम् भक्ति पद्धति का प्रचार किया। सम्भव है इस सम्प्रदाय का प्रारम्भिक नाम प्रणामी नहीं रहा हो। इसकी प्रारम्भिक अवस्था में कोई नाम नहीं दिया गया होगा। बीनरु साहित्य-पद्धति 'के अनुसार, धारम से ही इसका' निजानन्द सम्प्रदाय नाम रहा। लेकिन देवचन्द्र जी और प्राणनाथ के अनुयायियों की संख्या बढ़ने पर नामकरण हुआ होगा। समकालीन अवस्था में ही सौराष्ट्र-कच्छ और गुजरात में धामी, खिजडा और चाकला नाम प्रचार में रहे होंगे। मध्यभारत और बुन्देलखण्ड में इस सम्प्रदाय के प्रवेश करने के बाद ही प्रणामी सम्प्रदाय, निजानन्दी सम्प्रदाय, २८१ प्राणनाथी सम्प्रदाय नाम विशेष रूप से प्रचार में रहे होंगे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र जामनगर (नीतनपुरी), मूरत (मंगलपुरी) और पन्ना (पद्मावतीपुरी) हैं। इस सम्प्रदाय के विकास स्वरूप को स्पष्ट रूप में समझने के लिए अगर प्राणनाथ को ही एक सीमा चिह्न रूप माने तो उचित होगा। प्राणनाथ के पूर्व इस सम्प्रदाय की स्थिति क्या रही और प्राणनाथ के बाद उसका विकास किस सीमा तक हुआ यह जानना आवश्यक हो जाता है। सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष को चतुर्थ अध्याय में स्पष्ट किया गया है अतः यहाँ पर सिर्फ साम्प्रदायिक विकास पर विचार किया गया है।

(क) प्राणनाथ पूर्व स्थिति

गुरु देवचन्द्र जी ने इस सृष्टि में कौनो जन्म धारण किया इसके संदर्भ में साम्प्रदायिक मान्यता है कि ब्रह्मधाम में ब्रह्मशक्तियों में परस्पर प्रेम सवाद हुआ

२७४. डा० पीताम्बर दत्त बड्डवाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १३४

२७५. शाह देवजी नल्लुमाई, भारतनो धार्मिक इतिहास, पृ० १३७

२७६ वही

२७७. डा० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत् परम्परा, पृ० ६०४

२७८ (अ) वही, पृ० ५६३

(ब) वर्न, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया, वा० ४, पृ० २२१

२७९. राजवहश, कीर्तन की वाणी, पृ० १-

२८०. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २

२८१. शास्त्री पोपटमाई घेलाराम, श्री प्रणामी धर्मप्रकाश, पृ० ८

था। स्वयं ब्रह्म शक्तियों ने इस विश्व में साक्षात् स्वरूप लेकर जन्म नहीं लिया, लेकिन उम संवाद के परिणाम स्वरूप उनकी आंतरिक वृत्तियों ने शरीर धारण किये और ब्रह्म शक्तियों के नाम से पहचानी जाने लगीं। माया के कारण उन लोगों का ज्ञान भी परिमित हो गया और ब्रह्म धाम को भूल गईं। अतः उन ब्रह्म शक्तियों को जाग्रत करना आवश्यक था। इस सन्दर्भ में पार्वती जी ने शिव जी से पूछा तो उन्होंने बताया था कि दिव्य ब्रह्मपुर की वामना रूपी ब्रह्म शक्ति इस जगत में शायेगी और उनमें से एक परम तेज स्वरूप सुन्दरी नामक परमात्मा की अत्यन्त प्रियशक्ति मारवाड देश के उमर कोट नामक गाव में कोई पवित्र कुल में—पण्डित में पुत्र्य रूप धारण करेगी, चन्द्र (देवचन्द्र) नाम से अभिहित होगी। बड़ी सचकी अगुमगति—जन्म मरण के आवागमन को मिटा देगी।^{२८२} इस सन्दर्भ में प्राणनाथ जी ने कहा है—

“राम भेलते उमेदा रहिया नित, सो ब्रह्म मृष्टि मत्र आईया ईत ।

धामे मुरत श्रीश्यामाजीकी मार, मत्तू महेता धर भवनार ॥^{२८३}

अर्थात् बारह हजार अंगनाओं को परम धाम में वापस लेने के हेतु श्री श्यामाजी महाराणीजी की मुरता ने सुन्दरबाई की वासना के माय उमरकोट गांव में गुरु देवचन्द्र जी ने जन्म लिया। उनके पिता का नाम मत्तू महेता था। उनकी माता का नाम कुँवरबाई था वे जानि के वायस्य थे—

“कुँवरबाई माताको नाम, उत्तम वायस्य उमरकोट ग्राम ।

आय श्री देवचन्द्रजी नौननपुरी, सुन्न सबों को देने देह धरी ॥”^{२८४}

वे मात वर्ष की अवस्था से ही ब्रह्मज्ञान की खोज में विचरने लगे थे। नवरंग स्वामी ने लिखा है—

‘केनक दिन दिन नीला करी, तेनी अचरज रूप ।

मूरत सब पापाणकी, खेले साथ मरूप ॥

आय पिय बोल चले, मूरत सब ही मग ।

करे आज्ञा श्रीदेवचन्द्रजी, खेले देव तेही रग ॥^{२८५}

२८२ दिव्य ब्रह्मपुरस्येह ब्रह्माद्वैतस्य वामना ।

तामामेका च परमा सुभगा सुन्दरी प्रियाः ॥

मरुदेशे कुले शुद्धे नरूप सा धरिष्यति ।

चन्द्र नामा पुमाल्लोके हरिष्यत्यशुभां गतिम् ॥—माहेश्वर तन्त्र

२८३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश, प्र० ३७, चौ० ६१

२८४. वही, प्र० ३७, चौ० ६७

२८५. नवरंगजी, मुन्दरगर सा प्र० ६, चौ० २५, २६

अति मुन्दर शीतल मदा, खेले कुंवर की गोद ।

देखे चरित्र बालके, मन पै पायें मोद ॥ २८६

माता कुंवर भाई भी धर्म परायण स्त्री थी । मत्तू मेहता व्यापारी थे और व्यापारार्थ भूजनगर (कच्छ) गये थे । गुरु देवचन्द्र जी भी साथ में गये थे । वहाँ पर उनकी मुलाकात हर्गिदास गीसाई से हो गई थी । २८७ प्रभुरत रहने वाले पुत्र को देखकर माता पिता चिन्तित रहते ही थे, अतः माता-पिता की चिन्ता दूर करने के लिए उन्होंने लीलबाई के साथ विवाह कर लिया था—

“माता पिता को देखके, कीनी सगाई ताहि ।

आप विवाहे जायके, भोज नगर के माहि ॥

अवस्था घनी देवचन्द्रकी, वरस सत्रह की आय ।

अवस्था निज लीलबाई की, वरस पद्रह सोहाय ॥ २८८

भुज में अनेक सम्प्रदाय के साधुसंतों के साथ उन्होंने समागम किया था । लेकिन आत्मा असंतुष्ट रहती थी । अन्त में हर्गिदास जी, जो विष्णु सम्प्रदाय के थे, उनको गुरुपद दिया और कृष्ण की उपासना प्रेम पूर्ण रूप से करने लगे थे । आखिर घर का भी त्याग कर दिया । यहाँ पर उन्होंने कई शास्त्रों का अध्ययन भी कर लिया था । वे सं० १६६३ में जामनगर आये । यहाँ पर १४ वर्ष तक उन्होंने श्रीमद्भागवत का निष्ठापूर्ण श्रवणमनन किया और जप भी किया । प्राणनाथ जी ने कहा है—

“चौदे वर्षलो निष्ठाब्रध, वचन ग्रहे सारी सनध ।

कई जप तप किये वृत नेम, सेवा स्वरूप स्नेह अति प्रेम ॥ २८९

॥ वे जामनगर में कानजी भट्ट में भागवत श्रवण करते थे । अखण्ड ब्रजरास का वर्णन चलता था तब उनको तीव्र बिगड़ वेदना उत्पन्न होने से कृष्ण ने भाक्षात् दर्शन दिये और उन्हें तारतम्य-मंत्र देकर अपनी और देवचन्द्रजी की पहचान सबको करा दी ऐसी साम्प्रदायिक मान्यता है । यह प्रसंग सं० १६७८ के आश्विन, १४वीं रविवार के दिन हुआ था । २९० ४० वर्ष की आयु में उनको अन्तिम बोध हो गया । २९१ उनके प्रथम शिष्य गाँगजी भाई हुए और उन्हें दर्शन दिये—

२८६. वही, प्रकरण १०, चौ० २६

२८७. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६४

२८८. नवरंगजी, मुन्दर सागर, प्र० १०, चौ० १०४, १०५

२८९. प्राणनाथ, कुलजम स्वरूप, प्रकाश, प्र० ३७, चौ० ६४

२९०. वही, पृ० ४८-४९

२९१. आ० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५६४

"प्रथम दर्शन पीयूने शीतो, गागजी भाटकी शरणी लीनो । २६२

"गागजी भाट मिये इन अथमर, दिन ये बानी लई चित धर ।" २६३

गागजी के वारण ही प्राणनाथ उनके ममर्ग में आये और वे उनकी सेवा करने लगे थे । आखिर उनको तारुण्य-मत्र दिया और भद्रपद शुक्ल १४ बुधवार म० १७१२ को उनका धामागमन हुआ । इस मदर्ग में तद्वर्ग स्वामी ने अपनी "वीनक" में लिखा है—

"नौतनपुरी विहागीजी धाने, मध्य देन जी माहेर जाने ।

मवन मतर बागोनरा मे, विधि कही पधारे धामे ॥

घर जाय वे रमे मही, पवर लेऊंन मायकी कही ।

धामो माम मुकन पप लेधी, चनुरदपी बुधवागी पेपी । २६४

प्राणामी सम्प्रदाय ने गुन्देवनन्दजी को धामागमन में पहले स्थिर सिद्धान्त देने ही स्थानित न कर दिया ही लेकिन अपने अनुयायी पैदा कर लिए थे । मभव है, उस समय यह मन विरोध रूप में जामनगर में ही प्रचलित रहा होगा । इसका थोड़ा बहुत प्रचार खमालिया, धोल और जामनगर के आसपास वाले गावों में तथा भूजनगर (कच्छ) में रहा होगा । उस वक्त नौतनपुरी ही एक केन्द्रस्थ स्थान था ।

(२) प्राणनाथ-सम्प्रदाय संबंधक

गुरु देवचन्द्रजी को उहलीना संवरण के बाद सम्प्रदाय का बोझ विहागीजी और प्राणनाथजी पर ही आया । प्राणनाथ ने समझ रखा था कि ब्रह्म-वामनाओं को जगृण करने के लिए और सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने के लिए देशभ्रमण आवश्यक है । विहागीजी को जामनगर का केन्द्र मीन कर देशभ्रमण शुरू कर दिया और सम्प्रदाय का प्रचार करते रहे । उनके इस परिश्रम स्वरूप प्रारम्भ में कच्छ, मौराष्ट्र और गुजरात में इस सम्प्रदाय को जन समाज में प्रतिष्ठा मिली तथा कई अनुयायी हुए । प्राणनाथ ने दिल्लीगमन करने के हेतु जब मूल शहर छोड़ा तब गुजरात में इस सम्प्रदाय ने अपना स्थान निश्चित कर लिया था यह निश्चक है । इस समय सम्प्रदाय ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त भी छूट कर लिखे थे । पहले से ही इस मत ने सर्वांग रूप नहीं रखा था, लेकिन दिल्लीगमन के वक्त प्राणनाथ के अनुभवों ने इस सम्प्रदाय को अधिक उदारमतवादी और मानवतावादी बना दिया होगा ।

२६० नवरंगजी, मुन्दर सागर, प्रकरण, ३०, चौ० २

२६३. प्राणनाथ बुजबुजस्वरूप, प्र० ३३, चौ० ७४

२६४ नदरंगजीकृत वीनक, प्रकरण १२, चौ० ७८-७९

प्राणनाथ ने छत्रसाल का गुरुपद प्राप्त करने से पहले सर्वधर्म सम्मेलन के सहारे प्रणामी सम्प्रदाय को भारतीय धर्म सम्प्रदायो में ग्रच्छा स्थान दिलाया और दिल्ली निवाण दरम्पान उन्हांने वद्दा पर इम सम्प्रदाय के कई अनुयायी बना लिये थे । बुन्देलखण्ड में महाराज छत्रसाल का गुरुपद प्राप्त करने पर प्रणामी सम्प्रदाय की प्रनिष्ठा और बढ़ गयी । प्राणनाथ ने बुन्देलखण्ड के बुन्देलों में न सिर्फ धार्मिक प्रेरणा जगायी लेकिन राजनीतिक और धार्मिक चेतना को उत्तुब्ध करने में सहायक हुए । राष्ट्रीयता के प्रतीक छत्रसाल के वे गुरु, सहायक के रूप में एक मात्र प्राणनाथ थे ।^{२६५} उस वक्त उनके प्रमुख शिष्यों में लालदामजी, कसोदास, मुकन्ददाम अर्थात् नवरण स्वामी और छत्रसाल थे । प्राणनाथ के धामगमन के समय इम सम्प्रदाय के सहस्रों शिष्यों की उपस्थिति थी अर्थात् अपने धामगमन में पूर्व उन्हांने प्रणामी सम्प्रदाय के कई अनुयायी बना लिये थे और सम्प्रदाय को सगठित स्वरूप दे दिया था ।

प्राणनाथ की इहलाला समाप्ति के बाद प्रमुख शिष्यों ने सम्प्रदाय के विकास का प्रयत्न जारी रखा था । सम्प्रदाय के पूज्य ग्रन्थ का मकलन कसोदास ने किया ।^{२६६} इन प्रमुख शिष्यों ने नेपाल, दार्जिलिंग, गाहाटी, मिलीगुडी, काशी, प्रयाग, पञ्जाब, बघेलखण्ड, कानपुर, बिहार आसाम आदि प्रदेशों में प्रणामी सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार किया । गुजरात में दूसरा प्रमुख केन्द्र मूरत बनाया गया । इस प्रकार पन्ना, मूरत और जामनगर प्रणामी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रों के रूप में बनाये गये ।

प्राणनाथ अपने समय से बहुत आगे थे । साम्प्रतिक दृष्टि से प्रणामी सम्प्रदाय और प्राणनाथ का स्थान भारतीय समाज में महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए । लेकिन इस सम्प्रदाय की इतनी प्रतिष्ठा न हुई, कि जिजनी हीनी चाहिये । प्राणनाथ व प्रणामी सम्प्रदाय इनना उदारमतवादी लगा कि बाद की दो जनान्दियों ने इमें अपनाते में सकोच रखा । जाति पानि, तृप्राखून, मूर्तिपूजा आदि बाह्याडवरो के सकीर्ण कठघरे में बन्द हिन्दू समाज थी प्राणनाथ और उनके विचारों को समझने की शक्ति खो बैठा ।^{२६७} एक नग्न सत्य यह भी है कि “दुखमें सुमिरन सब करै मुख में करै न कोय” के अनुसार बाद में राजकीय दृष्टि में जनजीवन यथात न रहने पर और समन्वयात्मक भावना के प्रसार की आवश्यकता न लगने पर इसका प्रचार न हुआ हो यह भी संभव है । इम सम्प्रदाय ने हस्नालवित ग्रन्थों को प्रकाश में लाने की कोशिश नहीं की और वासना सम्बन्धी साम्प्रदायिक मान्यता के प्रति लोगों में

२६५. प्रो० माताबदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० ६

२६६. आ० परजुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५६६

२६७. प्रो० माताबदन जायसवाल, दूसरा प्रणाम, पृ० १७

श्रद्धा न जगी हो यह भीसभव है । बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक विवाद गुजरात में जगा कि प्राणनाथ के स्थान पर गुरु देवचन्दजी को और विहारीजी को ही पूज्य मानना चाहिए और इस प्रकार मानने वाले लोगों ने "निजानद मंडली" या "देव चंदजी सत्सग मंडली" की स्थापना भी की थी ।^{२६८} वैसे पन्ना के मंदिर में कलश के स्थान पर पूजा होने के कारण तथा वहाँ प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी की मृत्यु के बाद समाधि दी जाती थी, इसलिये इस सम्प्रदाय को इस्लाम धर्म का सम्प्रदाय होने का भ्रम फैलाया गया था ।^{२६९} इन भ्रमों के फलस्वरूप ही ई० सन १८८० और १९०८ में नेपाल में से इस सम्प्रदाय को निर्वासित कर देने का हुक्म किया गया था ।^{३००}

किन्तु बीसवीं शताब्दी के मध्य से इस सम्प्रदाय ने नया जीवन लेना शुरू किया है और उसने लोगों का ध्यान आकृष्ट करना शुरू कर दिया है ।

-
२६८. मिस्त्री रामजी मोजा, श्री प्रणामी धर्मप्रकाशना पुस्तकालय उत्तर अरजी भा०
२ (गुजराती) (१९२५), पृ० ४-५
२६९. डा० भगवानदास गुप्त, महाराज छत्रसाल बुन्देली, पृ० १११
३००. Panna Gazetteer, pp. 37-38.

तृतीय अध्याय

प्रणामी संप्रदाय की साहित्यनिधि

मध्यकालीन हिन्दीसाहित्य भक्तो एवम् सतो की बानियो से मपृढ है । अपने-अपने धर्ममत को उन्होंने अपने साहित्य मे अभिव्यक्त किया । भक्ति की सगुण और निगुण धारा के माध्यम मे ही यह अभिव्यक्ति हुई । इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भक्ति का सर्वप्रथम प्रतिपादन महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता मे ही होता है । महाभारत के भागवतधर्म का विकास श्रीमद्भगवद्गीता मे मिलता है । लेकिन इन दोनों मे चित्रित कृष्ण भिन्न-भिन्न होने की मान्यता भी है । वस्तुतः कृष्ण के गोपीजीवन का विस्तृत निरूपण श्रीमद्भागवत पुराण मे हुआ है । मध्यकालीन भक्तिसाहित्य मे कृष्ण का पौराणिक रूप ही विशेषतः स्वीकार्य रहा है । स्वामी प्राणनाथ और प्रणामी संप्रदाय के साहित्य ने कृष्ण की नित्य एव दिव्य ब्रह्मधाम की वास्तवीलीला के ब्रह्मानन्द को चित्रित किया है ।

माधुर्योपासना वैष्णव भक्तो की भक्ति की चरमसीमा है । डा० रतिभानुसिंह "नाहर" लिखते हैं, नारायण (कृष्ण), नारद, शंकराचारिको, कृष्णद्वैपायन, वेदव्यास, शांडिल्य आदि द्वारा प्रचारित एवम् प्रसारित भागवतधर्म जब धार्मिक आंदोलन का रूप ग्रहण करता हुआ बहुसंख्यको एव विभिन्न देशो एवं विदेशी जातियो की वस्तु बनने लगा तो स्वभावतः इसमे कुछ नवीन तत्व सम्मिलित हो गये । इन्ही नवागत तत्वों मे से कृष्ण तथा राम के अत्यन्त रसिक रूप की कल्पना एक उल्लेखनीय तत्त्व है ।^१ प्रस्थानत्रयी, रासर्पवाध्यायी और मधुरोपासना के प्रचारक वैष्णव आचार्यों से प्रेरणा पाकर कृष्ण-कवि प्रेमलक्षणा भक्ति का गुणगान गाते रहे । लोकानुप्रात श्री-

१. डा० रातभानुसिंह "नाहर", भक्ति आंदोलन का अध्ययन, पृ० २०७

पुरुष के प्रेम मय की व्यापकता को देखकर ज्ञानी मायको ने भी ईश्वर के प्रति अपने ध्यात्मिक मय की अनुभूतियों को तात्त्विक शृंगार की भाषा तथा मन्वो-क्तियों में प्रकट किया है, किन्तु इस प्रेम का ध्यानवन लोकायत न होकर ईश्वर या ईश्वर का कोई ध्वनरित रूप होता है।^२ इसी हेतु कृष्णकवियों के लिए राधा-कृष्ण का कामनीय मोदय पर्याप्त था।

परमप्रेमकाभक्ति का लक्षण बनाने हुए नारद ने कहा है, वह अपने प्रेमय कर्मों के प्रति अग्रण करने तथा उनसे विचिन मात्र भी विमृत हो जाने पर भी परम ध्यातुन भी हो जान म शील पडनी है। वह ठीक उनी प्रकार की है, जमी ब्रज की गोपियों की भक्ति में दगी जाती है।^३ यन्तुन जो शृंगारयम जड़गत में निरूप्ट है, वही शृंगारयम भगवद्विषय होन पर मधुरम हो जाना है, यद्यपि भक्तिशाम्भ की मर्यादा के अनुसार एने शृंगार नहीं बहा जा सकता है बशकि इनक लिए काम और प्रेम में भेद नहीं है।^४ प्रिय का प्रिय में संयोग या सम्मेलन ही माधुर्य है। डा० श्यामनारायण पाडेय न कहा है, जिन भगवत-प्रेमियों के धनस्मन में भगवान के प्रति सर्वस्व समर्पण करने का भाव है, जो समस्त काम मुख की लौकिक दृष्टि में प्रधानता नहीं देते तथा जिनकी समस्त इन्द्रिया अगन टुट्टदव के परम मोदय क परममयुक्त परमानन्द को प्राप्त करने के निय ध्यातुर हो रही है, वे ही परमप्रम्वरूप श्रीकृष्ण के प्रति माधुर्य उपानना क माधक हान है।^५ गोविन्दायो की भक्ति लौकिकदृष्टि से परकीयाभाव की होन पर भी वह आत्मिक दृष्टि म स्वकीया थी। प्रियतम श्रीकृष्ण का निरन्तर चिन्तन और स्मृति, मितन की तीव्र उत्कण्ठ और रापदृष्टि का अभाव ही परकीयाभाव का मधुर भक्ति है। यही परकीयाभाव ही वेद्यों का आदन दुषा और इसी का आधार लेकर आतमाए अगन आप को मवभावन श्रीकृष्ण को समर्पित करनी रही है।^६ भागवत को वेदों का मार माननवाने^७ प्राणनाथ और प्रणामी सप्रदाय के अन्य भक्तों ने हिन्दी के कृष्णभक्तकवियों की भावि गोविन्दायो की मधुर-भक्ति के संयोगपक्ष और वियोगपक्ष का सुन्दर चित्रण किया है।

२. डा० शशि अग्रवाल, हिन्दी कृष्ण काव्य पर पुराणों का प्रभाव, पृ० १४६

३. नारद भक्ति सूत्र, २-३

४. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ० २६१

५. डा० श्यामनारायण पाडेय, हिन्दी कृष्णकाव्य में माधुर्योपानना, पृ० ४६

६. S. K. De, Vaishnava Faiths & Movements, p. 54

७. प्राणनाथ, कुलधर्मस्वरूप, प्रकाश, चौ० ४

वेद को मार कही भागवत, वह उपजा शास्त्रों के अन्त।

प्रणामी साहित्यनिधि के इन भक्तों का हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामो-ल्लेख नहीं हुआ। मिश्रबधु आदि ने इनका नामोल्लेख किया भी है तो अन्य सम्प्रदाय के ऋषियों के रूप में। यहाँ पर इस साहित्य को दो विभागों में विभक्त किया गया है—१. प्राणनाथ और प्राणनाथ-पूर्व साहित्य और २. प्राणनाथोत्तर साहित्य।

प्राणनाथ और प्राणनाथपूर्व साहित्य

(क) गुरु देवचन्दजी द्वारा लिखित मूल तारतम्यवाणी

आज तक यही माना जा रहा है कि स्वामी प्राणनाथ से पूर्व प्रणामी सम्प्रदाय में कोई साहित्य नहीं लिखा गया। जब कभी प्रणामी सम्प्रदाय के साहित्य पर विचार होता है या किया गया है, प्राणनाथ स्वामी लालदास या नवरम के नामों का सदर्भ ही लिया जाता है। इतना स्पष्ट है कि प्राणनाथ ने ही अपनी साहित्यनिधि में सम्प्रदाय को निश्चित स्वरूप दिया। लेकिन उनसे पूर्व गुरु देवचन्दजी ने भी कुछ लिखा होगा ऐसा मानने लेने के लिए अल्पांश में भी प्रमाण मिलते हैं। सं० १६८० में सम्प्रदाय के एक पक्ष को पत्रिकाओं से यह शका उठायी गयी है कि देवचन्दजी (मुन्दरबाई) का नाम काटकर प्राणनाथ ने अपना नाम रख दिया है। लेकिन इस बात से सम्प्रदाय के विद्वान महमत नहीं होने पर भी इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि देवचन्दजी का मूल तारतम्य का होना स्वाभाविक है, क्योंकि उन्हीं के उपदेशों का विस्तार प्राणनाथ ने "कुलजमस्वरूप" में किया है। कहा जाता है कि गुरु देवचन्दजी के श्रीकृष्णदर्शन का वर्णन ही मूल तारतम्य में हुआ है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार आश्विन कृष्ण चतुर्दशी सं० १६७८ के दिन उनकी जामनगर के श्यामसुन्दर जी के मंदिर में ऐसा प्रतीत हुआ कि एक महान् अद्भुत तेजपुञ्ज उनके सामने उपस्थित है। कृष्ण के इस मूल स्वरूप ने इस प्रकार दर्शन दिये और बाद में कृष्ण-देवचन्दजी के बीच ब्रह्मा आदि के बारे में चर्चा हुई। अर्थात् तारतम्य की मूलवाणी सं० १६७८ के बाद ही कभी लिखी गई होगी।

(ख) स्वामी प्राणनाथ की जोशवाणी (बेहोशवाणी) और होशवाणी

"राम" नामक रचना का प्रारम्भ "हवे पेहेलाँ मोहजलनी कहूँ बात" से होता है। यह मोहजल ही माया है जो चारों ओर व्याप्त है। देवी देवता तक इसके प्रलय-मन में आन में न बचे। अतः प्रभु की शरण में जाना ही ध्येयस्वरूप है। तदन्तर अद्भु

८. (घ) भाई रामजी भोजा द्वारा प्रकाशित पत्रिका, सं० १६८०, पृ० १०

(ब) श्री प्राणनाथ सदेश, जायति अंक, पृ० ६

९. पं० प्यारेलाल और श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज के प्रत्यक्ष मुलाकात के आधार पर।

को शांत करो ।^{११} अन्ततः प्रियतम प्रियतमा की पवित्र आत्मा को अनन्यता के वश ही जते हैं । इसी रचनान्तर्गत वारहमासी का वर्णन है । इसमें देवचन्दजी का आरोप कृष्ण में करके और अपने आपको इन्द्रावती के रूप में चित्रित करके विरह व्यक्त किया है । इस प्रकार एक साथ गोपीकृष्ण का विरह और गुरुशिष्य का विरह चित्रित हुआ है ।

“कलश” (गुजराती) रचना में सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन किया गया है । ब्रह्म की खोज, जगत, विविध धर्ममत, वेदोक्त कर्मनाथना, पुरुष-प्रकृति, भवतारो की मोमोम, श्रीकृष्ण त्रिधालीला, आदि तत्त्वों का विश्लेषण किया है ।

“प्रकाश” (हिन्दुस्थानी) रचना वस्तुतः गुजराती में लिखित उक्त रचना का ही अनुवाद है । आत्ममाधना के लिए उपयोगी तत्वों को इसमें लिया गया है, इसी-लिए स्वयं प्राणनाथ ने अनुवाद किया । फिर भी भाषाविस्तार के कारण गुजराती रचना से इस अनूदित रचना में चौपाइयाँ ज्यादा हैं । इसी रचना में “कातनी का दृष्टात” नामक प्रकरण है । माना जाता है कि इसी दृष्टात का पू० गाधीजी पर गहरा प्रभाव पड़ा था जो कि अपने बचपन में माताजी के साथ मुदामापुरी (पोरबन्दर) के प्रणामी मंदिर में जाते थे । लक्ष्मीजी का दृष्टात, शुक्रदेव महिमा, बेहदवाणी, प्रगटवाणी जैसे महत्वपूर्ण प्रकरण या अंश इसी रचना में आते हैं । अन्यत्र कहा जा चुका है कि कई विद्वान बेहदवाणी और प्रगटवाणी को उनकी “प्रकाश” से कोई भ्रमण रचना मानते हैं । लेकिन वास्तव में वे “प्रकाश” के प्रकरण मात्र हैं ।

“कलश” (हिन्दुस्थानी) रचना भी वस्तुतः गुजराती में लिखित उक्त रचना का ही अनुवाद है । “प्रकाश की तरह इसमें भी विषयविस्तार के कारण कुछ प्रकरण बढ़ गये हैं । ब्रह्मांड वर्णन, प्रेममार्ग, भाषा का स्वरूप, विशिष्ट आत्माएँ, गोकुल लीला, जागनी लीला का इसमें भी वर्णन किया गया है । इन्होंने यही उपदेश किया है कि^{१२} माया दुःखदायी है । इसे पकड़ोगे तो दुःख ही पाओगे । उसमें बचने का

११. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, पटञ्जल, पृ० १, चौ० १०-११

भारी वहेली ते लेजो मार, वालाजीनी हू विरहणी रे ;

मुने दिवस दोहेला जाए, बसेके रंणी रे ।

इन्द्रावती कहे भवगुण, विसारों भमतणा रे ।

१२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, कलश, प्र० ४३ चौ० २६

लगोगे जो दुःख को तो दुःख तुमको लागसी ।

याद करो निज सुख, तो दुःख पीछे भागसी ॥

के बीच प्रचलित मिथ्या झाडवरोँ का खडन करता है वहाँ धर्म-धर्म के बीच उत्पन्न होने वाले विपक्षवाद को नेशनवाद कर धार्मिक भावना के बीच आध्यात्मिक सामाजिक के पवित्र मोपान का निर्माण करता है ।

“किरतन” (कीर्तन) रचना के पद भ्रमण के समय पर भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर लिखे गए हैं । उसमें विभिन्न मतवादियों के साथ चर्चा, पौराणिक मतवाद का स्पष्टीकरण और वेदान्त तत्त्वों को प्रतिपादन किया गया है । लेकिन वेदांत और पुराणों में सम्बन्धित “किरतन” अधिक प्रभावशाली हैं । इसमें नाना राग-रागिनीयों में छोटे-बड़े कई “किरतन” हैं । इन किरंतनो का उपदेश संबंधी एवं मार्गदर्शक है । “सनध” में सच्चे मुस्लिम की पहचान थी और “किरंतन” में सच्चे मनुष्य की पहचान वे कराते हैं ।^{१०} इसी प्रकार, नम्रता, श्रद्धा, कायरता का परिश्याग, आत्मबल-प्राप्ति के मदर्भ में अपने विचार व्यक्त किये हैं ।

“खुलासा” रचना में स्वामी प्राणनाथ ने कुरान, जिसको वे खुदा का फरमान (आज्ञापत्र) मानते हैं, उसका स्पष्ट रूप प्रगट करते हुए ससार में धार्मिक वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया है । पूर्वोक्त ग्रन्थों में माया, ब्रह्म, जीव आदि का जो विवेचन किया है, उन्ही का अर्थविक ग्रन्थों के आधार पर इसमें विवेचन किया गया है । स्वामी प्राणनाथ के समन्वयवादी विचारों की इसमें स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है । वस्तुतः सभी धर्मों का मुख्य उद्देश्य उस परम प्रेमरस को प्राप्त करना ही है । हिन्दू, मुस्लिमान, ईसाई आदि धर्मों के सिद्धान्तों में भिन्नत्व नहीं है । जो कुछ वैदिक ग्रन्थों में कहा गया है, वही अर्थविक ग्रन्थों में भी है -

जो कुछ कहा कतेबने, मोई कहा वेद ।
दोऊ बदे एक साहेब के, पर लडत बिना पाये भेद ॥
बोली सबी जुदा परी, नाम जुदे परे सबन ।
चलन जुदा कर दिया, ताये ममभन परी किन ॥
ताये भई बड़ी उरभन, सो मुग्गाड दोऊ ।
नाम निशान जाहेर कह, जो समभे सब कोऊ ॥^{११}

१०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० १५, चौ० ४-५

११. सात बेर प्रस्नान करो, पहनो ऊन उत्तम कामल ।

उपजो उत्तम जात मे, पर जीवडा न छोडे, बल ॥

सो माला वाधो गलेमे, द्वादस करो दस बेर ।

जो लो प्रेम न उपजे पिउ मां, तो लो मन न छोडे फेर ॥

१२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० १२, चौ० ४२-४४

“खिलवत” रचना मे प्रेमी-प्रियतम-सवाद है। ग्रहभाव का दमन, ब्रह्मज्ञान की महिमा, ब्रह्मसृष्टि (उत्तमजीव) का सृष्टि मे अबतोरुं होने का कारण, आदि बातों का इसमें समावेश किया है। परमधाम के दर्शन की आंतरिक चाह अभिव्यक्त हुई है। परमधाम की कल्पना करते हुए वे कहते हैं कि वहाँ तो ज्ञान के सागर भरे हैं, भान के समान ही उसके प्रेम के सागर हैं। स्वयं साकी शराव उड़ेले जा रहे हैं, अपने प्याले ले लेकर भरते जाइए—

साकी पिलावे शराव, रुहे प्याले लिजिए।

हक इश्क का आद, भर भर प्याले पीजिए ॥^{१९}

“परकरमा” (परिक्रमा) रचना मे आत्मा के परमधाम में विचरण का सांसारिक शब्दों मे वर्णन किया है। बुद्धि, जोश, बल या ज्ञान वहाँ नहीं पहुँचा सकते क्योंकि वह प्रेम-भूमिका है। इसीलिए वे प्रेम को परमधाम की संर करवा देने की बिनती करते हैं—

भव आधो रे इश्क भानु हाम, देखू बतन अपना निज धाम।

करूँ चरण तले विश्राम, विलसू पियोजी सों प्रेमकाम ॥^{२०}

प्रेम से यह बिनती करने का कारण यही है कि वे कहते हैं—

“पथ होवे कोट कल्प, प्रेम पहुँचावे मिने पलक”।

इस प्रकार परमधाम के पश्चिम पक्ष के अन्तर्गत रंगमहल, फूलबाग, महान वन, पुलराज यमुनाजी के सात घाट, अक्षर धाम, सुधा सरोवर, जवाहिरों की नहरें और महल, चार हार-हवेली, माणिक पहाड, आठ सागर और आठ भूमि खड का वर्णन किया गया है। परमधाम की इन चीजों के द्वारा वहाँ के परमसौंदर्य का वर्णन दिया गया है। उन्होंने परमधाम के प्रेमियों के अपूर्व प्रेम का परिचय दिया है। आत्माओं के प्रेमभाव, स्नेह सेवा, एकता, अलौकिकता, आहार-बिहार, गतिस्थिति आदि अपूर्व दिव्यता का विस्तार से वर्णन किया है। परमधाम की सभी सामग्री शोभा और प्रेम से परिपूर्ण हैं। प्रेममयी ब्रह्मसृष्टि को ही ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण परमधाम मे विचरण करने का अधिकार है।

“सागर” रचना मे “परकरमा” में बताये गए आठों सागर का ही विस्तार से वर्णन है लेकिन सागरों के रूपक मे पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द के अप्राकृत गुण और उनकी असीमता का वर्णन करते हुए अलौकिक दिव्यता की ही अभिव्यक्ति हुई है। पूर्ण पुहपोत्तम युगल स्वरूप का दिव्य शृंगार का और ब्रह्माण्डनामों के शृंगार का

१९. वही, खिलवत, प्र० ८ चौ० १

२०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, परकरमा, प्र० ३ चौ० १

विवरण किया गया है। सच्चिदानन्द स्वरूप का वर्णन करते वे अघाते नहीं, जिस अंग का वर्णन करते हैं आत्मा का वही अंग प्रभुमिलन के लिए छटपटाने लगता है—^{२१}

नैन श्रवण मुख नासिका, मुख छवि अग्नि सुन्दर ।
देखत ही आशिक अंगो, चुभ रहत हैं हैयडे अन्दर ॥

इस प्रकार आठों भागर के गूढार्थ का विवेचन हुआ है। नूर सागर का मूल-स्थान में, नीर और धीर सागर का सखियों की शोभा और ऐक्य में, दधिसिन्धु से युगलस्वरूप राधाकृष्ण के शोभाशृंगार में, मधुसिन्धु का प्रेम के साथ घृतअर्णव का ब्रह्मविद्या के साथ, रससागर के ब्रह्मागताप्रो के संबंध में और सर्वरस सागर की वृष्ण (श्रीराजर्जा) की दया के साथ अन्तरात्मक तुलना की है।

“सिनगार” (शृंगार) रचना में आत्मा के समक्ष सच्चिदानन्द परब्रह्म नख-शिलान्त शृंगार और अंग-उपांगों का पृथक-पृथक सौंदर्य, वस्त्रालकारों की दिव्यता का विभिन्न रूपों में, प्रं-म-प्रीत, कृपा-कोमलता, कला-कौशल्य, नीति, बलविद्वता और अपूर्वता का वर्णन किया है। ब्रह्मांगना (भक्तों) के धर्मकर्म, लक्षण और अन्वेषण का भी प्रतिपादन करते हुए उन्हें ससार से परमधाम जाने के लिए प्रेरित किया है।

परब्रह्म के चरणों की शोभा, गुण कोमलता का वर्णन कैसे हो, जब आत्मा एक नख की ज्योति देखकर दग रह गई—

सखी रो तेज भरी आकाश में, नखजोत निकसी चीर ।
ज्यो सागर छेद घावत, नहरें निर्मलका नीर ॥^{२२}

“सिन्धी” रचना में प्रभु से विलुडी आत्मा जब प्रयत्न करने पर भी प्रभु से मिल नहीं पाती, तब निराश होकर बैठ नहीं जाती। लेकिन प्रभु को महायता के लिए पुकारती है, उनकी शक्ति और आज्ञा को चुनौती देती है। इतना तक कह डालती है कि मेरे प्रेम की कमी नहीं, आपके हुबम की ही देर है, वरना मैं कब से जाग्रत हो चुकी होती। खेल का बंधोरा, बिनती, न्याय, और फरियाद और हमारा अपराध इन चार मुख्य बातों को लेकर इसकी रचना की गई है।

“मारफतसागर” रचना में सरियत के बन्धनों में जकड़े हुए “कुरान” के धार्मिक सिद्धान्तों का आध्यात्मिक विश्लेषण किया गया है। मारफत आत्मा का मुक्तावस्था का नाम है। “कुरान” में आखिरी जमाने के सूचक सात निशानों का उल्लेख आया है, जो मशरक और मगरब सूरज, आबूजमाबूज, दाफ तुल अर्ज, दजाल

२१. वही, सागर, प्र० ५, चौ० ५१

२२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, सिनगार, प्र० ५ चौ० १

नाम से है। उन्हीं सात तत्वों का वैदिक ग्रन्थों में वर्णित अंतिम युग के प्रमगो से संगति कर, धर्म की विभिन्नता के समन्वय की उच्च भावना उत्पन्न करना ही इस रचना का प्रधान उद्देश्य है। श्विन्वत की बातें, तारतम, फिरके, क्यामत के सात निशान, छ दिन की पैदाइश आदि बातों को इसमें विस्तार में लिया है।

प्राणनाथ ने कहा है, जब से ब्रह्मांड बना है परमात्मा के अंश में उत्पन्न अवतार-पैगम्बर ब्रह्मज्ञान को सकेतो में बताते रहे—

जमाना खाली नहीं बिना महमदी कोय।

करत मवनमें रोशन, चिराम नबीकी सोय ॥^{२३}

“क्यामतनामा” (छोटा) में आत्मजागृति पैगम्बरी आदि पर प्रकाश डाला गया है। उपदेशवाणी को पढ़-सुन कर भी जो आत्मा जागृत न हो, वह मोमिन नहीं है और ऐसे लोगों से किनारा करना ही अच्छा है—

यो इत्म समभावते, जो कोई न समझत।

तिन मजाजी दिलको, जिनकरो नमीहत ॥^{२४}

“क्यामतनामा” (बड़ा) में कुरान के गुप्त अर्थों को खोला गया है। दश जोरवफो का विवरण देते हुए जीवात्मा ब्रह्मज्ञान के द्वारा अपने आचरण के अनुसार आठ प्रकार की मुक्ति के द्वारों से जीवन मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं यही क्यामत का सही अर्थ है। इसमें भी इमाम मेहदी और निष्फल बुद्धावतार पर स्पष्टता की है।

प्राणनाथ की होशवाणी के ग्रंथ कुरान के जवाब सवाल, मेसमीराजी का सवाद, तीसरा क्यामतनामा, कुरान की पत्रिकाएँ, जामिल मारफत, छत्रमानप्रबोध आदि में मुख्यरूप में हिन्दुमुस्लिम धर्म की एकता, सर्वधर्मों का मूल रहस्य, कुरान-पुरान के समानतत्वों जैसी बातों पर ही प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों में एक ही बात भिन्न-भिन्न ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः दार्शनिक विचारों को ही एक या अन्य ढंग में स्पष्ट करने के हेतु होशवाणी की छोटी-छोटी रचनाएँ लिखी गई हैं। वैसे भी इन रचनाओं का विस्तृत विवेचन करना असंभव है, क्योंकि होशवाणी की सभी रचनाएँ आज उपलब्ध नहीं होती।

(ग) कहराबतीकृत तारतम्यसागर

इस तारतम्यसागर ग्रन्थ के सदर्थ में आज साम्प्रदायिक विद्वान प्रायः मौन रहते हैं कहीं पर इसका विस्तृत उल्लेख भी नहीं हुआ। श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी ने इस

२३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, मारफतसागर, प्र० १४ चौ० ७६

२४. वही, छोटा क्यामतनामा, प्र० १, चौ० ८८

पर प्रकाश डालने की कोशिश की थी। फिर भी इसके पदबंध में त्रिशेष जानकारी नहीं मिलती। श्री मंगलदासजी महाराज के अनुसार, कसारा जयरामभाई ही कृष्णावतीजी के भवतार हैं, जिन्होंने सुन्दर ललित शब्दों में "तारतम्य सागर" ग्रन्थ बनाया है।^{२५} लेकिन उक्त ग्रन्थ में "प्रेमी तुलाराम बनिहागी" "तुलाराम पिया पर वारी" ऐसी छाप बार-बार आती है। ऐसा श्री कृष्णप्रियाशार्थ का मत है। माना जाता है कि तुलाराम भट्ट सूरत के ब्राह्मण थे और बल्लभसम्प्रदाय के पुरुषोत्तमदास के शिष्य थे। प्रारंभ में वे पुष्टिमार्गी थे और बाद में गुरु देवचन्द्र के सिद्धान्तों को मानने लगे थे। उन्होंने अपनी रचना में घोषित किया है कि भूतल पर मेरे स्वरूप का नाम तुलजाराम है।^{२६} अर्थात् इतना स्पष्ट है कि कृष्णावती कृत "तारतम्य सागर" ग्रन्थ स्वामी प्राणनाथ के समकाल में ही रचा गया है। इनकी रचनाओं में तारतम्यसागर, श्री परमधामना पच्चीस पक्ष और महाकरण की प्रश्नोत्तरी का का उल्लेख मिलता है। अन्तिम दो रचनाओं में बल्लभ सम्प्रदाय और गुरु देवचन्द्रजी के दार्शनिक विचारों का समन्वयात्मक चित्रण किया गया है।

(आ) प्राणनाथ-पार्वती साहित्य

स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं के अतिरिक्त उनके कई शिष्यों एवम् सम्प्रदाय के अन्य सन्तों अनुयायियों की अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। विशेषतः इन सब की रचनाओं में गुरु देवचन्द्रजी स्वामी प्राणनाथ के जीवन, कार्य या विचारों को अपने ढंग से प्रस्तुत किया गया है या कृष्ण-राधा के प्रति उत्पन्न भक्तिभावना की अभिव्यक्ति हुई है।

"बीतक" परम्परा एक मौलिक देन

प्रणामी सम्प्रदाय की "बीतक" परम्परा हिन्दी जीवनी साहित्य की विधा में एक मौलिक देन के समान है। साम्प्रदायिक साहित्य में इन बीतकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा० मोलानाथ तिवारी लिखते हैं, जीवनी के लिए क्यात, बात, वार्ता, परचई या स्वयं जीवनी के अतिरिक्त एक शब्द "बीतक" भी है। "बीतक" शब्द स० "वृत्त" से बना जात होता है और सन्त साहित्य में जीवन-वृत्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका इस अर्थ में प्रयोग, प्रणामी साहित्य में किया गया है। प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ के तथा उनके गुरु देवचन्द्र के जीवन को लेकर, प्रणामी साहित्य में लालदास, ब्रजभूषण, हंसराज मुकुन्द या नीरंग स्वामी सनेह सखी की बीतक

२५. श्री मंगलदासजी महाराज, बीतकदर्शन, पृ० २८।

२६. श्री प्राणनाथ संदेश, जागृति प्रक, नवम्बर-दिसम्बर, ५७, पृ० ५

सल्लू महाराज करणावती की बीतक सात बीतकें लिखी गई है ।^{२७} इनमें अन्तिम तो गुजराती में है, शेष हिन्दी में है । जीवनी की दृष्टि में लालदास की बीतक ही स्वयं सुन्दर है, जिसमें पूरा वर्णन है । धर्म तथा प्रचार की दृष्टि से लिखे होने के कारण बीतकों में भी निरपेक्षता नहीं है, इसी कारण केवल गुणों का वह भी प्रायः बढ़ाचढ़ाकर, वर्णन है ।^{२८} फिर भी, इनमें लालदास की बीतक अधिक प्रमाणिक एवम् भादरणीय मानी जाती है ।

यस्तुन “बीतक” शब्द संस्कृत पर से गुजराती के तद्भव “बीतक” पर से ही आया होगा । क्योंकि गुजराती में “बीतक” का प्रयोग “जो गुजर चुका है या जिसका अनुभव हुआ है” के अर्थ में होता है । स्वामी प्राणनाथ, स्वामी लालदास, नवरत्न स्वामी आदि कई गुजराती ही थे और परिणाम-स्वरूप गुजराती “बीतक” शब्द का उक्त अर्थ में प्रयोग किया हो ।

(क) स्वामी लालदास

स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख शिष्यों में स्वामी लालदास का नामोल्लेख अग्यत्र हो चुका है । ब्रह्मचारी भगलदासजी ने उनके जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया है^{२९} कि वे पोरबन्दर के लोहाणा जाति के कुलीन एवम् प्रतिष्ठित व्यक्ति थे । ठट्टानगर के बड़े व्यापारी थे और वे १६ व्यापार पौन के मालिक लक्ष्मण सेठ के नाम से प्रख्यात थे । धर्मप्रचार करते हुए, जिस समय स्वामी प्राणनाथ ठट्टानगर पहुँचे उस समय चतुरा नाम एक ब्राह्मण के द्वारा लालदास ने प्राणनाथ के दर्शन की प्रार्थना की । इसका उल्लेख स्वयं लालदास ने अपनी “बीतक” में किया है—^{३०}

चतुरें आए धरज करी, लाल चाहे करें दीदार ।

लक्ष्मण उनका नाम है, है तालिव धनी निरधार ॥

स्वामी प्राणनाथ में वही पर दीक्षित हो जाने पर इनका मन सासारिक प्रवृत्तियों से हटता गया । जब स्वामी प्राणनाथ मूरत में थे, तब वे भी सब कुछ छोड़कर उनसे जा मिले—

२७. प्रथम अध्याय में बताया जा चुका है कि इन बीतकों की संख्या १७ की है । हाँ, अन्तिम दो को छोड़कर अग्य इन पाँच बीतकों का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

२८. सं० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीयसं०), पृ० ४७०

२९. सं० ब्रह्मचारी भगलदास शर्मा, श्री छोटीवृत्त, पृ० ११८—१२१

३०. स्वामी लालदास कृत् बीतक. प्र० २३, पौ० ४

लालदास सग चले, खाली लेकर हाथ ।

निबाहें घाखर लो, चले राज के साथ ॥^{३१}

स्वामी लालदास के नाम में सम्प्रदाय में सात रचनाओं का उल्लेख होता है—१ बड़ीवृत्त (पद्य), २. छोटीवृत्त (गद्य), ३. मोहमदसाहब की बीतक अर्थात् माजजा, ४. बड़ा मसौदा (गद्य), ५. श्रीमद्भगवत की टीका—मनुवाद ६. ग्रन्थ छन्द ।^{३२} वे सिंधी, कच्छी, गुजराती, मारवाडी, हिन्दी, संस्कृत, अरबी-फारसी भाषाओं के ज्ञाता थे । छोटी वृत्त और बड़ी वृत्त में उन्होंने परमधाम का वर्णन किया है । माजजा और बड़ा मसौदा रचनाओं में कुरान के रहस्यों का भाषातों और हदीसों के आधार पर विवेचन किया है । लेकिन इन सब में से बीतक रचना ही भक्तिक आदर्शगीय रही है । स्वामी प्राणनाथ के “कु-जमस्वरूप” (तारतम्य सागर) की एक हस्तलिखित प्रति के साथ ही लालदास “बीतक” की एक हस्तलिखित प्रति भी प्रत्येक प्रणामी मन्दिर में प्रायः रहती है । “बीतक” को तीनों स्वरूपों (कृष्ण-मुहम्मद, गुरु देवचन्द और प्राणनाथ) की बीतक माना जाता है—

तीनों सख्योंकी बीतक, जनम में लेकर ।

सो कहूँ आगे संयन के, ए चरचा सब ऊपर ॥^{३३}

प्रथम दो प्रकरणों तक कृष्ण-मुहम्मद की बीतक है और बाद में १० वें प्रकरण तक गुरु देवचन्दजी का जीवन चित्रित किया गया है ॥ ११ वें प्रकरण से ५६ प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ के सपूर्ण जीवन और कार्य का वर्णन किया है । अन्तिम १२ प्रकरणों में पञ्चा में प्राणनाथ को आठों प्रहर की दिनचर्या रखी गई है । इस प्रकार बीतक में ७१ प्रकरण और ४३०० चौपाइयाँ हैं । स्वामी लालदास का उल्लेख करते हुए प्रो० माताबदल जायसवाल ने लिखा है, ^{३४} “बीतक” हिन्दवी में लिखा हुआ प्राणनाथ का जीवन-चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में लगभग ४०० चौपाइयाँ हैं । सन् १६८४ ई० (सं० १७४१) में लिखित होने के कारण यह हिन्दवी का प्रथम जीवन-चरित्र कहा जा सकता है ।

(ख) मधुरंग स्वामी

अग्रन्त कहा जा चुका है कि स्वामी प्राणनाथ के कुरान-पुराण के समन्वयवादी भावना के पक्षपाती में से स्वामी लालदास प्रमुख थे, उसी प्रकार विरोधी में

३१. वही, प्र० ३१, चौ० ११ ।

३२. मं० ब्रह्मचारी मंगलदास शर्मा, श्री छोटी वृत्त, पृ० १२२

३३. स्वामी लालदास कृत बीतक, प्र० २, चौ० २६

३४. स० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य, (द्वितीय खण्ड), पृ० ५६१

नवरग स्वामी का प्रमुख रूप में नाम लिया जाता है। लेकिन स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनका पूरा प्रेम और आदरभाव रहा।

डा० श्याममुन्दर शुक्ल ने नवरग स्वामी के सदर्भ में "स्वामी प्राणनाथ के शिष्य" और रचना के अन्तर्गत "लीला प्रकाश" का मिश्र उल्लेख किया है।^{३५} लेकिन उनके जीवन सम्बन्धी परिचय मिश्र साम्प्रदायिक ग्रन्थों में ही मिलता है। मुकुन्द स्वामी "नवरग" का जन्म ज्येष्ठ कृष्णा नवमी बुधवार स० १७०५ में मूरत (गुजरात) में हुआ था। उनके पिता राघवजी एक धनी व्यापारी थे। उनकी माता का नाम कुँवरवाई था। प्राणनाथ की मूरतयात्रा के समय वे उनके उपदेश में मुग्ध हो गये थे और २५ वर्ष की आयु में प्राणनाथ का शिष्यत्व उन्होंने ग्रहण लिया था। २२ वर्ष तक वे प्राणनाथ के साथ ही रहे और गुह्येवा करते रहे। प्राणनाथ के देह विलय के बाद वे उदयपुर चले गये थे। उदयपुर का राजा इनका शिष्य हो गया था।^{३७} इतना निश्चित है कि राजस्थान में प्रणामी सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार का श्रेय उन्हीं को मिलता है। उनकी मृत्यु माघ कृष्ण दशमी स० १७७५ में उदयपुर में हुई थी, जहाँ आज भी उनकी ममाधि बनायी जाती है।

इनकी रचनाओं के सदर्भ में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रणामी साहित्य की निधि में इनका बहुत ही योगदान रहा है। माहगड वाले राजा श्रीवन्तवन्सीरूदेव ने इनकी १६ हजार चौगाइयाँ का एक सग्रह करवाया था।^{३८} मोहनमुकुन्द सत ने इनके विंशालग्रन्थ "नवरग सागर" का उल्लेख किया है। उक्त ग्रन्थ में २६००० चौगाइयाँ हैं। उनके निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—१ वृत्त, २ कीर्तनवृत्त, ३ कीर्तन जन्मात्मक, ४ केदार (गुजराती), ५ योगारम्भ, ६ कीर्तन, ७ रोगननामा, ८ हिडोना, ९ ताविकमत, १० अष्टपदी, ११. गुरुशिष्य मवाद, १२. छादोम्भपनिपद, १३. गीतारहस्य, १४. काजीकी जकडी, १५ जकडी, १६ रेवता, १७. रामच मूल, १८. स्फुट पद, १९. चिद् विलास, २० पट्याम्त्र २१. मुन्दरसागर, और २२ लीलाप्रकाश।^{३९} रणछोडदास धीरजी ने नवरग स्वामी की रचनाओं की नामावली इस प्रकार दी

३५. डा० श्याम मुन्दर शुक्ल, हिन्दी वाक्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० २९

३६. स० ब्रह्मचारी मोहनमुकुन्द मन्त, श्री नवरगवृत्त कीर्तक, पृ० ६

३७. इतिहास से कोई प्रमाण नहीं मिलता।

३८. श्री प्राणनाथ मंदिर, जागृति-अंक, नव-दिन० १९५७, पृ० ५

३९. स० ब्रह्मचारी मोहन मुकुन्द मन्त, श्री नवरगवृत्त कीर्तक, पृ० ८

है—^{४०} १. रास, २. रससागर, ३. लीलाप्रकाश, ४. चिद्विलास, ५. वीतक, ६. योगारंभ, ७. तांत्रिकमत ८. अष्टपदी, ९. गुरुशिष्य सवाद, १०. कीर्तन, ११. छादोग्योपनिषद्, १२. पटशास्त्र, १३. भगवन्गीता, १४. खोज के कीर्तन, १५. कीर्तन वसंत, १६. रासननामा, १७. जकड़ी, १८. हिंडोला, १९. किरतन जन्म समय के, २०. श्रीकुरानीजी के जन्म समय के, २१. घाम की वृत्त, २२. रामतमूल सनमन्ध की, २३. रेवता, २४. पंद्रह झांकड़ी, २५. तारतमकी प्रणालिका, २६. गुजराती केदारो, २७. कबीर खोज, २८. जकड़ी डूमरी, और २९. बड़ा रोसन नामा । श्रीकृष्णप्रियाचार्य महाराज ने इनकी २६६५७ चौराइयों का निम्नलिखित रचनाओं में विभक्त होना बनाया है—^{४१} १. रास (प्र० ५५, चौ० १२६३), २. रससागर (प्र० १४, चौ० १५७८), ३. लीलाप्रकाश (प्र० ३०, चौ० १२९०), ४. चिद्विलास छोटा (चौ० ५००), ५. चिद्विलास बड़ा (प्र० १४, चौ० ६०६), ६. महाकारण की विनती (प्र० ४१, चौ० १३०१), ७. मुंदरसागर (प्र० ४०, चौ० २१८७), ८. वीतक (प्र० २७, चौ० ११७१), ९. कृष्णमिदसागर (प्र० ३६, चौ० १९०६), १०. पंद्रह झांकड़ी प्रकरण (प्र० १, चौ० १०६), ११. तारतम्य की प्रणालिका (प्र० १, चौ० १५५), १२. भागवत को टिप्पण, १३. तारतम्य (गद्य), १४. तत्रसार—(तांत्रिकमत) (प्र० ११, चौ० ५६६), १५. गुरुशिष्यसवाद (प्र० ४, चौ० ४३४), १६. पटशास्त्र (प्र० ५, चौ० २०६), १७. गीतासार (प्र० १८, चौ० ४२१), १८. वृहदारण्यसार (प्र० १०, चौ० २४७), १९. छादोग्योपनिषत्सार (प्र० २०, चौ० ११५०), २०. योगारंभ (प्र० १५, चौ० ६७७), २१. सिद्धान्तमुक्तावली (प्र० १६, चौ० ५५२), २२. प्रेममजरी (प्र० ७, चौ० ५७१), २३. खोज के कीर्तन (प्र० ४७, चौ० ५३७), २४. रोशननामा (प्र० ३३, चौ० ८३७), २५. जकड़ी (प्र० १३, चौ० १०१), २६. का० म० जकड़ी, २७. धवल-प्रागमवाणी के (प्र० ५, चौ० २१६), २८. चाद्रायण ग्रंथ (प्र० १, चौ० २२८), २९. कीर्तन (प्र० ३२, चौ० १०२१), ३०. अष्टपदी (प्र० १७२, चौ० १३४८), ३१. गुजराती केदारो (प्र० ५७, चौ० १०६०), ३२. श्रीकृष्णजन्मकीर्तन (प्र० ९, चौ० १००), ३३. श्रीराधाजन्मकीर्तन (प्र० १२, चौ० ११२), ३४. वसंत, घमार तथा दोल के कीर्तन (प्र० २३, चौ० ३०६), ३५. श्रीघाम की वृत्त—गद्य (प्र० १, चौ० ५००), ३६. श्रीघामकी वृत्त-पद्य (प्र० १०, चौ० ७०५), ३७. रामतमूलकी (प्र० ३६, चौ० ८७७), पावस के हिंदोला (प्र० ३८.

४०. प्र० रणछोडदाम वीरजी, गुरुशिष्य संवाद, पृ० ६४

४१. स० श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज, श्री कृष्णवतीकृत पञ्चीसपक्ष, (भावरण पृष्ठ ४)

२६. चौ० २४७), ३६ प्रकीर्ण पद्य-वीतंत (प्र० ३४, चौ० १०००), ४० प्रनावनी-मस्कृत में (चौ० ५००), ४१. प्रनावनी-हिन्दी में (चौ० ५००), ४२. धीनवरंग बीनक (प्र० १४, चौ० ५६६) ।

डा० रामकुमार गुप्त ने इनकी रचनाओं के मदर्भ में बहा है, इनके (नवरंग स्वामी के) निम्ने दृष्ट करीब १६७ ग्रन्थ बताये जाते हैं । इनका मत्र में प्रसिद्ध एव विज्ञानग्रन्थ है—नवरंगमागर जिस में ३६००० चौगाद्यां हैं । अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार हैं—१ मिहिरात्र चरित्र, १ मुन्दर सागर, ३ पट्टशास्त्र, ४ लीलाप्रकाश, ५ गीतारहस्य, ६ गुरुशिष्य सवाद, ७ फुटकन पद, १४^३ लेकिन इनके बताये गये "मिहिरात्र चरित्र" का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता । वस्तुतः "श्रीमहेहरात्र चरित्र" वकनी हंसराज द्वारा लिखित है, नवरंग स्वामी द्वारा नहीं । डा० गुप्त ने अपने मत का कोई प्रमाण नहीं दिया ।

सम्प्रदाय में इनके तीन ग्रन्थों को ही धादरपूरों स्थान प्राप्त है—१ वीतक, २ रमनागर, ३ मुन्दर सागर । साम्प्रदायिक विद्वानों की समीक्षा करनी हुई रचना 'गुरुशिष्यसवाद' भी प्रसिद्ध है ।

उनकी बीनक कब और कहां पर लिखी गयी है, इस बात का कोई सबेन नहीं मिलता । इस बीनक में श्रीकृष्ण, गुरु देवचन्द्रजी और प्राणनायजी का जीवन चित्रित किया गया है । उनकी "गुरु शिष्य सवाद" रचना में नवरंगजी के प्रश्न और स्वामी प्राणनाय के उत्तरों का समावेश हुआ है । उस प्रश्नोत्तर में धर, प्रसर और प्रसरतीत पूर्णब्रह्म तीनों के स्वरूप स्थान, धाम लीला आदि का निरूपण किया गया है । अन्वड भूमिका में महाराम जीना वर्णन करने के बाद रामममाप्ति इस प्रकार हुई—

"नवल किशोर नागर, नवल किशोरी सखि सग ।
विहरे राम बिलाम निज, भजनानंद रस रग ॥
ब्रह्म रात्रि पूर्ण भई, भया प्रातः प्रकाश ।
यह देख श्रीकृष्ण प्रिया, निवृत्त भई कर राम ॥
राम लीला पूर्ण भई, भई आजा निज यह ।
मुन सपियन के चिन्मे, उपज्यो दुख सदेह ॥
अनुमोदित श्रीकृष्ण कर, चली आजा चिन् लेय ।
अनदच्छित्त निजप्रिया तबे, गई अपने स्वगेह ॥^{४३}

४२ डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्य को गुजरान के सतकवियों की देन,
पृ० १२६

४३. प्र० रणझोड़ाम वीरजी, नवरंगकृत "गुरुशिष्य सवाद", पृ० ५०

“रससागर-” में उनकी माधुर्योपासना का स्वरूप ही भ्रमकता है। कृष्ण-वियोग से गोपिकाओं को दुःख हुआ है और यह गोपिका अपने प्रियतम कृष्ण से विनती करती हैं—

“कब हम नैन मिलावसी, चरण तली मिद्ध सार ।
दृष्ट भीतल मुख उपजे, मेरे आतमके आधार ॥
कब हम नखमणि निरखेंगे, भूपण भल हलकार ।
चरण तले कब बसेंगे, मेरे आतम के आधार ॥^{४४}
फिर भी, विरह उनको पसन्द है, क्योंकि उस विरह के
कारण ही पिंडब्रह्मांड में धो जाने का सौभाग्य मिला है ।^{४५}

(ग) ब्रजभूषण

बीतकी में कई बार, प्रशस्ति की अतिशयोक्ति का डर रहता है। शायद इसी दृष्टि से प्रणामी सम्प्रदाय में ब्रजभूषणकृत बीतक “वृत्तान्तमुक्तावली” का एक निराला स्थान है। महाराजा छत्रसाल ने बीतक की रचना नहीं की, लेकिन उनके शिष्य ब्रजभूषण ने बीतक की रचना की है। ब्रजभूषण को छत्रसाल के शिष्य के रूप में निःसंकोच भाव से स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि ‘वृत्तान्तमुक्तावली’ में एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं—

एहि विधि खोज पर पथि माहि,
पत देववद्र सतगुरुको गायो ।
नाद पुत्र तेहि छत्रसाल गृप,
तेहि शिष्य ब्रजभूषण कहु पायो ॥^{४६}

डा० भगवानदास ने छत्रसाल के आश्रित दरबारी कवि के अन्नगंत ब्रजभूषण का उल्लेख किया है।^{४७} मिश्रबंधु ने ब्रजभूषण गोस्वामी का उल्लेख करते हुए, उनको राधावल्लभाचार्य बताया है और रचनाकाल १८०० अन्दाजी दिया है। वही पर उन्होंने ब्रजराज बुन्देलखंड का भी उल्लेख किया है और इनका जन्मकाल १७७५ दिया है।^{४८} लेकिन जीवन संबंधी कोई विवरण नहीं दिया गया। पं० कृष्णदत्त

४४. श्री प्रणामी धर्मपत्रिका, रससागर अंक, अगस्त-सित० ६४, पृ० २

४५. वही, पृ० ६६

४६. ब्रजभूषण, वृत्तान्तमुक्तावली, प्र० ६, चौ० १८

४७. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० ११७

४८. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, भा० २, पृ० ६६५

गर्भा कहते हैं, श्रीब्रजभूपणजी के लौकिक सवध के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि, अभी तक इनका कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं मिला, जिसमें इनके ग्राम ठाम जन्मादि का पता लगे। हाँ, इनकी रचना पर से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राप बुन्देलखंड प्रांत के निवासी थे।..... प्रापका रचनाकाल लगभग वि० सं० १७५५ के माना जा सकता है।^{४६} यशवनलाल मी० दत्तल^{४७} के अनुसार, वे प० बट्टीदासजी के पुत्र थे। स्वामी प्राणनाथ जब पन्ना आये तब मुन्दर, बल्लभ और बट्टीदास तीन पंडित थे और वे तीनों शास्त्रार्थ में पराजित होने पर स्वामी प्राणनाथ के शिष्य हो गये। उन दिनों ब्रजभूपण काशी में विद्याभ्यास कर रहे थे। उन्होंने पिता की पराजय के बारे में जब सुना तब बदला लेने के लिए पन्ना आ गये। प्रारम्भ में छत्रसाल में ही शास्त्रार्थ हुआ और पराजित हो जाने पर छत्रसाल का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। उनका जन्म पन्ना में ही हुआ था, इसके मदर्म में एक उक्ति है—

भये पन्ना में कई भूपण, भूपण में भी कई भूपण।

ऐसे भये थे कुल भूपण, जो हो गये हैं ब्रजभूपण ॥

फिर भी इतना स्पष्ट है कि भूपण और ब्रजभूपण दो अलग-अलग कवि थे। साम्प्रदायिक मान्यता गलत है कि ब्रजभूपण की पालकी छत्रमाल ने अपने कथों पर उठायी थी। यह घटना भूपण के माघ घटित अवश्य हुई थी। ब्रजभूपण की तीन रचनाएँ बतायी जाती हैं—१. वृत्तान्त मुक्तावली, २. परातर दीपक (गद्य), और ३. श्री प्राणनाथजी का जीवनचरित्र (संस्कृत में)।^{४९} 'वृत्तान्तमुक्तावली' के प्रारम्भिक भाग में, अर्थात् ३५ प्रकरणों तक गुरु देवचन्द्रजी का वर्णन है, ३६ वें प्रकरण से ६५ प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ का जीवन चरित्र, और ६० प्रकरण तक पन्ना, छत्रसाल एवम् सांप्रदायिक तत्त्वों की चर्चा की गई है। परिशिष्ट के ११ प्रकरण हैं। इस प्रकार "वृत्तान्तमुक्तावली" के प्र० ६० और ४६७५ चौपाइयाँ हैं। परिशिष्ट भाग में दो गई अष्टप्रहर की बीतक की ६७० चौपाइयाँ जोड़ने में उक्त ग्रन्थ ५६४५ चौपाइयों का बनता है। यह बीतक भी तीनों स्वरूप की है।

ब्रजभूपण के मदर्म में डा० श्यामनारायण पाडेय ने कहा है, श्री प्रणामी संप्रदाय में भूपणदासजी का नाम अत्यंत आदर एवं श्रद्धा के साथ लिया जाता है। भूपणदासजी बहुत उच्चकोटि के विद्वान माने गये हैं। ब्रजभाषा में इनकी योडी-मी

४६. ब्रजभूपण, वृत्तान्तमुक्तावली (भूमिका), पृ० १२

४७. श्री प्राणनाथ सदेश (पत्रिका), प्रणामी साहित्य अंक, पृ० ४६

४९. श्री प्राणनाथ सदेश (पत्रिका), प्रणामी साहित्य अंक, पृ० ५१

रचनाएँ सिद्धान्त संबंधी प्राप्त होती हैं।^{५२} प्रणामी संप्रदाय की रसोपासना का स्वरूप श्रीर देवचन्द्रजी का नामोल्लेख उनके निम्नलिखित पद में मिलता है—

अगड नित्य वृन्दावन भाख्यो,
 सो हरिदास चित मे राख्यो ।
 ताकी चरचा करें प्रेम सो
 सेवे नित आचार नम सो ।
 निज शिक्षा गुरु और बताई,
 सो देवचन्द्र चित्त सों लाई ।
 अपनी सगी भाव करि लीजं,
 पुरुषभाव अपनी तजि दीजं ।
 श्रीकृष्णचन्द्र जानी गुरु आपन,
 श्यामा निज उपासना थापन ।
 सखी बिना इत पुरुष न पहुँचं,
 कोटि कष्ट करि जो मन शोचं ।
 ताते सखी भाव करि लीजं,
 पुनि यह नाम मत्र रस पीजं ।^{५३}

(घ) बरुणी हंसराज

प्रणामी संप्रदाय की बीतको में भावुकता और कवित्व के दर्शन बरुणी हंसराज की बीतक "श्री मिहाराज चरित्र" में ही होने हैं। मिथबधु के अनुसार, बरुणी हंसराज श्रीवास्तव कायस्थ सं० १७८६ में पन्ना में हुए।^{५४} लेकिन उन्होंने हंसराज कायस्थ का अन्वय उल्लेख करते हुए कहा है कि बरुणी हंसराज और ये एक ही हो^{५५} यह मानना अनुचित होगा। प्रा० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका जन्म सं० १७६६ में पन्ना में हुआ था। इनके पूर्वज बरुणी हरिकिशुनजी पन्ना राज्य के भन्त्री थे। हंसराजजी पन्ना नरेश श्री अमानसिंहजी के दरबारियों में थे। ये ब्रज की व्यासगद्दी के "विजय सखी" नामक महात्मा के शिष्य थे, जिन्होंने इनका सांप्रदायिक नाम "प्रेमसखी" रखा था। "सखीभाव" के उपासक होने के कारण इन्होंने अत्यंत प्रेम-माधुर्य-पूर्ण रचनाएँ की हैं।^{५६} डा० भगवानदास गुप्त ने बरुणी

५२. डा० श्यामनारायण पाडेय, हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना, पृ० ३६६

५३. "श्रीसर्वेश्वर" वृन्दावन अंक, पृ० १००

५४. मिथबधु, मिथबधुविनोद, भाग २, पृ० ६११

५५. वही, पृ० ६२२

५६. प्रा० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२५

हमराज को छत्रमाल के समय के कवियों में बताने हुए कहा है, उनकी जन्मभूमि पत्ता ही थी। छत्रमाल के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में हमराज में जो कविप्रतिभा प्रस्फुटित हुई, वह छत्रमाल की मृत्यु के परचात्र हिरदेसाह, मन्नामिह और अमानमिह के काल में उत्तरोत्तर विकसित हुई। बन्गी हमराज इन सभी के कृपापात्र थे।^{५०} डा० मरोजिनी कुलथेष्ट ने बन्गी हमराज को हर्गिदामी मम्प्रदाय के कवियों की नामावली में रखा है।^{५१} बन्नुनः महाराज छत्रमाल के पौत्र मन्नामिह ने बन्गी हमराज के पूर्वज औरछानिवामी मायवदाम को दीवानपद दिया था और तब में उस परिवार में "बन्गी" नाम लुप्त गया था। मायवदाम के दो पुत्र मुरलीधर और केशवराय में से दूसरे अर्थात् केशवराय हमराज के पिता थे। पत्नी उनका जन्म म्यान था। उनका जन्म प्रायः स० १७४० लगभग माना जाता है।^{५२}

मिश्रबधु ने इनही रचनाओं में मनेहमागर, और प्रथम वैवाहिक रिपोर्टों के आधार पर श्रीकृष्णदूकी पानी, श्री जुगुलस्वरूप विरहपत्रिका, फाग नरगिनी तथा चुरिहारिननीना नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है।^{५३} आ० रामचन्द्र शुक्ल ने मनेह मागर, विरहविनाम, रायचन्द्रिका और बाग्दामा इन चार ग्रन्थों का उल्लेख किया है।^{५४} डा० मरोजिनी कुलथेष्ट ने मनेह मागर, विरहविनाम और बाग्दामा को ही इनही रचनाओं के अन्तर्गत रखा है।^{५५} प० पन्नालाल मिश्र के अनुसार, हमराजजी की छः रचनाएँ हैं—^{५६} १ मिहराज चरित्र, २ मनेह मागर, ३ श्रीकृष्णदूकी पानी, ४ श्री जुगुलस्वरूप विरह पत्रिका, ५ फागनरगिनी, और ६ चुरिहारिन नीना। गौरीगकर द्विवेदी के अनुसार,^{५७} मनेह मागर, श्रीकृष्णदूकी पानी, श्री जुगुलस्वरूप विरह पत्रिका, फागनरगिनी, चुरिहारिननीना, मेहराज चरित्र, विरह विनाम, रायचन्द्रिका और बाग्दामा नामक नौ ग्रंथ हमराजजी ने लिखे थे।

५०. डा० भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रमाल बुन्देला, पृ० ११८
५१. डा० मरोजिनी कुलथेष्ट, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ३६२
५२. स० शास्त्री देवकृष्ण शर्मा, बन्गी हमराजकृत 'श्री मिहराज चरित्र' भूमिका, पृ० २
५३. मिश्रबन्धु, मिश्रबधु विनोद, भाग २, १२
५४. आ० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२५
५५. डा० मरोजिनी कुलथेष्ट, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ३६२
५६. स० शास्त्री देवकृष्ण शर्मा, बन्गी हमराजकृत "श्री मिहराज चरित्र" भूमिका, पृ० ४
५७. गौरीगकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव, पृ० ३६२-६४

इन मंत्र में मेहराजचरित्र ही अधिक प्रसिद्ध है। यह स्वामी प्राणनाथ का पद्यबद्ध जीवन चरित्र है और प्रणामी सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थों में अपना स्थान रखता है।

“सनेहसागर” के तीनों तरफों में कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया गया है। “सनेहसागर” का एक पद्य दृष्टव्य है—

इत तें चली राधिका गोरी सौपनि अपनी नैया ।

उन तें अति आतुर आनन्द सो आए कुवर कन्हैया ॥

कमि भौहे, हसि कुंवरि राधिका कान्ह कुंवरसों बोली ।

अंग अंग उमगि भरे आनन्द सो, दरकति जिनछिन चोली ॥ ६५

हंसराजजी ने “मेहराज चरित्र” लिखने में स्वामी लालदास की वीतक का ही सहारा लिया हो ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी कहीं-कहीं पर अन्नर अवश्य दीखता है। अन्य वीतकों की तरह इसमें भी गुरु देवचन्द्रजी और स्वामी प्राणनाथ के जीवन को चित्रित किया गया है। लेकिन जहाँ कविव्यक्ति दिखाने का मौका मिला है, वहाँ पर उन्होंने अपनी शक्ति को आजमाया भी है। अन्य वीतकों में स्वामी प्राणनाथ दिल्ली से अन्नरशहर जाते हैं उस वक्त का कोई वर्णन नहीं है और जो वर्णन है वह नीरस है। लेकिन उस समय के आपाठ महीने ने हंसराज को आकर्षित किया ही—

मास आपाठ लायो तिहिबारा,
गरजत गगन बरसत जलधारा ।
वर्षा रितु विरहिन केरी,
बरनि सकत न दशा मति मेरी ॥

जित तित पपीहा वचन उचारे,
पीउ पीउ कहि बाल पुकारे ।
दमकति द्युति उत दामिन केरी,
विरहिन के इत दशन उजेरी ॥

बोलत मोर चहुँदिम भारी,
आह-आह विरहिन पुकारी ।
दसहुँ दिमते पवन भकोरें,
विरहिन अंग मदन मरारे ॥

बृन्दन वरम धान सम छाले ।
 विरहिन मदन पंचसर घाले ।
 साप सुरर कहि रैन अन्धेरी,
 मूनी सेज विरहिन केरी ॥
 इतते उत अति पवन भक्कोरें,
 विरहिन भून्ति विरह हिडोरे ।
 अचरजि करि मानो मति कोई,
 अ वियनु जलसो सेती होई ॥^{६६}

इस बीतक में प्रथम प्रकरण में चार युग के राजाओं का वर्णन, दूसरे प्रकरण से नौवें तक गुरु देवचन्द्र का जीवन वृत्त और दसवें प्रकरण से छप्पनवें प्रकरण तक स्वामी प्राणनाथ के जीवन, भ्रमण आदि का वर्णन किया गया है। अन्तिम छः प्रकरणों में ब्रजवृन्दावन, रासवर्णन, ब्रह्ममृष्टि प्रागमन आदि का वर्णन किया गया है। यह रचना ६१ प्रकरण और ५२३३ चौपाइयों में पूर्ण हुई है।

(ड) लल्लुजी महाराज—लालसखी

चरोतर सर्वसंग्रह के अनुसार,^{६७} लल्लुजी महाराज अलिद्रा के श्रीदिच्य टोलकिया जाति के थे। उनका जन्म स० १८६० में लगभग और स० १९५४ में इनकी मृत्यु हुई थी। उन्होंने सूरत में श्री लालजी महाराज से प्रणामी सम्प्रदाय का अभ्यास किया था। तत्पश्चात् गुजरात में प्रणामी सम्प्रदाय का उन्होंने प्रचार किया। उन्होंने आत्मबोध वर्तमान दीपक, सुरती विवहा, कटकभेद आदि ग्रंथों की रचना की। उन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय के कुलजमस्वरूप का हिन्दी भाषा में गुजराती पद्य में अनुवाद किया। प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायियों में वे "लालसखी" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विशेषतः बीतकें हिन्दी में ही लिखी गईं, लेकिन लल्लुजी भट्ट ने गुरु देवचन्द्रजी और स्वामी प्राणनाथ के जीवन का गुजराती में लिखी हुई बीतक "वर्तमान दीपक" में अंकित किया है। उक्त ग्रन्थ के मगनाचरण पर से अनुमान किया जाता है कि सूरत के प्रणामी मंदिर के तत्कालीन महंत लालाजी के वे शिष्य थे। उन्होंने साम्प्रदायिक शिक्षा नौतनपुरी के तत्कालीन आचार्य श्री जीवरामदासजी महाराज से^{६८} ली थी। अतः उनका जन्मकाल प्रायः स० १८६० के लगभग था।

६६. वरुशी हसरारकृन् श्रीमिहराजचरित्र, प्र० १६, चौ० ३५-४७

६७. सं० पुरुषोत्तम शाह—चन्द्रकान्त शाह, चरोतर सर्वसंग्रह, भा० २, पृ० ६७४

६८. लल्लुजी भट्ट, वर्तमान दीपक, भूमिका, पृ० ३

यह वीतक उन्होंने सं० १९३६ में शुरु की थी और सं० १९४४ वैशाख, शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन लिखना पूर्ण किया था। उनके ग्रन्थ ग्रन्थों में “जीवचेतवणी”, “ईश्वर बोधसागर”, “आत्मबोध” और “श्रुति विवाह” हैं। “जीवचेतवणी” में कृष्ण-नारद के संवाद स्वरूप सद्गुरुमेवन की महिमा का वर्णन किया गया है। सद्गुरु ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने हुए, उसकी ब्राह्म दृष्टि में वृणा करने के कारण नारदजी को ८४ लक्ष योनि में जन्म लेने का प्रायश्चित्त भुगनना पडा और सद्गुरु की कृपा से ८४ योनि के चित्र की परिक्रमा मात्र से उस प्रायश्चित्त का अन्त होना है। इसके अन्तर्गत जीव का गर्भवाम, गर्भकृत ईश्वरस्तुति, जीव के जन्ममरण का कारण, मृत्यु के समय परम का भय, ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्ण, मौभाग्यवती और विधवा स्त्री और साधु-सन्तों के लक्षणों का विस्तार में वर्णन किया है। अन्तिम प्रकरण में परमधाम का मक्षिप्त में वर्णन दिया गया है और इस तरह प्रत्येक जीव को चैतावनी देकर परमधाम का मार्ग दिखाया है। “ईश्वरबोध सागर” में गुरु और सद्गुरु के विभिन्न लक्षणा बताते हुए, ब्रह्मनिष्ठ-ब्रह्मसद्गुरु की शरण में जाने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। इस बात को समझाने के लिए उन्होंने शिवपार्वती संवाद की योजना की है। ब्रह्मप्रियाओं के लिए इंड रचना से विराट तक समग्र ब्रह्मांड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। लवण राजा के दृष्टान्त में ब्रह्मप्रियाओं को तृतीय ब्रह्मांड में उतरने की शक्ता का निवारण किया है। महर् इंड, सात शून्य, अष्टावरण, मुर्धंगलाशक्ति, आदिनारायण, गोलक, अक्षरलोक तथा परमधाम का वर्णन करके ईश्वर सबधी सद्बोध दिया है। “आत्मबोध” के प्रारंभ में भट्टाचार्यजी और उनकी पत्नी निर्भया के स्वामी प्राणनाथ से हुए संवादविवाद को रखा गया है (निर्भया स्वामी प्राणनाथ के प्रति श्रद्धा रखनी थी और प्रणामी सम्प्रदाय में विश्वास रखनी थी। लेकिन उनके पति भट्टाचार्य को कोई विश्वास पैदा नहीं हुआ था। अखिर में पत्नी ने पति की स्वामी प्राणनाथ में भुलाकात करवायी और तब से भट्टाचार्य प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी बन गए थे।), इसमें सच्चिदानंद धारमस्वरूप है इस बात का बोध कराया गया है। प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है। श्री लल्लुजी भट्ट ने इस ग्रन्थ की रचना सं० १९१३ में की थी। उन्होंने “श्रुति विवाह” रचना में बताया है कि श्रुति (सुरती) परमधाम में जगत के दुख मुख का अनुभव करने के लिए यहाँ उतर आई और परमधाम, अपने स्वामी परब्रह्म-परमात्मा को भूल गई। सद्गुरु मिले और उपदेश दिया। सद्गुरु ने जगत की नश्वरता दिखायी, कृष्णभक्ति का मार्ग दिखाया और अन्ततः सुरता जागृत हुई। उसको अपने घर-परमधाम-की याद आयी और सुरता अपने मूलस्वरूप में पहुँच गयी। यह तत्व इसके अन्तर्गत विस्तार से समझाया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त

साम्प्रदायिक मिदान्तों में पूर्ण और भक्तिपूर्ण भजन और गरवे भी उन्होंने लिखे हैं। उन्होंने विशेषरूप में गुजराती में ही सभी रचनाएँ लिखी हैं।

(च) महाराजा छत्रमाल

महाराजा छत्रमाल स्वामी प्राणनाथ के प्रमुख गिण्टों में से एक थे यह तथ्य अग्र्यत्र उद्घाटित हो चुका है। उन्हीं की मदद से स्वामी प्राणनाथ के बाद प्रणामी सम्प्रदाय का प्रसार एवम् प्रचार दूर-दूर के प्रदेशों में हो सका। छत्रमाल स्वयं कवि थे और इनके लिये कई राजनीति में भरे पत्र भी हैं, जो कविता में लिखे गए हैं।^{६६} मिश्रबंधु ने इनका "पंचम" के नाम से उल्लेख करते हुए लिखा है, घाणका रचनाकाल स० १७३० में माना जा सकता है। इन महाराज का स्वर्णवाम स० १७८८ में हुआ।^{७०} डा० हीरालाल लिखते हैं, छत्रमाल वीर ही नहीं बल्कि कवितारमिक और स्वयं कवि भी थे। बगल-विपत्ति में फगने पर भी उमने महायना की प्रायण कविता में ही की और जब उसके पराने वालों ने ही एक बार उमकी हूँमी की और लिख भेजा—

“घोटछे के राजा और दतिया के गई।

अपने मुंह छत्रमाल बने बनावाई।।

तब उमने इसका मुह तोड़ उत्तर कविता में ही लिख भेजा—

मुद्रामा मन हेरे तब रक हूँ ते राव बीन्हों,

बिदुर तन हेरे तब राज बियो चरे तें।

कुवरी तन हेरे तब मुन्दर मरूप दीन्हो,

द्रौपदी तन हेरे तब चीर बड़यो टेरे तें।

बहन छत्रमाल बह्लाद की प्रतिजा राग्यो,

हिरिनाकुम मारो नेक नजर न केरे तें।

ए रे गुरु जानी अभिमानी भए कहा होन,

नामी नर होत गहडगामी के हेरे तें।^{७१}

महाराज छत्रमाल में साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन अवश्य होने हैं। विशेषरूप-उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखित हैं। फिर भी उस पर अच्युती, कारमी और बुन्देलखंडी का प्रभाव अवश्य हुआ है। श्री वियोगी हरि ने कहा है,^{७२} “महाराज छत्रमाल एक ऊँचे” कवि थे। प्रेम और भक्ति इनकी रचनाओं में कूट कूट कर बरी

६६. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२८-२२९

७०. मिश्रबंधु, मिश्रबंधुविनोद भा० २, पृ० ४८६

७१. डा० हीरालाल, मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० १००-१०१

है। इनकी रचना में तन्मयता भी अछड़ी मात्रा में है। इनकी दृष्टि निस्सदेह कवि दृष्टि थी।..... काव्यकला की ओर यद्यपि इन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं है। ब्रजभाषा के साहित्य में महाराज छत्रसाल की रचनाएँ प्रेम और आदर की दृष्टि से देखी जाएँगी..... "महाराज छत्रसाल की रचनाओं में श्रीकृष्णकीर्तन, श्रीरामयशचन्द्रिका, हनुमद्विनय, अक्षर अनन्यजूके पत्र और तिनकी उत्तर, नीतिमञ्जरी और स्फुट कविताएँ तथा राजविनोद गीतो का सग्रह, छत्रविलास, नीति मञ्जरी महाराज छत्रसालहू की काव्य का भी उल्लेख है।^{७३} एक स्थान पर उनके "कृष्णचरित्र" नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख है।^{७४}

भक्ति के आवेश में अपनी तुलना कृष्ण से करते हुए वे कहते हैं—

"तुम घनश्याम हम जाचक मयूर मत्त,
तुम सुधि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं ॥

× × ×

तुम गिरिधारी हम कृष्णव्रतधारी तुम
दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं ॥"^{७५}

उन्होंने प्रभुनाम के प्रभाव का स्वीकार किया है—

"जप तप संयम यम नियम,
छंता निगम नित गाव ।
कोटिन अपराधी तरे,
केवल नाम-प्रभाव ॥"^{७६}

मधुर भाव की भक्ति में उनके कोमल भाव निम्नलिखित पद में व्यक्त होते हैं—

"बजाय गयो रे मेरे अंगना में मुरली ।
मैं तो ढाढी घाली अपने द्वार,
फुलनकी गेंद मारे नदलाल' ॥ १ ॥
मुरली की घाली घाली कौन बन जाउ,
मुरली में तान टारें लै लै मेरो नाम ॥२॥

७२. सं० श्री वियोगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० १५

७३. वही, पृ० ६

७४. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २२८

७५. सं० वियोगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली, पृ० ५-५

७६. वही, पृ० ५३

कित्त गई गौयें कित्त गए ग्वाल,
 कित्त गए मुरली बजावन हार ॥३॥
 निकम आईं गौयें निकस आए ग्वाल,
 निवस आए मुरली बजावन हार ॥४॥
 बन गईं गौयें गोकुल गए ग्वाल,
 कृष्ण गए अपने समुदार ॥५॥
 अटा अटारिन अदि गोड धाए,
 मुकुट की शोभा भोये धरनी न जाए ॥६॥
 छोटे छोटे चरण बडे बडे नैन,
 कुजगलिनमे मारि गयो सैन ॥७॥
 छत्रसाल के स्वामी रसके रसाल,
 पाए दर्शन हो गए निहाल ॥८॥^{७७}

उन्होंने कहा है, कृष्ण प्रेम, भजन कीर्तन और आनन्द-निजानन्द में रहना चाहिए—

"इशक सुराई प्रेमका प्याला ।
 अन्दर आतम छक्ति रहिये ॥
 तन सोये रूह निशादिन जागे ।
 धाम धनी के चरणो रहिये ॥
 अष्ट पहर दिन चौसठ घडियाँ ।
 निश दिन पीऊ पीऊ पीऊ कहिये ॥^{७८}

गुरु स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनके दिल में भक्तिभाव और आस्था थी—

तुम ही करे वेदके भेद भारे,
 तुम स्वाम गिरिहके प्राण प्यारे ।
 ते इलमको ले कुफरान मार्या,
 ते परनाम कहा जहान तारया ॥
 सरचा ते सजाना भलावतनी,
 छूटे भोमन खेद सुनी सो भनी ।

७७. प्रणामी धर्मपत्रिका (भजनांक) सं० २००१, आश्विन, पृ० ८८-८९

७८. प्रणामी धर्मपत्रिका (उपदेशांक). मृ० १९९६, आश्विन, पृ० ३५

तुम ही असराफील सोर करे,
तुम सोर के जोर पहाड़ टरे ॥^{७६}

कुल की प्रतिष्ठा छत्रसाल की दृष्टि में सर्वोपरि है और इसीलिए गृहस्थों को सीख देते हैं—

लाख घटें, कुल साख न छाड़िये,
वस्त्र फटे भ्रमु औरहूँ दै है ।
द्रव्य घटै घटना नहि कीजिए,
दै है न कोऊ पै लोक हमे है ॥
भूप छता जलरासि को पैरिबो,
कोन हूँ बेर किनारे लगे है ।
हिम्मत छोडे ते किम्मत जायगी,
जायगो काल कलक न जै है ॥^{७७}

(छ) पंचमसिंह

डा० श्यामसुंदर शुक्ल ने स्वामी प्राणनाथ के शिष्य के रूप में पंचमसिंह का नामोल्लेख किया है और उनकी रचनाओं में "सर्वेये" का निर्देश किया है।^{७१} लेकिन साम्प्रदायिक साहित्य में पंचमसिंह की रचनाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता। मिश्रबंधु ने पंचमसिंह का कविताकाल १७८२ देते हुए विवरण में बताया है कि महाराजा छत्रसाल पन्ना नरेश के वे भतीजे थे।^{७२} गौरीशंकर द्विवेदी और शिवसिंह सरोज के अनुसार छत्रसाल के भतीजे पंचमसिंह और पौत्र कुंवर मेदिनीमल्ल भी साधारण कविता कर लेते थे।^{७३} प्रथम त्रैवापिक रिपोर्ट के आधार पर उनकी रचनाओं के अन्तर्गत कवित्त का ही उल्लेख किया जा सकता है। डा० श्यामसुंदर शुक्ल का^{७४} कथन उचित मालूम होता है कि पंचमसिंह की बानियों का कुछ भी पता नहीं चलता।

७६. सं० गोपालदासजी महाराज, कवितावली, पृ० ३१

७७. सं० विद्योगी हरि, छत्रसाल ग्रन्थावली, पृ० ७६

७१. डा० श्यामसुंदर शुक्ल, हिन्दीकाव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३०

७२. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु दिनोद, भा० २, पृ० ६२०

७३. (अ) गौरीशंकर द्विवेदी, बुंदेल वैभव, पृ० ४०६

(आ) शिवसिंह सरोज, पृ० ४४५

७४. डा० श्यामसुंदर शुक्ल, हिन्दीकाव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३६

(य) भट्टाचार्यजी

कभी कभी पतन भी उत्थान के लिए होता है। यह कथन भट्टाचार्य को बिलकुल लागू होता है। काशीनिवासी भट्टाचार्य पन्नानिवासी श्री परमानन्द पंडित की निर्भया नामक पुत्री से विवाहित हुए थे। निर्भया द्वारा स्वामी प्राणनाथ से उनका परिचय हुआ। फिर भी प्राणनाथजी पर इतनी श्रद्धा नहीं थी। इस बीच एक शाम्प्रार्थ में उनकी पराजय हुई और विद्वता के अभिमान का पतन हुआ। उन्होंने स्वामी प्राणनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। वे अपनी २५-३० वर्ष की आयु में ही शिष्य हो गये थे इस बात में लगता है कि उनका जन्म स० १७२५ के लगभग में हुआ होगा।^{८४} उनके ग्रन्थों में "निगमार्थप्रदीप" और "विद्वद्मनी" हैं। लेकिन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त उनका अन्य साहित्य भी होना चाहिए वैसे एक अनुमान किया जाता है।^{८५} दोनों ही ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही लिखे हुए हैं, और उनकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी देखीं हैं। "निगमार्थप्रदीप" में उन्होंने प्रेमलक्षणा-भक्ति की पराशर्या का प्रतिपादन किया है और उपनिषदों के प्रमाण द्वारा गुरु देवचन्द्रजी तथा स्वामी प्राणनाथ का सद्गुरुरूपेण समर्थन किया है। ब्रह्मगृष्टियों परमहंसों की ब्रह्मता बताया है। बाद में वेदग्रन्थों से परमधाम की दिव्यता एवम् अलक्ष्यता दिखाकर वहाँ के स्वामीत्व की सिद्धि की गई है। तदनन्तर प्रसंगानुपान में ब्रजरासलीला का दिग्दर्शन कराते हुए परमहंसों की त्यागवृत्ति का लक्षण बताया है।

(स) मुकुन्दस्वामी

प्राणामी सम्प्रदाय में "स्वामी त्रिपुटी" के नाम से स्वामी लालदाम, नवरंग स्वामी और मुकुन्द स्वामी को ही सम्मिलित किया जाता है। डा० श्याममुदर शुक्ल ने^{८७} मुकुन्द स्वामी का नामोल्लेख किया है और उनकी रचनाओं में "सात्वियो" का निर्देश किया है। उनके जन्म समय के सम्बन्ध में सम्प्रदाय भी मौन है लेकिन उनके जीवन की चमत्कारिक घटना सम्प्रदाय में प्रचलित है। कहा जाता है^{८८} कि एक दिन जब उनको कार्यवशात अन्य गाँव जाने का प्रसंग उपस्थित हुआ। इसी अवसर पर एक दिव्य पुरुष ने उनका नाम लेकर आवाज दी। वे अनुपस्थित थे, पर आगन्तुक ने सूचना दी कि, 'मुकुन्द में कहता कि प्राणनाथ बुलाने आए थे और शीघ्र मिलने को

८४. सन्तदासजी, निगमार्थप्रदीप, (प्राक्कसूचक), पृ० २

८६. वही, पृ० २

८७. डा० श्याममुदर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति, पृ० ३४

८८. प्राणामी धर्मपत्रिका, "मुकुन्दवाणी अंक", जुलाई १९५८, पृ० ४-५

कह गए हैं। "घर लौटने पर जब मुकुन्द स्वामी को यह सूचना मिली तब बिना अन्नजल ग्रहण किये पन्ना की ओर जाने के लिए निकल पड़े। लेकिन पूर्व तरफ न जाते हुए, उत्तर दिशा की ओर वे चल दिये। उनकी परेशानी सहसा उपस्थित हुए एक साधु ने दूर की। साधु ने घाँसें मूँद लेने की आज्ञा दी और बैसा करने पर स्वामी मुकुन्ददास पन्ना के प्रणामी मंदिर में विराजित स्वामी प्राणनाथ के सन्मुख पहुँच गए। यह जनश्रुति कहां तक सही है यह कहना मुश्किल है। परन्तु अनुमान किया जाता है कि वे स्वामी प्राणनाथ के समकालीन थे।^{५६} उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सुना जाता है कि आपने जीवित समाधि ली थी। वह स्थान लखनऊ से १२ कोस की दूरी पर स्थित महिलाबाद के नाम में प्रसिद्ध है।^{६०} सम्प्रदाय के विद्वानों का मानना है कि उन्होंने कई रचनाएँ लिखी होंगी। लेकिन उनकी दो-तीन रचनाओं के सिवा अन्य रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती।^{६१} उन्होंने कई पद लिखे हैं और उन पदों में उनका भक्तिभाव झलकता है। वृन्दावन के प्रति उनका प्रेम निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है—

“आली ! हम न भये वृन्दावनके द्रुम ॥

हरमित विधि हरिहर ओमर, बहु कल्पित बहु कल्प रहीमन ।

× × ×

जह श्रीकृष्ण सखिन साधन बलिता, विहरत वृन्दावन ।

पहुप पत्रद्रुम डार लतन पर, उडि पदरज परत सकल बन ॥^{६२}

उन्होंने गुरुपद का महत्व भी बताया है—^{६३}

“बोरे मन ! सेव ले गुरु अपना ॥

बिन गुरु सेवे पार न पइहो, ज्ञान कथो चाहे कितना ॥ १ ॥

उनकी माधुर्य भावपूर्ण भक्ति उनसे यही कहलवाती है कि, ^{६४} “ब्रज की रीत प्रीत गनि न्यारी”। अन्ततः उनको यही कहना पड़ता है—

“तुम नन्दलाल ! सदाके कपटी ॥ टेक ॥

मैं जमुना जल भरन जात रही, गगरी हमरी घाट पं पटकी ।

मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, दधि मेरो खाय बाह मेरी पटकी ॥

५६. प्रणामी धर्म पत्रिका “मुकुन्द वाणी” अंक जुलाई १९५८ पृ० ४

६०. वही, पृ० ५

६१. प्रणामी धर्म पत्रिका, स० १९६३, ज्येष्ठ अंक, पृ० ३

६२. श्री निजानन्द भजनसागर, पृ० ५

६३. वही, पृ० ८

६४. वही, पृ० ३२

साभकी सगी पार उतर गई, नैया हमरी बीचहि अटकी ।
कहत "मुकुन्द" रूप लोभानी, हमरी सुरति मूरति बोब अटकी ॥"^{६५}

इसीलिए मन को आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा—

"प्रीतम ! प्रीत न करिये, प्रीत किये दु ख होय ।"^{६६}

फिर भी, मन में एक ही बात है—

"कब मिलिही मोहि प्रान प्यारे ।

सुनरी सखी मोहे नीद न आवे,

जब तें भये पिया न्यारे ॥"^{६७}

उनकी अन्य रचनाओं में अथज्ञानविलक,^{६८} अथ जागनी नीलावर्णन,^{६९} परमधाम वर्णन^{७०} सुन्दरमागर,^{७१} और बोधसागर^{७२} हैं ।

(द) जुगलदास

भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के गुरु स्वामी जुगलदास^{७३} का नाम प्रणामी समाज में बड़े आदर के साथ लिया जाता है । उनको "कमलावती" की वासना माना जाता है । जुगलदास की जन्मभूमि दनिया राज्य बताया जाती है । दतिया के प्रतिष्ठित और श्रीमन्त कायस्थ परिवार में उनका जन्म हुआ था । गाँव के लोग उनको "जिषा महाराज" कहकर पुकारते थे । प्रसाद की बात को लेकर उनके जीवन में कोई प्रसंग बना था और उसमें उनके दिल को बड़ी चोट लग गयी थी । उनके जन्मसंबन्ध के बारे में पता नहीं चलता । परन्तु शाहगढ़ महाराज वखतवती सिंहजी देव के दरबार में इनको उच्चासन मिलता था । इस पर से मिथ्य होना है कि १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आप विद्यमान थे । उनको सभाधि माडेर में मिलती है । इनके रचे हुए कई ग्रन्थ सुने जाते हैं, जिनमें परमधाम की बड़ी वृत्ति, मनमोहन रसानन्द

६५. श्री त्रिजानन्द भजनमागर, पृ० ३०

६६. प्रणामी धर्मपत्रिका, मुकुन्दवाणी अंक, जुलाई १९५८, पृ० ४७

६७. वही, पृ० ४८

६८. वही, पृ० ४९

६९. वही, पृ० ६६

१००. वही, पृ० ७५

१०१. प्रणामी धर्म पत्रिका, स० १९९३, ज्येष्ठ अंक पृ० ३

१०२. वही, पृ० ३

१०३. जुगलदासजीकृत, वैराठनिरूपण (प्राक्कथन, , पृ० १

मागर, छोटी और बड़ी पत्री तारतम की प्रणालिका, बँराट निरूपण, महाकारण इत्यादि हैं। "रसानन्दमागर" उनकी गद्य में लिखित रचना है। इस रचना में परमधाम के पदार्थों का वर्णन है और प्रणामी सम्प्रदाय का विश्लेषण है। तत्कालीन गद्य का उदाहरण दृष्टव्य है।^{१०४}—

"हे सुन्दरसाधजी ! ऐसे यहां भ्रानन्द सुधा सिंधु में फिसल के सुरत तुमारी बीच अंधकूप दुख अग्नि आफत तूफान जम जाचना के गिर पड़ी है। सो तुमको फेर बीच उस सुधामिध के पोहोचाडने जगाडने के कारन मासूक दुलहा तुमारे इस माया मे माफिक तुमारे देहघर घ्राए है"।

उन्होंने तत्कालीन समाज को, विशेषतः गृहस्थाश्रमी के लिए जो आचार विचार की बात कही है, दृष्टव्य है—“आचार रीति भाति या दिनचर्या निजधाम पहुँचने की, पूर्णाविद्या मिलने की, गृहस्थाश्रम मे फकीरी (त्यागवृत्ति, बँराग) करने की जिस पद को त्याग से महात्मा लोग पहुँचते हैं तिसपद को गृहस्थाश्रम द्वारा पहुँचने की और लोक परलोक सुधारने की तथा श्यामश्यामाजी तथा सद्गुरु सुन्दरसाय के वश करने की लिखी है।”^{१०५}

छत्रसाल के वंशजो ने प्रणामी सम्प्रदाय के भक्तों को जब दुःख देना शुरू किया, तब जुगलदासजी से रहा न गया और उन्होंने राजा हरवंशराय को एक पत्र लिखा था। यह पत्र भी उनके गद्य का नमूना है।^{१०६}

उनके पदों में भक्तिभावपूर्ण माधुर्य प्रतीत होता है—

(१) “पीजै पीजै इन पीऊको जुगल रस पीजे रे।”^{१०७}

(२) “जा छिन प्रीतम बेनु बजायो।

रहस मण्डल तैं असत मण्डल लो, एक अमृत स्वर छायाँ ॥”^{१०८}

और, प्रीतम का मिलन होते ही वे कह उठेंगे—

“भे तो अब चरन कमल नही छोडो रे।”^{१०९}

१०४. स० मोहनमुकुन्द सत और कृष्णदासजी सत,

श्री युगलदासजी कृत “भनमोहनसागर” पृ० ११५

१०५. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशाक, आश्विन १९९९, पृ० ४७

१०६. प्रणामी धर्मपत्रिका, भाग स० १९९१, पृ० ७-९

१०७. श्री निजानन्द भजनसागर, पृ० ७४

१०८. वही, पृ० ७३

१०९. वही, पृ० ७६

लेकिन मितन मे पूर्व तीव्र प्रेम उनन यही कहनवाना है—^{११०}

“दुनहिन भई है दिवानीरे, बिरह बडरानी ॥

× × ×

प्रिय बिन घोर कतु नही मूमन, दग दिगने घंदिगानी ॥

जट बेनन तन मन दग दिग मुधि, गिय बिन घोर बुनानी ॥

× × ×

दौरि दौरि पगुनगिन बूछन, तुम देगे गिय जानी ॥

बोलीं तो बोई मोहि बनायो, जिन गये गवे गुमानो ॥४॥

रोम रोम गियके रंगमे, दुनहिन मिट दुलरानी ॥

“जुगन” मगी बहै रात्र पुगारन, बबहू पुगारेगजरानी ॥५॥

घपनी धारमा की बिनाबनी देने हुए उन परमधाम का वरुन देने है—^{१११}

“धारमा जीव जामी बनो परमधाम, दगन श्वाभा श्वाभा ।”

परमप्रिय कृष्ण, ओ उनके प्राण के नाथ है घोर माथ ही स्वामी प्राणनाथ के प्रति उनकी भक्ति दृष्टव्य है—

“कुर्बानी मेरे प्राणके नाथ, तुम पर कुर्बानी ॥

भई घ म घ ग तुमगे नार, तुम पर कुर्बानी ॥

तुम प्राणनके हो नाथ, तुम पर कुर्बानी ॥^{११२}

प्रियदर्शन की कितनी व्याकुलता है—^{११३}

“रधन नैन बटाचन्दने हूमको, रोम रोम घायन करि डारे ॥

भीतर तनकन घनघ चारो, बाहेर तनकन नैन हनारे ।

मकलकना गनि निरन रागकी, नवन नवन छिनदिन पर ल्यारे ॥”

परमप्रिय कृष्ण की प्राप्ति के बाद तो भक्तहृदय यही कह उठेगा—^{११४}

“धर मीको को करे पगने न्यागे रे ।” उनकी कृष्ण की गोमा भी युगनस्वस्व न धाकपित करती है—^{११५}

११०. श्री निजानन्द नन्ननमागर पृ० ७७

१११. वही, पृ० ७२

११२. वही, पृ० ७५

११३. वही, पृ० ७७

११४. वही, पृ० ७६

११५. वही, पृ० ७६

“पूरन ब्रह्म ब्रह्मते न्यारो, दिल मोहोल मेरे प्राये ।
रंग रंगिली दुनहिन श्यामा, संग साथ सुहाये ॥”

(ट) चेतनदास

जुगलदासजी महाराज के शिष्यों में चतुरदास, चेतनदास और जीवनदास के नाम लिये जाते हैं । इनमें से चेतनदास ने प्रणामी साहित्य को अपने भावपूर्ण और उपदेशपूर्ण पदों से समृद्ध किया है । संसार की मायाजाल से दूर रहने के लिए वे कहते हैं—“बनी बहु मकड़ीकी जाली, तामे मति फसियो !”^{११६}

संसार के तत्वों से मन को हटाकर जब प्रिय में ही मन को केन्द्रित कर दिया जाए तो एक दिन मन खुद गा उठेगा—^{११७}

“परदेशी बलमुवा आए गए ॥”

उस प्रियतम से प्रेमपूर्ण ढंग से कहा जा सकता है—

“मोहन नाचो हमारे आगे तुमरे नाच हमही नीक लागे ।

जगमें नाच बहुत रंग होई, तुमरे नाच तुले ना कोई ॥”^{११८}

लेकिन प्रियतम कृष्ण और उसकी बशी का असर बहुत ही गहरा पडा—^{११९}

“श्याम रीरे मुरलीमे मारत बान ।

सुतल रहलि चिहुकि उठि जागे, उठि गई नीद शब्दके तान ।

मुरलीके चोट औपथ नहि लागे, मन मतवाला फिरे बौरान ॥”

फिर भी प्रियतम की मुरली जब बजती है तब दिल उन्ही के पास पहुँच जाता है और सवाल कर उठता है—^{१२०} “कौन बन मुरली बाजे धन धोर ।” उस सगीतमय निमन्त्रण से खुशी हो होती है, लेकिन अभिव्यक्त तो इसी प्रकार करना चाहिए कि—

“सखी । मधुवनमे बेन बाजे ।

इत गोकुल उत मधुरा नगरी, बिचमे जमुना घाट नाव लागे ।

मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, तहा कान्ह मोरे दान भागे ॥”^{१२१}

११६. श्री निजानंद भजनमाला, पृ० ८२

११७. वही, पृ० ८२

११८. वही, पृ० ८८

११९. वही, पृ० ९८

१२०. वही, पृ० १०६

१२१. वही, पृ० १०७

प्रणामी के अन्य सन्तों में केशवदास, भीमभाई, जीवनमस्तान, लच्छीदास, महन्त श्रीजीवराम, विहारीदास जीवनदास गोपालदास महन्त, परमहंस गोपालदास, भानन्द दास, ध्वजद्वेजदास, चतुरदास, रतनदास, भवानीभाई, गोबर्द्धनदास, पिताम्बरदास आदि ने प्रणामी सम्प्रदाय में योगदान दिया है, किन्तु उन सन्तों की जीवनियाँ पूर्णरूप से मिलती नहीं हैं।

(ठ) जीवन मस्ताना

मिश्रबन्धु ने जीवन मस्ताना का नामोल्लेख किया है और विवरण दिया है, परन्तु जन्मसमय नहीं दिया। उन्होंने उनका रचनाकाल सं० १७५७ माना है।^{१२६} मिश्रबन्धु ने उनके प्राणनाथ का शिष्य होने की बात का स्वीकार किया है, लेकिन कवित्व की दृष्टि से हीन श्रेणी में रखा है। वस्तुतः जीवन मस्ताने की रचनाओं में भी कही कही कवित्व की चमक दिखाई पड़ती है। जीवन मस्ताना ने निम्नपद्य द्वारा एक परमात्मा को सहायक बताया है और इसके सिवा और सब स्वप्नवत् भूठ दर्शाया है—

“जीवन कलामसे जान लिया,
 एक साहिब साचा भार है।
 मातापिता सहोदर तीरिया,
 ये सब पैसेकी लार है।
 इनको चाहिए खूब खजाना,
 तब ये करते प्यार हैं।
 ताते दुनिया भूठी लडी,
 इसका क्या इतवार है।
 जीवनकलामसे जान लिया,
 एक साहिब साचा यार है।”^{१३०}

प्रेमपूर्ण भक्ति ही सुखप्राप्ति का साधन है और अद्वैत की स्थिति प्राप्त होती है—

“रोशन दूर हुआ तिन ऊपर,
 पूरन इश्क अपार है।
 बँठे हक्क हादी रुहे तीनो,

१२६. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग), पृ० ५६५

१३०. प्रणामी धर्मपत्रिका, उपदेशांक, सं० १६६६ (आश्विन), पृ० ८१

मिल करते नित्यविहार है ।

पशु पक्षी समूह रट लावे,

तुही तुही ततकाल है ।"१३१

कबीर की तरह भक्ति के बाह्य उपकरणों को उन्होंने पसंद नहीं किया । उन्होंने कहा है—

"कोई कर माला लं बैठे कोई अंग पत्तारे पानी से ।

कोई आग जला आसिन पर बैठे, कोई लिये वेप भवानी मे ।"१३२

"रोटी" का महत्व होने पर भी वे मुग्ध हैं युगलविहारी पर श्रीर युगलशोभा का वर्णन इस मति से कैसे हो सकता है ।^{१३३} उसी "सामलिया सुलताने" में वे ध्यान लगाते हैं—

"मुरली" मधुर बजावत सुन्दर, शब्द मुनावत ताने मे ।

लिये दोहनी गौघोकी ब्रज, घर घर फिरा गुमानेसे ॥

दधि खाई दधि-वासन कोरे, सबमे रहा सयानेमे ।

जीवन मस्ताने ध्यान लगावे, सामलिया सुनतान से ॥"१३४

वे गोपिकाओं के प्रेम को ही मच्चा प्रेम मानते हैं—

"जीवन मस्ताने इश्क वही जो, किया खालिया भेपे का ।

००

००

००

बटि पर लाल काछनी काछे, अच्छा बना लीनेशे का ।

शिर पर मोर पक्षकी मुकटा, पीत पटा परम पेशेका ।

निरतत गान करत गति गुजति, करि नटवर अवलेशे का ।"१३५

कृष्ण में लगे हुए मन को वृन्दावन की भूमि ही पसन्द है—

१३१. वही, पृ० ८३

१३२. वही, पृ० ८३

१३३. "माखन रोटी खात सगमे, युगल विहारी जोटी है ।
जाना जिसने तखा सोई जन, क्या बरनो मति छोटी है ।
जीवन मस्ताने यह काया, रोटी बिन होत न मोटी है ॥"

—श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० १७७

१३४. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० १८३

१३५. वही, पृ० १६२-१६३

“अधुर वेन मृदुंग मजी रे, मुरली धुनि धुधकारी है ।
बाजत तायेइ तायेइ, तैसे हनत हथारी है ।
थिरकि जात ठहरात चन्द्रिका, लोटत जिमि घरवारी है ।
जीवन मस्ताने श्री वृन्दावन मे, विहरत कुंजविहारी है ॥”^{१३६}

कृष्ण की गोपिओं के साथ होती हुई रामलीला का दृश्य देखकर भक्त को कितनी खुशी होती है—

“लचकि लचकि पगु घरत धरनि पे, धक धक धक धक धलकनसों ।
नाचत अपनी गति विधि साथे, थेई थेई थेई थेई धलकनसो ।
सब बसन गोपियो प्रेम भिगोये, थाक थका थल थलकनसों ।
जीवन मस्ताने उमंग अंग दोउ, पलक न लागे पलकनसों ॥”^{१३७}

स्वामी प्राणनाथ ने हिन्दू-मुसलमान एकता पर जोर दिया था वैसे जीवन-मस्ताना भी कहते हैं—

“पाप पुण्यको करती दुनिया, याहो से उरभानी है ।
हिन्दू मुसलमा सोऊ फिरके, अपनी अपनी बानी है ।
मुसलमान वेचून बतावे, यो निराकार कहे ज्ञानी है ।
जीवन मस्ताने साच कहे, ये सतगुरुसे हम जानी है ॥”^{१३८}

००

००

००

“हिन्दू अपनी हुए न जाने, मुस्लिम सरियत सारे की ।
पण्डित काजी बोल गुमागुम, भुलां वाग विचारे की ।
रहमत लिख्लिह सबसे ग्यारा, मुरत निज सरदारे की ।
जीवन मस्ताने कहे पुकारे, अक्षर ब्रह्मके पारे की ॥”^{१३९}

अन्ततः उनको लगता है कि “जीवन मस्ताने इश्क बिना, सब दुनिया मोते खाती है ॥”^{१४०} लेकिन इस जीवन को पार लगाने के लिए गुरु-मतगुरु की भी आवश्यकता है । उन्होंने केवल सद्गुरु को ही सत्कार मानर से पार लगानेवाला बताया है और उनकी महिमा गायी है—

१३६. श्री निजानन्द भजनमाला पृ० १८६

१३७. वही, पृ० १८६

१३८. वही, पृ० १७४

१३९. वही, पृ० १८१-१८२

१४०. वही, पृ० १६४

"जीवन मरताने मतगुरु बिन, जो देवे पार लगाई है ।
सवि कुदरतका स्थान जगत, मव भूनि गया भरमाई है ।
मूल बतन साहिव विमराया, घायु न परत चिन्हाई है ।
मृगत्रल देनि मृगा ज्यो दौडन, ध्यामा ही मरजाई है ॥"^{१४१}

— क्योंकि हम समार में तो,

"पाप पुण्य की हाट लगी है, चित गाहे मो लं जाई है ।

०० ०० ००

सोदागर सोदाको घाये, देनि कण्ट मिठाई है ।
मोहमाया बग बामत्रोपके, घापुइ गये बिकाई है ।
घहकार घोर जाति बडाई, इन्ही में बुद्धि सडाई है ॥"^{१४२}

घगर जीवन में मद्गुरु की प्राप्ति न हुई तो यह जीवन घमफल रहेगा ।
बिना मद्गुरु जप-तप-गयम आदि का ज्ञान उपयोगी नहीं होता^{१४३}—

"वेद पढ़े घरु ज्ञान बतावे, दिलमें रोग बढ़ावेगा ।
दूसरेको तो ज्ञान बतावे, घाप भ्रम बीच भेद न पावेगा ।

०० ०० ००

जम बलन्दर मरकटहि नचावें, तम भाया मोह नचावेगा ।
पाप पुण्य दोनो में फाली, फेरि मोनिमें घावेगा ।
नही किनारा हम मागर में, फिरि फिरि गोते खावेगा ।
कहे मस्तान मुनोभाई जीवन सतगुरु बिन को पार लखावेगा ।"

सद्गुरु के उपदेश में ही घावागमन के फेरे को टाला जा सकता है^{१४४}—

"कई पटकर्मो नेमी घर्मी, निशदिन रहन संदेशे में ।
कई घ्रासन मारे दमको साधे, बोलत बचन मजूजसे ।
कई देह दगावें मोनी कहावें, सुगन बतावें लेवे में ।
पर जरा मरत नही छूटे जीवन, बिन सतगुरु उपदेश से ॥

उनकी रचनाओं की घन्य विशेषता है पचक की । मिश्रबन्धु ने उनके ग्रन्थों में "पचक दहाई"^{१४५} का उल्लेख किया है ।

१४१. प्रणामी घर्मपत्रिका, उपदेशाक, स० १९९९ आश्विन, पृ० ८४

१४२. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० १९६

१४३. वही, पृ० १६०

१४४. वही, पृ० १८४

१४५. मिश्रबन्धु मिश्रबन्धुविनोद (द्वितीय भाग), पृ० ५६५

(४) गोपालदास

साम्प्रदायिक साहित्य में गोपालदाम दो हुए हैं और इसीलिए दोनों की रचनाओं को अलग करना मुश्किल हो जाता है। फिर भी भाषा के कारण परमहंस गोपालदास—“प्रेमसखी” और महन्त गोपालदाम की रचनाएँ स्पष्ट रूप से अलग हो जाती हैं। गोपालदास प्रेमसखी फूलपुर के निवासी थे। उनका जन्म गोरखपुर महामंडलान्तर्गत भधुवन नामक ग्राम में हुआ था। उनका जन्म सं० १८१६ के साल में अषाढ कृष्ण प्रतिपदा रविवार के दिन हुआ था। उनके पिता प० वेदमणि शर्मा और माता मुलधारणादेवी। गृहत्याग करके देश भ्रमण और धर्मप्रध्वयन करते हुए वे जगन्नाथपुरी पहुँचे वहाँ से द्वारकापुरी में आ गए। संभवतः इन्होंने बाद में मूरत के प्रमाणी मन्दिर की गद्दी ग्रहण की। अलौकिक ज्ञान एवं साभप्रद चमत्कार दिग्वाते हुए वे सं० १९१८ के साल अषाढ कृष्ण प्रतिपदा के दिन परमधाम पहुँचे। इनकी मृत्यु के सदरं में “वृत्तान्तदीपिका” कार श्री यागदासजी ने लिखा है—

“मोनइमसे सबत मोई जाने,
अष्टादश कहि माल बखाने ।
माम अषाढ कृष्ण परब आये,
परिवा तिथि रविवार सोहाये ॥”^{१४६}

साम्प्रदायिक साहित्य में “प्रेमसखी” के पदों का ही अधिक महत्त्व है। सबतः उन्होंने अन्य कोई रचना नहीं दी। लेकिन, उनके पदों में मधुरभक्ति के दर्शन होते हैं उस पर से लगता है कि उनके पद ही उनको एक स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त है।

प्रियतम कृष्ण के विरह में भक्त का जो व्याकुल है और भक्त कह उठता है—“प्रिय मोहे पतिया पठाए, मुनि मुनि जिय अकुलाए ॥”^{१४७} विरह को मिटाने के लिए प्रियतम ने यही कहना पड़ता है—

“तुम जीने मैं हारी पिया भरे, तुम जीते मैं हारी ।
जो तुम कहीं भई सब सोई, अमरे इजन सवारी ।
होत सोई जो करत करावत, होइहै सोई जो विचारी ॥”^{१४८}

१४६. प्रणामी धर्मपत्रिका (स० १९६६, पोप), पृ० १५

१४७. श्री निजानन्द भजनमाला, पृ० ४३

१४८. वही, पृ० ४५

प्राणिर हार मानने के माथ प्रियतम पर इतनी जिम्मेदारी भी धोप देनी है भक्त को कि—^{१४६} “अब तो गरन पिया तुमरी हो, लीजे बाह गहि मोर । भक्त धरने अबगुणों में भी परिचित है, फिर भी नम्रता में यही कहता है—

“अपने चरन मोहि राखिए, अबगन तजी विप्र मोरे ।

× × ×

अग्यापुन्धरी दुहाईमें, मुने काहूकी ना कोई ।

तहा तुमही मोहि डारी हो, जहाँ बाद अग्य घोर ॥”^{१४७}

इसी मोहमायापूर्ण सगर में छटकारा पाने के लिए प्रियतम वृष्ण के त्वरित दर्शन की माँग है—

“वेनि दरम मोहि दिजे पिया, भा मो तनकि जिप्र जाये ।

बिन जाने दुग भोग्यो, जाने मही नहीं जाये ।

जोनो न देखो नयन भर, तनों अगिनि बराये ॥”^{१४८}

विरह की व्याकुलता के कारण धीरज धरना मुश्किल हो गया है—^{१४९}

“बँमे के धीर अरू पिया, पीर भई जिप्र जोर ।

तुमही विदेश मोहि डारी, जहा अग्यकार घोर ।

तुम बिन अगना न कोई, दग चोगोका शोर ॥

× × ×

अब लग मुधि नहीं पाई तब लग भ्रमिउ चहुँ घोर ।

पाए सदेशवा प्रीतमके, अब बँमे रहे जीव मोर ॥”

शायद महापाप किया हुआ है कि प्रियतम का वियोग हुआ है—^{१५०}

“बिनती एक मोरि मुनो पिया, तुम हो दीन दयाल ।

मोमम अघम ना कोई काहुँ, महा खन दुष्ट अघार ।

जड शठ नीच पतित में, विमुख नियो प्रतिपाल ।

× × ×

महाघोर पाप में कियो, ताये विमुख मनि मोर ।

अब बँमे मनमुग होऊँ, निशदिन रहे हिय साव ॥”

१४६. श्री निजानन्द भजनमाला पृ०

१४७. वही, पृ० ५५

१४८. वही, पृ० ५५

१४९. वही, पृ० ५७

१५०. वही, पृ० ५५

अपना दुःख कहीं न कहीं व्यक्त करने को इच्छा होती है । प्रिय वियोग से पीड़ित 'सखी' अपनी ग्रन्थ सखी से पूछती है— १४४

“कब होइहैं सखी पियाको मिलावन ।
जो मैं जानतिऊँ पियासो बिछरि हों,
रहतिऊँ चरन लपटावन ।

अब तो भूल बहुत भई मोसो,
करहु क्षमा लेहु शरनमे आवन ॥”

सखी से यही प्रश्न होता है—“कौन दिन होइ हैं सखी निजघर जावन ।” १४५
प्रणामी सम्प्रदाय की दार्शनिकता के आधार पर, उस परमधाम की ब्रह्मप्रियाएँ यहाँ पर अवतरित हुई हैं । लेकिन “निजघर” पहुँचने के प्रियतम कृष्ण की ही कृपा चाहिए । अतः भक्त कहता है— १४६

“कोई ना कहे कौनों दिशा पिया मोर है आली ।
द्रुम एक भुज चारि, पछी आठ पट डारी ।
सुने न काहुँकी, कोई अन्धवाद शोर है ।”

अन्ततः भक्त को “निजघर” पहुँचने के लिये यही कहना पड़ता है—

“तुम ठाकुर मैं चेरी, सुनहु पिया बिनती मोरी ।
रहिउ सनाथ अनाथ भइउ इत, चहुँदिश दुःख भक्तभोरी ॥” १४७

× × ×

“मोसो चूक सब विघ परी, निजे चरन तले मोही ।
हा हा करत हों चरन परत हो, आहि आहि मैं तोरी ।
तुम बिन मोर कोउ नाही, मैं पापिन मत मोरी ॥” १४८

इस सप्सार में मोहजल और अधियारे के कारण भक्त जीना पसन्द नहीं करता— १४९

“जलचर राग कराल मोहजल, खाये लेत सब माल ।
भारी भँहर अथाह मृगजल, दीसे न टापु करार ॥
ता पै रैन घोर अधियारी, तड़पे जल बर्पाए ।
गरजे सिन्धु महाभय भारी, कोउ न सुनत पुकार ॥”

१४४. निजानन्द भजनमाला पृ० ५६ १४५. वही, पृ० ५७

१४६. वही, पृ० ६५

१४७. वही, पृ० ६४

१४८. वही, पृ० ५६

१४९. वही, पृ० ४४

(ड) मोहनदाम

मोहनदाम की जीवनी संपूर्ण रूप में नहीं मिलती। लेकिन मूरन की गद्दी पर विराजित मोहनदाम महल १६० यही हों, तो उनका जन्मकाल स० १६०० के आसपास में होगा। वे गोरखपुर के निवासी थे।

उन्होंने अपने पदों में ममार की माया में छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त की है। क्योंकि— १६१

“मानु बिना मुन नागी प्यारी, बन्धु महोदर भाई।

अनकाल कोई काम न घाई, हुआ अकेला रमि जाई ॥”

लेकिन सांज्ञिक मोहमाया के तत्वों में छुटकारा दिलाने के लिए मद्गुरु की आवश्यकता रहती है— १६२

“द्विन मनगुस्को भेद मखाई हो।”

नात मान गुरु विद्या पढाई हो, पुरोहित जो कर्म करगई हो।”

जीवन में माधुमेधा और गुरुभक्ति का महत्व है—

“जो जम बंद करेगा, पीछे ममन्त पड़ेगा भाई।

× × ×

ना कबहुँ माधुनकी सेवा, ना गुरु भक्ति करेगा।

धोर नरक में डारि दिया है, गेण गेण ची करेगा ॥” १६३

मूखदुःख का आघार अपने कर्मों पर है, लेकिन हम शोषी टहंगने हैं भगवान को शमीविए मोहनदामजी कहते हैं— १६४ “कर्म लिखा फल पाई प्रभुको, नाहक दोष लगगई।” मरने जीवन के लिए भक्ति ही आवश्यक है—

“यह उन पाय भक्ति न करि है, सो आशिर जमपुर की जाई।

विष्णु भक्ति बहुत तर गग, सो यग वेद पुगनमें गाई ॥” १६५

× × /

“प्रभु बिना जन्म अकार्य बीती

घन्या करि करि दिवस गवावे, पेट भरने की गेती।

दाधि लगेट महन कहावे, कर्म नसे अब सेती ॥

१६० मणिगुणकर करगनजी दवे, महागुरुग्रन्थः संतो-महतो अने महारमाधो,
पृ० ७३

१६१ श्री निजानन्द मखनमाया, पृ० १२०

१६२ वही, पृ० १२८

१६३ वही, पृ० १२१

१६४ वही, पृ० ११८

१६५ वही, पृ० १२१

कभी सत्य कभी झूठ बोलके, घन लेने की रीती ।
घटक देखाय गुमाई कहावे, तिलक रमाय सपेती ॥
अपना कर्म त्याग के मन्तो, करहि मायासों प्रीती ।
ऐसा चार पदारथ पायके, तनिको ध्यान न देती ॥"१६६

सच्ची भक्ति वही जिसमें और सभी से उदासीनता हो--

"जगमें सोई ज्ञानी वैरागी ।

दूनी से बँर प्रीत प्रीतमसे, सत्गुरु पद अनुरागी ।

बँठे कल्प वृक्षके छाँही, काल करम नहिं लागी ॥"१६७

प्रियतम कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम ही भक्ति है, लेकिन भक्ति करने के गलत ढंग भी दृष्टव्य हैं--१६८

कोई इंगला कोई पिगला सुखमन, कोई त्रिकुटी विश्वासकरी है ।

कोई अनहद अजपाको धावे, गगन गुफा में ध्यान धरी है ।

कोई तीरथ कोई व्रत घनेरो, कोई वानन बिच वास करी है ।

बिन सत्गुरु भ्रम गँल न छुटे, नाहक भटक भटी है ।"

इसीलिए भक्त को लगता है कि भगवान जग को नचा रहा है--१६९

तेरी गति कही न जाई, प्रभु तुम भले जग नाच नचाई ।"बुद को भी प्रभु की अवस्था का दुःख है । प्रियतम कृष्ण से बिबुड जाने पर उससे रहा नहीं जाता--१७०

"बलमुया बिन अब मोरा रहलो न जाए ।

× × ×

पिया बिन भवन भियावन लागे, गृह आगन सोहाए ।

चंचल चिन मन थिर न रहत है, विरहा सहलो न जाए ॥

पल पल पथ हेरो प्रीतमके, सुमरि हियालाए ।

रैनि सेज्या पर नीद न आवे, भारेहि उठल भमाए ॥"

प्रियतम कृष्ण की शोभा भी दृष्टव्य है--१७१

"वैजन्ती उर भाला लटके, जुड ललित देखि चित्त अटके ।

पेट पासुली मुभग विलक्षण, कट पर काछनी काछना हो ।

चलत चरन पर पुंघर घमके, नखशिख कोटि भान शशि चमके ।"

१६६ श्रीनिजानन्द भजनावली पृ० १३१

१६७ वही, पृ० १३३

१६८ वही, पृ० १३४

१६९ वही, पृ० १२०

१७१ वही, पृ० ११९

१७० वही, पृ० ११४

कृष्ण की बनी का जादू मारे ब्रज पर पा हो, पर श्रजवानाप्रो पर अन्वयिक
बला पा—१७२

“एक दिन बनी बजाए भावनिपा, श्रज बानाको मोहि निपा
बनी के शब्द परे ब्रज माही, श्रजतारी तन त्याग दिया ।
जो जैमी तैमी उठि घाई, ऐमो जादू डाल दिया ॥”

परैगान करने वाला कृष्ण प्रिय भी ही लगता है । फिर भी कहना
पटना है—

“गगरी नरन बंम जाऊं जमुना मे ।
बाट घाटमे नन्द को टोटा, निरन्वी रहै गविपनमे ।
जो मै उचटी जाउ पानी के, बहिया पकर रोहत बनमे ॥”^{१७३}

× × ×
“मै जमुना जव जात मज्जनके, सारी फारी दहलैदा ।
से सकुट मटुकी गिर फीरे, दधि मोर देन लुटैया ॥”^{१७४}

× × ×
“दीत्रे दीत्रे चीर हमार, मोहन मुरली बजानेवाले ।
कानिक भाम बन करि नारी, मोर नहाने बमन उतारी ॥
चीर हरि ने गये मदन मुगारि, कदम चढ बँट द्विपाने वाले ॥”^{१७५}

लेकिन वही श्याम शब्द के जब गया है, तब यही कही कहना पडता है कि
“जाओरे ननि कोई श्याम बनाओ, बिरहा उरि दिए तनमे रे ॥”^{१७६}

प्रियनन का वियोग और भी व्याकुलना पैदा करती है, जबकि—^{१७७}

“अपाड है ननि अम्बर गरजे, देनि घटा दिया बाणे यो ।
ऐमे समय प्रभु तजिगए मोहि, सोची मदन संतापे यो ।”
प्रियनन की निर्ममता भी देखिये—

“ऐने निपट निठुर श्यामरो, अजहू न निख भेजे पतिवारे ॥”^{१७८}

१७२. श्री निवानन्द भजनावली, पृ० ११६

१७३. वही, पृ० १२४

१७४. वही, पृ० १२४

१७५. वही, पृ० १३५

१७६. वही, पृ० १४४

१७७. वही, पृ० १४२

१७८. वही, पृ० १४३

कोई समाचार न मिलने पर शका भी होती है—

“पिया मोर बसे परदेश, ऊदेस नहि पटाओल रे कि ।
दिन दिन बडे कलेस, अदेसवा लागल रे कि ।” १७६

जिस जगह इतना विरह सहना पड़ता हो, उस जगह को छोड़ देना ही उचित लगे । लेकिन जब प्रियतम के समाचार मिलते हैं तब, खुशी का ठिकाना नहीं—^{१८०}

“मुन लेहु सखियां अनूप एक अतिया, पतिआ पियाजी के आए
चलहु सबेरिया अबेर भले रतिया, भगम देश गमि पाए ॥”

(ए) ज्ञानदास

प्रियतम कृष्ण की स्मृतिपाँ जहाँ जुड़ी हुई है, वह भूमि भी प्यारी लगती है । इसीलिए ज्ञानदास ने कहा है—^{१८१}

“जग मे है वृन्दावन न्यारा ।
देखे कोई बराह संहिता, सब लोकन के पारा ।”

क्योंकि यही पर प्रियतम का प्रेम मिला था—

“छाठे रे श्याम मग मारत नजरिया ।
बाके बाँके नैन मरोर के मारत ।
वस कर राख्यो जिन सबहि गुजरिया ॥
में जमुना जल भरन जात रही ।
कौकरी मारत श्याम मेरी मगरिया ॥”^{१८२}

ज्ञानदास ने निम्नलिखित पद में साधुमन्तो के लक्षण बताये हैं—

“समझ मन यह साधुन की रीत ।
निशदिन करत करत साहेव पर ।
जरत सबभ की प्रीत ॥
पर धन पर त्रिय अशुभ कर्म तें ।
मदा रहता भयभीत ॥
परनिदा अपवाद श्रवन से ।
स्याग जानत फजीत ॥

१७६. वही, पृ० १३७

१८०. वही, पृ० १४०

१८१. वही, पृ० ५

१८२. वही, पृ० १५५

विरह किराक धनीकी राखत ।
 गावत तिन हीके गीत ॥
 नीर मीर के विलग करन को ।
 बुद्धि हम धचित ॥
 ऐने प्रीत करहु मन मेरे ।
 तुम हो सचि मीत ॥
 ज्ञानदाम सत गुरु शीतल पद ।
 गहू तु परम पुनीत ॥^{१८३}

(त) महंत गोपालदास

महंत गोपालदास ने प्रणामीमत के सिद्धान्तों को मरल और सुबोध करने के हेतु "प्रदेशी समाचार" रचना में ब्रह्मांड की उत्पत्ति, ब्रह्म वामनाश्रों का समाार की भाषा में फमना, मूल लीला और धाम की विस्मृति, अन्नन' मोहपीडित ब्रह्मप्रियाश्रों को जागृत कराना आदि का वर्णन है। पूर्वाद्धं हिस्सा स्वयं गोपालदास का है, जबकि उत्तरार्द्धं हिस्सा जुगलदास के शिष्य चतुरदास की 'शब्दावली' का है। 'प्रदेशी समाचार' गुजराती भाषा में भाषान्तरित हुआ गोपालदास द्वारा। उन्होंने गोपालदास की बाराखड़ी, मुरलीधर के कवित्त, छत्रमान के कवित्त और अर्जुनदास रचित दान-लीला का वर्णन करने हुए पदों का सङ्कलन 'कवितावली' में किया है। इस कवितावली' की भूमिका में सङ्कलित मन्त्रों के जीवन का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

(ध) गुलाबदास

गुलाबदास पन्ना के निवासी थे। उन्होंने बहुत से पदकीर्तन, ब्रजलीला, रास-लीला तथा अन्य वेतावली के पद हिन्दी तथा गुजराती भाषा में लिखे हैं। इनकी 'बाराखड़ी' में ४० पद हैं। इन पदों में सामाजिक एवं धार्मिक विषयों को-विशेषतः प्रणामी सम्प्रदाय के तत्वों को-ले लिया है—उदाहरणार्थ—

(ध) "नना नारी नागिन नाहरी, इनका एक मुझाव ।
 जीवत सोमे पीडको, अरे नर कलेजो खाय ॥
 मरे नर कलेजा खाय, नारीका ऐसा फन्दा ।
 नाहर मसन मास, नारि कर राखे बन्दा ॥
 कहन "गुलाबदास" यह नागिन का विष जाय ।
 नारी विष ना जतरे, कीजै कोट उपाय ॥^{१८४}

१८३. प्रणामी धर्मश्रिवा, उपदेशाक, सं० १९६६ आश्विन, पृ० ३५

१८४. सं० गोपालदास, कवितावली (२००६), पृ० ४

(ब) 'पपा पारब्रह्म सबके परे, तापर और न कोय ।
 अक्षरातीत अनादि पद, परसि प्रेम रस सोय ॥
 परनि प्रेम रस सोय, पलक पल नैन निहारो ।
 पल पल सुमरो तामु, हिये ते नाहि द्विसारो ॥
 कहत "गुलाबदास" सुनो मन मेरे भाई ।
 कोटि पलक की पाति, हिये ते नाम न जाई ॥"१८५

उनके संगीत की रागिनियों के ज्ञान के पदो मे लालित्य आ गया है—

"बशी धुनि बाजे भाई जमुना तीर ।
 अघुर धरी ब्रजराय बासुरिया, रनि शरद मुख सीर ॥"१८६

× × ×

"भाई । मेरो मन मोह्यो बेन बजाए ।
 मदन मयन त्रिभगी मूरती, करत गान गति लाए ॥"१८७

× × ×

"आज गई मैं बशी बट मे, देखोरी । कान्हू बजावत बंशी ।
 अघुरे धरे मधुरे सुर गावत, बेधि करति उर प्रेम की गंसी ॥"१८८

उनके उपदेश पूर्ण पदो मे भी एक मधुरता झलकती है । अपने मन को चेतावनी देते हुए वे कहते हैं—

(प्र) " तू तो मान कह्यो मन मेरो, कुसुम रंग जोवन तेरो ।
 धूप परे परि जात पलक मे साभ सो नाहि सबेरो ।
 सुर नर मुनि प्रवतार अबनिमे लिन्हों कहा तिन डेरो ॥
 दूरिके साहेब नेरो ॥

× × ×

कहत "गुलाब" प्रेम रस मीने, फेर नही जग फेरो ।
 सतगुरु सग रस बिलसो, प्रेम प्रीतिसों हेरो ।
 लगन ऐसी लागल मेरो ॥"१८९

१८५. वही, पृ० ८

१८६. निजानन्द भजनमाला, पृ० १५७

१८७. वही, पृ० १५७

१८८. वही, पृ० १५६

१८९. वही, पृ० १६०

- (ब) "वेद के बाद करे गवर्हि मत, ब्रह्मगो रूप धरन बनावें ।
नाम बिना बतु रूप नहीं, नहीं रूप बिना कोऊ नामहि पावें ॥
भारत में नहीं भूमल मंथन, भूमन जीव यो यदि गमावें ।
ऊट मर्जारि घाति निघां, बहे दाम 'मुत्तावन' गौतम तामें ॥"^{१६०}

(द) मुरलीदास

मुरलीदास दत्तमान के पुत्र हृदयगाह के पुत्र मनामिह के दोबान माधवदास के पुत्र थे । भक्ति के पागंड पर वे बहने हैं—

"कोट तन काट बन तीरथन कोट कर,
गिरि बदनन जाय कोटि विधि लहू रे ।
कोट घष्टाय मन जोग धम्माम कर,
कोट ध्याकरन मुग कोट बहू रे ।
कोटि बपुन गिन रहो, कोट उपवास कर,
कोट पचाय तन धागिन बीच दह रे ।
एक श्रीराज मुग वृषा पागण्ड भव,
राज मुन राज मुन राज मुन बहू रे ॥"^{१६१}

घ) धर्जुनदास

धर्जुनदास ने दानलोना का जो वर्णन किया है उसका एक उदाहरण दृष्ट्य है—

मैं चली थी सवेरी धवेर भयो,
धनु माग्य गेकि रहे बनधारी ।
जीने तुम्ही हम हारे हो मोहन,
दान,ने धो हम मो गिरधारी ॥
ऐसी बात मुनी नन्दनन्दनने,
हमि दोऊ चले बनबाग मंभारी ।
धर्जुनदास के नाथ मनोहर,
नन्द नन्दन वृधमान दुनारी ॥"^{१६२}

१६०. वही, पृ० १६६

१६१. स० गोपालदास, कवितावली, पृ० २०

१६२. वही, पृ० ४६

(न) मुखलालदास

मुरलीदास की तरह मुखलालदास भी कहते हैं—

“भभूत लगए से काज न फावत,
जरा बढाए ये ब्रह्म न पावें ।
पडे रंगाए तो फल न लागत,
डडधारी के पुन हाथ न आवें ।”^{१६३}

अन्य रचनाकारों में पुरुषोत्तम, निवाज, रतनेश, हरिकेश, हरिश्चन्द्र, गुलालमिह बरुशी, केशवराज, हिममतसिंह कायस्थ और प्रतापसिंह बदीजन आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है।^{१६४} लेकिन इनकी रचनाओं की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। अतः इनको प्रणामीसन्तों एवं भक्तों के रूप में स्वीकार करने में शका उठती है। कहा जाता है कि^{१६५} हरिकेश ने ‘ब्रजलीला’ नामक ग्रंथ लिखा है। हृदयशाह के ‘हृदयप्रकाश’ नामक ग्रंथ का उल्लेख होता है। मिश्रबन्धु ने किमी रसरंगजी का उल्लेख करते हुए, इनका कविताकाल १७८० ई० दिया है। इसकी रचना ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में है। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है। इनका “बानी” ग्रन्थ छत्तरपुर दरबार में उपलब्ध होता है। ये मुसलमान जाति के थे। प्रारम्भ में धामी सम्प्रदाय के और बाद में वैष्णव सम्प्रदाय के शिष्य हो गए। इनका पद दृष्टव्य है—

तिरे महेबूब बाँकेने चसमकी चाटेमारी है ।
खडा है सोमने ही में जरा नहि पलक टारी है ।
जिलाया उन्हीने मुझको जिने यइ सास भारी है ।
तडपता कदीना जीतो विछोहा ददें भारी है ॥^{१६६}

शिवनाथ के रसरंजन ग्रन्थ का उल्लेख भी मिश्रबन्धु ने किया है। शिवनाथ जगतराज के दरबार में थे।^{१६७} अजरदास, ज्ञान खानचन्द, नारायणदास, श्यामदास आत्मादास और लघुरामकृष्णजी की रचनाएँ प्राप्त नहीं हुईं, लेकिन उन्होंने साम्प्रदायिक दर्शन को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है।^{१६८}

१६३. प्रणामी धर्मपत्रिका, भंजनाक, २००१ सं० आश्विन, पृ० १५

१६४. (अ) गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव, पृ० ४०६, १०, १६, ६७, ६६, ५०२
(ब) डा० कविवर बिहारी और उनके युग, पृ० ७६

१६५. गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव, पृ० ३६०

१६६. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ५६७

१६७. वही, पृ० ६६१

१६८. श्रीकृष्ण प्रियाचार्य के एक पत्र के आधार पर।

राजापुर पटनानिवासी कृष्णदास, मिथबन्धु ने^{१९६} जिम कृष्णदास का उल्लेख किया है उस में सम्भवतः भिन्न है। कृष्णदास ने अपनी रचना "सक्षिप्त प्रणालिका" में कहा है—

मह पद पाई गोपिका, जियो न जपनप ।

प्रेम सच्छना भक्तिमे, भई सदा सयोग ॥^{२००}

प० घनश्याम दत्त शर्मा— दिनेश ने शीतलदास छवीनदास, मेहरदामजी का उल्लेख किया है, लेकिन उनकी रचनाओं का कोई परिचय नहीं दिया या कोई प्रमाण नहीं दिया।^{२०१}

आधुनिक युग में प्रणामी साहित्य गद्य और पद्य में समान परिमाण में लिखा गया है। सदानन्द गोस्वामी ने "पद्मावतीदर्शन" नामक खंड काव्य की रचना की है। दीन कृष्णभिमारी ने भी मध्यकालीन शैलीक परंपरा को "निजानंद सागर" में निभाया है। पं० मिथीलालशास्त्री ने "मुक्तिपीठ" और मुक्तक पद भी लिखे हैं। आचार्य धर्मदास जी ने भी कई पद दिये हैं। परमधाम में कृष्ण-राधा के राममेल को देखते हुए वे कहते हैं—

मेलत सब ही सब मिल होरी ॥

सावी स हेनी मिलकर भाई, रग बिरगी गोरी ।

नवस्त सजि मिनगार उमगे, भाई जुवतन जोरी ॥

परमधाम में प्रथम हि मेले, राजश्याम की जोरी ।

मेले ब्रज भरन घण्ट रासमे, जागनी रग मे बोरी ।

"परम" हाथ जो जोरी ॥^{२०२}

रातरतनदाम "रत्न" के प्रेमरत्नावली" नामक पदों का संग्रह प्राप्त होना है। इसका एक पद द्रष्टव्य है—^{२०३}

मुरली मधुर बजाये सजनी मुरली मधुर बजाये ।

भनक पडी कानन मे जब ही तनमन सुधि बिसरायें ॥

१६६. मिथबन्धु, मिथबन्धु विनोद. भाग २, पृ० ८०६

२००. कृष्णदास, सक्षिप्त प्रणालिका, पृ० १२६

२०१. श्री प्राणनाथ सदेश, प्रणामी साहित्य अ.क. ६३. पृ० ४

२०२. श्री प्रणामी धर्मपत्रिका व० ३५, अं० ६. पृ० १

२०३. रामरतनदास, प्रेम रत्नावली. पृ० १-२

शेष महेश शारदा भूलहि, ध्वनि मे ध्यान लगावें ।
देवलोकमे देव निहारे, सुमन वृष्टि बरसायें ॥
रतन प्राणवसी में बस रहे, सुनत सुनत सुख पायें ॥

पूजारी वृंदावनदास, हरिश्चर पुराणी, ब्रह्मचारी पूर्णदास, पं० बालकृष्ण प्रणामी "उदासी", पं० कुबेरदत्त उपाध्याय, मानिकलाल "शोषी" राधाकृष्णजी "प्रणामी", पं० तिलकधारी मिश्र, श्यामबिहारी दुबे, स्वामी स्वानंदजी, टीकादत्त शर्मा, ब्रह्मचारी पूर्णानंद शास्त्री आदि की पदरचनाएँ यत्रतत्र मिलती हैं। कन्हैया लाल भट्ट—दीन सेवक—लिखित भक्तिपदों का संग्रह "श्री राजनाम स्रोत" है। रामजी भाई कवि श्रीर कृष्णामणिजी की काव्यरचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। रामजी भाई की "प्रणामी गीता" उल्लेखनीय रचना है।

प्रणामी सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त करने वाले गद्यलेखक श्रीर सशोधको मे महाराज आनन्ददासजी, श्री कृष्णप्रियाचार्यजी, पं० कृष्णदत्त शर्मा "सूरि", पं० कृष्णदत्त शास्त्री, पं० श्यामशरणजी, वल्लभदासजी, पं० कृष्णदासजी, पं० प्यारेलाल, मोहनमुकुन्द सत, मंगलदास शर्मा, श्रीमती विमलादेवी मेहता, मुरली दास धामी, घनश्यामदास शर्मा, रणछोड़दास वीरजी, चचलदास धामी, राजदास धामी, पशवतलाल दलाल, डा० डी० जी० पाण्डेय, श्रीमती कृष्णादेवी, टीकानंदजी, देवकरन आदि ने अल्पाधिक मात्रा में योगदान दिया है।

सम्प्रदाय के दार्शनिक मीमांसा ग्रन्थों में "ब्रह्म विज्ञान भास्कर", "आनन्द सागर", "विज्ञान सरोवर", "सृष्टिविज्ञान वर्णन", "प्रणामी धर्मप्रकाश", विराट पट दर्शन, श्रीर "परमधाम प्रणालिका" का विशेष महत्त्व है। "ब्रह्मविज्ञान भास्कर" में महाराज आनन्दसागर ने सृष्टि की उत्पत्ति, कर्मकाण्ड का निरूपण, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और विज्ञान का निरूपण किया। अतः मे साम्प्रदायिक रहस्यों को प्रश्नोत्तर से स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ "ब्रह्मबोध भास्कर" के नाम से भी अभिहित किया जाता है। पं० कृष्णदत्त शर्मा "सूरि" लिखित "विराटपट दर्शन" में विराट के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन तथा विराट के चतुर्दशात्मक भुवनो का विवेचन एवं विराट के नाश के अनन्तर विश्व के सूक्ष्मकारण स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। धाम, स्थान अधिकार, साकार-निराकार आदि का विवेचन इसमें किया गया है। प्रणामी सम्प्रदाय के उपास्य स्वलीलाद्वैत ब्रह्म का समन्वय शास्त्रानुसार स्पष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ में १४ पर्व (प्रकरण) हैं। समाधान पर्व, जो परिशिष्ट भाग में जोड़ा गया है, उसमें साम्प्रदायिक भावना को स्पष्ट किया गया है। रणछोड़दास वीरजी ने "परमधाम प्रणालिक", "सृष्टिविज्ञान वर्णन", "पातानयी परमधाम" में क्षर, अक्षर और अक्षरातीत की सूक्ष्म समीक्षा संभवतः "ब्रह्म बोध भास्कर" के आधार पर ही की है।

श्री कृष्णप्रियाचार्यजी महाराज ने अनेक प्राचीन रचनाओं का मंशोधन किया है। उनके "श्रीमत्तारुण्यनी प्रणालिका" में इग ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति और लय का सशिल्प निरूपण किया है। महाराज भगवदासजी की "श्रोतक दर्शन", "आत्मगोपन" और "आत्मपरिचय" रचनाएं उपदेशात्मक हैं। पं० प्यारंगान ने "असत्यमुग मर्दनम्" "भजन सप्रह" आदि रचनाओं में साम्प्रदायिक तत्त्वों को चित्रित किया है। पं० कृष्णदत्त शास्त्री लिखित "निजानन्द चरितामृत" का सम्प्रदाय ये अपना एक स्थान है।

मध्यकाल से लेकर १९वीं सदी तक का प्रणामी मंतो एव भक्तो का साहित्य अत्यधिक विंगरा पडा है। जिन ग्रन्थागारों में ये रचनाएं भरी पडी हैं, वहां कोई उपयोग होता नहीं और माय ही माय किसी अन्य व्यक्ति को देखने के लिए भी नहीं दिया जाता। अतः विम्बृत जानकारी प्राप्त करना मुश्किल ही जाता है। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है, प्रणामी सम्प्रदाय की साहित्यनिधि ममृद है और छोटी उमर में बने ही अल्पज्ञ में लेकिन मुक्तक प्राप्त कर सकता है।



चतुर्थ अध्याय

सिद्धान्त और साहित्य

(अ) प्राणनाथ का दार्शनिक पक्ष

धर्म और दर्शन मनुष्य की प्राचीनतम संपत्ति है। परमात्मा, आत्मा, सृष्टि, मुक्ति आदि के बारे में उनका-सोचना ही विश्व के विभिन्न धर्मदर्शनो का कारण है। वस्तुतः मानवजन्म के साथ ही धर्म नामक चीज जुड़ी हुई है। वह मनुष्य के जन्म निम्न स्वभाव का एक अविभाज्य अंग है। भले ही धर्म देशकाल के मुताबिक विविधरूप ग्रहण करता रहेगा; लेकिन मनुष्य आज जैसा है वैसा रहेगा और तब तक जगत में धर्म का अस्तित्व रहेगा ही। उसका कभी नाश नहीं होगा। मानववशा-शास्त्र के अध्ययन में धर्म के जो विविध प्राचीनतम स्वरूप देखने में आए हैं, वे धर्म के प्रचलित होने के प्रमाण देते हैं। ईश्वर के अस्तित्व के सदर्भ में मानवजाति प्रायः सहमत है और ईश्वर प्राप्ति के लिए मनुष्य की आत्मा सर्वदेशकाल में प्रयत्नशील रही है। डा० राधाकृष्णन् का कथन उचित है।^१ फिर भी, वे कहते हैं कि धर्म शब्द बहुत व्यापक भावनायुक्त और विशाल अर्थयुक्त शब्द है। धर्म की एक निश्चित सर्व-मान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती।^२ इतना स्पष्ट है कि धर्म और जीवन अभिन्न है तथा वह समस्त जीवनव्यापी तत्त्व है। विशेषरूप से भारतीय जनमानस यही मानता है कि, धर्मों रक्षिति रक्षत। इसी रक्षा के हेतुस्वरूप कई धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन एक प्रचलित कथन है कि धर्मों अनेक हैं; पर धर्म एक है। अर्थात् विशिष्ट धर्मों में भिन्नता होने पर भी इन धर्मों में सामान्य तत्त्व निहित हैं। प्राणनाथ

१. डा० राधाकृष्णन्, धर्मों का मिलन (गु० संस्करण), पृ० ६-१०

२. डा० राधाकृष्णन्, हिन्दू जीवन दर्शन (गु० संस्करण), पृ० ७६-७७

ने परिस्थिति को देखते हुए, इन्ही समान तत्त्वों को प्रकट किया है। डा० गोवर्द्धन शर्मा और प्रो० माताबदल जायमवाल ने इसीलिए कहा है, भारतीय इतिहास के मध्य-काल में श्री प्राणनाथ एक ऐसे महात्मा थे, जिन्होंने तत्कालीन ग्रन्थ धर्म-सुधारको यथा कबीर, नानक, दादू आदि की भाँति राम-रहीम की एकता का कथन करके हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक द्वेष को शांत करने का मदेश ही नहीं दिया, बल्कि हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थ वेद-उपनिषद्, गीता, भागवत, मुसलमानों के धर्म ग्रन्थ कुरान, ईसाईयों के डजील, यहूदियों के जंबूर तथा दाउद पैगम्बर के अनुयायियों के धर्म-ग्रन्थ तोरेत में मौलिक एकता खोजने का प्रयत्न किया।^३ इस प्रकार मध्ययुग में रहते हुए भी विश्वधर्म समन्वय का स्वप्न देखा।^४ अतः प्राणनाथ के दार्शनिकपक्ष का स्वतन्त्र रूप से विवेचन करने से पहले उक्त सभी विदेशी धर्मों और भारतीय-अद्वैतमत-सिद्धांत को दार्शनिक पक्षपात का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करें।

(क) यहूदी, ईसाई, इस्लाम, भारतीय अद्वैतमत सिद्धांत और प्रणामी सम्प्रदाय का तुलनात्मक अध्ययन

यहूदीधर्म प्राचीनधर्म है कि जो एकेश्वरवाद की घोषणा करता है। जेहोवाह अर्थात् यहूदियों के ईश्वर ने जो दश आदेश दिये उनका अगर यहूदी लोग पालन करते रहे, तो उनकी रक्षा करने की शर्त भूसा से की गई। भूसा को दिये गये दश आदेश (Ten Commandments) इस प्रकार हैं--

१. मैं तेरा भगवान हूँ, जिसने तुझे इजिप्त के बदीखाने से मुक्त कराया मैंने सिवा अन्य किसी भगवान की उपासना मत करना। (अर्थात् एकेश्वर उपासना)।
२. धातु पत्थर आदि में से कोई मूर्ति मत बनाना तथा वंसी अन्य मूर्ति के प्रति झुकना नहीं।
३. व्यर्थ में प्रभुस्मरण करना नहीं।
४. छ दिन तक काम करना पर सातवें दिन आराम करना ताकि नौकर-दास पशुपक्षी को भी आराम मिले।
५. माँ-बाप का आदर करना।
६. किसी की हत्या न करना।^५

३. (अ) सप्तसिंधु (पत्रिका), अगस्त, १९६४, पृ० २१

(आ) सं० धीरेन्द्र वर्मा, अजेश्वर वर्मा, हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड), पृ० ५९०

४. आनन्द शंकर ध्रुव, धर्म बखान, पृ० १९८

५. तोरेत, २४-१९ : २१ (Leviticus 24-19.21)

७. व्यभिचार मत करना

८. चोरी मत करना ।

९. किसी के विरुद्ध में झूठी गवाह मत देना ।

१०. पड़ोसियों के घर पर, नीकर पर अथवा पशु पर लोभ मत करना ।

ये सभी आदेश "Thou shalt" से शुरू होते हैं । इस धर्म में ईश्वर को एक अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप माना गया है । शुद्ध नीतिप्रधान एकेश्वरवाद इस धर्म की विशेषता है । यहूदी सतों में से एमोस, होमिया, इसाईवाह, जेरैमियाह और एभेकियल ने यही उपदेश दिया कि, जेहोवाह सिर्फ यहूदियों का ही नहीं परन्तु सब का भगवान है । यहूदियों ने अगर कुमार्ग पर चलना सीखा तो जेहोवाह उन्हें भी सजा देंगे । धर्म पालन करने वालों का है और सारा समाज भले ही कुमार्ग पर चलता हो, लेकिन भगवान के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझकर पवित्र जीवन गुजारना चाहिए । कर्मकाण्ड से भी सदाचार ज्यादा महत्वपूर्ण है । बाह्यचार नहीं, लेकिन अंतरतल की भक्ति भगवान को प्यारी है । सक्षिप्त में इस धर्म ने एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा का विरोध, आत्मा की अमरता, पाप-पुण्य के बदले की मान्यता नीति नियम, पूर्णजीवन आदि बातों को केन्द्र में रखा है ।

लेकिन यहूदियों की पशुबलिक्रिया ६ पर राहुल साकृत्यायन कहते हैं, मूर्ति-पूजक समुदाय तो प्रायः सारा ही इस पशुबलिक्रिया में अत्यन्त श्रद्धालु देखा जाता है; किन्तु अमूर्तिपूजक धर्म भी इससे बचिit नहीं रहा । यहूदियों की भव्य वेदियाँ सदा पशुरक्त में रजित रही हैं । ७

६. तीरेत, २२-२० : २४ {Leviticus 22-20 : 24

That will offer has oblation for all his vows or for all his freewill offerings, which they will offer unto the Lord for a burnt offering Ye shall offer at your own will a male without blemish, of the beeves, of the sheep, or of the goats Blind or broken or maimed, or having a wen, scurvey or scubbed, ye shall not offer these unto the Lord, nor make an offering by fire of them, upon the alter unto the Lord ... Ye shall not offer unto the Lord, that which is bruised, or crushed, or broken or cut,

७ राहुल साकृत्यायन, इस्लामधर्म की रूपरेखा, पृ० १०१-१०२

यहूदियों के दश आदेशों (Ten Commandments) की तरह प्रणामी सम्प्रदाय की दश आज्ञाएँ इस प्रकार हैं—^८

१ धार्मिक नियमों का पालन किये बिना धार्मिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति स्थायी नहीं रह सकती। स्थायी उन्नति के बिना देश तथा समाज कभी सुखी नहीं रह सकता। इसलिये धार्मिक नियमों का अवश्य पालन करें।

२ मांसभक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन, परधन तथा परनिन्दा और अमत्य भाषण इन पाँच दोषों में अवश्य बचें।

३ मनुष्यमात्र में बन्धुभाव उत्पन्न करते हुए जीवात्मा को सत्पथ पर ले जाना चाहिए। जिसमें लोक परलोक सुगम बनें।

४. सत्कर्म और सद्भावना के बिना संसार में सुख और ज्ञानि का आनन्द प्राप्त नहीं होना, यह अवश्य ध्यान रखें।

५. समाजशोषण और असद्भावना को मचने बड़ा पाप समझें।

६. अन्य के साथ उपकार तथा न्यायवृत्ति रखना, मच में बड़ा पुण्य कर्म समझें।

७ अपने लिए कष्ट सहन कर लेना ही तप और दूसरे के प्रति नरम होना ही मचमें बड़ा त्याग है।

८. झूठे आडम्बर में पड़कर साम्प्रदायिक और सैद्धान्तिक तथ्यों को दुगाना महान पाप समझें।

९. धार्मिक ज्ञान के प्रचार में किसी से व्यर्थ वाद-विवाद नहीं करना चाहिये। दुराग्रही को समझाने की चेष्टा भी व्यर्थ ही है।

१०. धर्म प्रचार का उत्तरदायित्व गृहस्थ और मन्त दोनों पर है। इसके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिये।

इतना स्पष्ट है कि प्रणामी सम्प्रदाय के उक्त दश आदेशों में सैद्धान्तिक तत्वों का विवेचन समावेश नहीं हुआ, जबकि यहूदी धर्म के आदेशों में कई सैद्धान्तिक तत्व भी हैं।

मानवधर्म, बधुन्व, मेवा और क्षमा का संदेश देने के लिए ख्रिस्त (Jesus) को यहूदी धर्म में अन्तर्ग होकर नया धर्म स्थापित करना पड़ा। ख्रिस्त ने जब अपनी धार्मिक प्रवृत्ति शुरू की, तब यहूदी के सादुकी, फरोसी के ईसाई और यैरोस्यटी बादों में से फरोसी का विशेष जोर था। फरोसी के बाह्याडम्बर, धर्म के नाम पर धोखेबाजी आदि

से ऊबकर जिसस ने नीतिप्रधान सरल उपदेश देना शुरू किया। सन्त ज्वान ने जिसस को उपदेश दिया कि,^६ “धर्मराज्य का समय निकट आया है अतः पाप न करना और सब के प्रति प्रेम और समानता से बर्ताव रखना। दो वस्त्र हो तो नग्न को एक वस्त्र दे देना। जिस के पास अन्न हो तो भूखों में बांट कर खाना। मादुकी और फरोशी लोगों को अपने पाप के लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए।” ४० दिन की एकान्तसाधना के बाद जिसस ने यही उपदेश दिया कि “भगवान प्रेम और दया का सागर है। वे पिता हैं और सब मनुष्य उनकी सन्तान हैं।” उनके धार्मिक सिद्धांतों में ऐकेश्वरवाद नीतिपूर्णजीवन, ईश्वर का वास्तव्यपूर्ण पितृत्व संबंध, ईश्वर-पिता में अटूट विश्वास, मानवसेवा, क्षमा, अहिंसा, नम्रता और आत्मनिरीक्षण को प्रमुख स्थान मिला है। यहूदियों की हिंसा प्रवृत्ति के विरुद्ध में ईसाई धर्म ने कहा है, मुझे हिंसायुक्त यज्ञ नहीं चाहिए; मैं ईश्वर की कृपा चाहता हूँ।^{१०} जिनको अमृतत्व की प्राप्ति करनी है उनको चाहिए कि माँ-बाप, पत्नी आदि का त्याग करें।^{११} लेकिन यह भी कहा गया है कि देव और द्रव इन दोनों की साथ में साधना नहीं हो सकती—

No man can serve two masters : for either will hate the one and love the other, or else he will hold to the one and despise the other We cannot serve God and mammon ^{१२}

अपने धर्म के प्रचार एवम् प्रसार के लिए शिष्यों को भेजते वक्त यही कहा कि तुम लोग अपने पास सोना चादी या निकम्मे वस्त्र भी मत रखना।^{१३} अर्थात् जिसस ने सन्यासधर्म की भी महत्त्व दिया है। यहूदी और ईसाई धर्म में यही भिन्नत्व है कि यहूदियों के मुताबिक ईश्वर विश्व का मन्नाट है और नीति के नियमानुसार जगत का नियमन करता है। ईसाईधर्म कहता है, ईश्वर पवित्र पिता है और सब पर प्रेम रखता है। यहूदी धर्म ने नियमों और ब्राह्मविधि पर जोर दिया है जबकि ईसाई धर्म प्रेम और आत्मा की पवित्रता पर। यहूदी धर्म में धार्मिक विधि और पूजा का स्थान है, लेकिन ईसाईधर्म ने मानवसेवा के आदर्श को प्रमुख स्थान दिया है। यहूदी धर्म न्याय के सिद्धांतों का कडा पालन प्रस्तुत करता है, लेकिन ईसाई अपकार पर भी उपकार के आदर्श को मानता है। यहूदी धर्म में नैतिक मूल्यों का गहन अन्वेषण नहीं मिलता तथा बदला लेने की वृत्ति के दर्शन होते हैं। ईसाई धर्म ईश्वरी राज्य

६. आनन्द शंकर ध्रुव, धर्म वर्णन, पृ० २०४

१०. New Testament, Matthew, 9:13

११. वही, पृ० १६-२६

१२. Ibid, 6:24

१३. Matthew 10.9-13

का संदेश देने हुए, नैतिक मूल्य का सूक्ष्म विवेचन करता है तथा क्षमा, आत्मभोग आदि मिथ्याता को प्रस्तुत करता है। ईसाईधर्म के अनुसार ईश्वर का राज्य सर्वव्यापी राज्य है। यहूदी धर्म मानता है कि ईश्वर लोगों को सजा देकर मुधारते हैं, लेकिन ईसाई धर्म का कहना है कि लोगों के पाप एवम् दुःख दूर करने के हेतु ईश्वर खुद अपने प्राप पर उनके दुःख सहन कर लेते हैं। ईसाई धर्म ने भी यहूदी धर्म के दण आदेशों को स्वीकार किया है, लेकिन उनको मरल और स्पष्ट भी किया है। ईसाई धर्म के भक्ति आदि तत्त्वों को लेकर डा० कार्लिनर आदि विद्वानों ने यह मिथ्य करने की चेष्टा की कि वृष्ण की गीता पर वाइवन का प्रभाव है। लेकिन इस बात का बालगगाधर तिलक ने युक्तियुक्त स्पष्टन किया है।^{१४} समविन तो यही है कि ईसाई धर्म में भक्तित्व का प्रवेश हिन्दूधर्म के कारण ही हुआ हो। मेन्ट टेरेमा की भक्ति-पद्धति मान भूमिकाओं में विभक्त हुई है। टेरेमा ने प्रथम दो भूमिका में वैराग्य की आवश्यकता बतायी है, तीसरी और चौथी भूमिका में आत्मज्ञान उत्पन्न होनी है, पाचवीं, छठवीं और नानवी भूमिकाएँ परमात्मा के माथ अधिर ऐक्य पाने के लिए हैं। धर्मानु योगविमिष्ट में दिये गये ज्ञानमार्ग की भूमिकाओं में ये कुछ अंश में मिलनी जुनती हैं।

इस्लाम धर्म के मूल में डा० राधाकृष्णन् ने कहा है कि इस्लाम गूढतारहित धर्म है। उसकी ताकत और उसका मोदय उसकी मादगों में निहित है। यह नैतिक धर्म है— इसमें जाति के बंधन नहीं हैं, पुत्रागी या पुगेहित नहीं है, इसमें किसी यज्ञ या विधि-नियमों को जम्हन नहीं पड़ती— व्यावहारिक पक्ष में देखा जाए तो प्रजान्त्य उसका प्रधान स्वर है।^{१५}

इस्लाम एक विश्वधर्म है। ईसाईधर्म की तरह यह धर्म भी एक महापुरष द्वारा स्थापित है और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करता है। इस्लाम का अर्थ ही होता है कि ईश्वर की शरण में जाना। ईश्वर की शरणामति ही इस धर्म का मुख्य रहस्य है। इस्लाम के धार्मिक मिथान ईमान और दीन विभागों में बँटे हुए हैं। ईमान के अन्तर्गत श्रद्धा आदि का और दीन के अन्तर्गत धार्मिक आज्ञाओं का पालन का वर्णन होना है। इस्लामधर्म भी यहूदी और ईसाई धर्म की तरह एकेश्वरवाद के मिथान्त में मानता है। ईश्वर को इस्लाम ने सृष्टि का कर्ता, धर्ता हर्ता माना है—
“वह (ईश्वर) जिसे भूमि में से जो कुछ है (सबको) तुम्हारे लिये बनाया।”^{१६}

१४. बालगगाधर तिलक, श्रीमद्भगवतगीतारहस्य प्रथवा कर्मयोगशास्त्र, पृ० ५८८-५९०

१५. डा० राधाकृष्णन्, धर्मोनु मिलन (गु० मस्करण), पृ० १६४-१६५

१६. कुरान, २:४:२

उसने सचमुच भूमि और आकाश बनाया। मनुष्य को शुद्ध विन्दु में बनाया। उसने पशु बनाये, जिनसे गर्म वस्त्र पाते हो तथा और भी अनेक प्रकार के लाभ उठाते हो।^{१७} वह तुम्हारा ईश्वर सब चीजों का बनाने वाला है, उसके सिवाय कोई पूज्य नहीं है।^{१८} ईश्वर सब चीजों का मूढा एवम् अधिकारी है।^{१९} निस्तन्देह तेरा ईश्वर मनुष्यों के लिए उनके अपराधों को क्षमा करनेवाला है।^{२०} ईश्वर काफ़िरो पर भी क्षमा करता है—इस बात में (हि मुहम्मद) तेरा कुछ नहीं, चाहे वह (ईश्वर) उन (काफ़िरो) को क्षमा करे या उन पर विपद डाले, यदि वह अत्याचारी है।^{२१} परमेश्वर सत्य है।^{२२} परमेश्वर मातापिता स्त्री पुत्रादि रहित है।^{२३}

इस्लाम धर्म में भी परमेश्वर के साकार और निराकार रूप का वर्णन होने की मान्यता है। साकार रूप के मानने वाले कुरान वाक्यों का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि वह (परमेश्वर) जिसने छः दिन में भूमि और आकाश को बनाया, और फिर “अशं” पर विराजमान हुआ।^{२४} कृपालु परमेश्वर “अशं” पर विराजमान हुआ। उसका “अशं” जल पर है।^{२५} जो फरिश्ते अशं को उठाये हैं और जो उसके पास अपने परमेश्वर की स्तुति करते हैं।^{२६} यहाँ पर “अशं” पर विराजमान परमेश्वर और पुराणों के शेषशायी ईश्वर में साम्य दीखता है। इस्लाम में यह सिद्धान्त भी मिलता है कि ईश्वर, निराकार, अनुपम, सर्वव्यापक, अद्वितीय और अति समीप है। कुरान में कहा गया है, निस्तन्देह तुम्हारा ईश्वर एक परमेश्वर है, उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं, वह कृपालु और क्षमाशील है।^{२७} ईश्वर गवाही देता है कि उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं। फरिश्ते तथा ज्ञानी लोग इस पर दृढ़ हैं कि उसके सिवाय कोई पूजनीय नहीं जो शक्तिमान एव ज्ञानी है।^{२८} वह आदि है, वह अन्त है, वह

१७. कुरान, १६:१:३-५

१८. वही, ४:७:२

१९. वही, ३६:६:१०

२०. वही, १३:१:६

२१. वही, ३:१३:८

२२. वही, ३१:३:११

२३. वही, १२१:१:३

२४. वही, ५७:१:४; १०:१:३; १३:१:२; ३२:१:४;

२५. वही, २०:१:५

२६. वही, ४०:१:७

२७. वही, २:१६:११

२८. वही, ३:८:६

बाहर है, वह भीतर है; वह सब चीजों का जानकार है ।^{२६} निश्चय ही भगवान् (अपने) ज्ञान में सब चीजों को घेरे हुए हैं ।^{३०} (नास्तिक) भगवान् की मुलाकात के सदेह में हैं, वह सब व्यापक है ।^{३१} हिन्दू धर्म के देवदूतों जैसी ही इस्लाम की फरिश्तों की कल्पना है । जिस प्रकार पुराणों में परमेश्वर के बाद अनेक देवता भिन्न-भिन्न काम करने वाले माने जाते हैं—पमराज मृत्यु के, इन्द्र वृष्टि के—इसी प्रकार की फरिश्तों की कल्पना है । इस्लामी फरिश्तों में देवेन्द्र और परमेश्वर ने मनुष्य जाति के आदि पिता आदम को बनाया है । कुरान में कहा गया है, जब हमने फरिश्तों को दण्डवत् करने का कहा, तो इस्लामी के अतिरिक्त सब ने किया । इस्लीस बोला—क्या मैं उभे दण्डवत् करूँ, जो मिट्टी में बना है ।^{३२} फरिश्तों की सहायता के सदर्भ में कहा गया है, निस्सन्देह तुम्हारे ऊपर रखने वाले हैं, किरामत् कानिबीन । जो कुछ तुम करते हो, उन्हें (वह) जानते हैं ।^{३३} फरिश्तों में जिब्राईल सब का सरदार है, मीकाईल मृत्यु का और इस्लामाफील प्रलय का फरिश्ता है । वैसा कुरान में निर्देश मिलता है ।^{३४} कुरान में इस्लीम को शैतानों का सरदार बनाया गया है और उसकी सुदना और गर्व के कारण स्वर्ग में निकाल दिया गया ।^{३५} शैतान (पापात्मा) के सदर्भ में कहा गया है, यह केवल शैतान है, जो मुझे अपने दोस्तों से डराना है । वह मेरे स्वामी । शैतान के प्रलोभनों से मैं तेरी शरण में आया हूँ । जब तुम कुरान को पढ़ो, तो दुष्ट शैतान से रक्षा पाने के लिए ईश्वर की शरण मागो ।^{३६} शैतान, फरिश्तों आदि का वर्णन कुरान में मिलता है, लेकिन जीवात्मा के सदर्भ में "बुल्लूहु मिनमि रब्बी" (कह कि जीव मेरे परमेश्वर की आज्ञा से है ।) के बिना कोई उल्लेख नहीं ।

इस्लाम ने मृष्टि-जगत को भ्रमात्मक या मिथ्या नहीं माना । इस्लाम मानता है, आकाश, पृथ्वी और जो कुछ मध्य में है, उन सब को मिथ्या नहीं, एक निश्चित उद्देश्य में उत्पन्न किया गया है ।^{३७} क्यों नहीं परमात्मा पर विश्वास करते, तुम

२६. कुरान, ५७:१:३

३०. वही, ६५:२-५

३१. वही, ५१:६:१०

३२. वही, १७:७:१

३३. वही, ८२:१:१०-१२

३४. वही, २:१२:१-२

३५. वही ७:२:११-१७

३६. वही, ३:१८:४, २३:६:५: १६:१३ ६;

३७. वही, ४६:१:३; ४४:२:६; ४५:३:१;

मृत्क वे फिर उसने तुम्हें जिलाया, और फिर भारता है, तदनन्तर जिलायेगा, अन्त में उसके पास हो जाओगे । वह जिसने तुम्हें और जो कुछ पृथ्वी में है सबको उत्पन्न किया, फिर आकाश पर चढा और उमे सात आकाशो मे विभक्त किया । वह निस्सन्देह सब वस्तुओ का ज्ञाता है ।^{३८} वह जिमने तुम्हारे लिए नक्षत्रो का निर्माण किया, कि जिसमे जगल, समुद्र और अन्धकार मे रास्ता पावें यह जो आकाश से जल गिराता है । फिर उमसे सारी उद्दिमद्यमान वस्तुएँ निकाली । उसमे मैं (प्रभु) ने वनस्पति निकाली, फिर उसमे सयुक्त फलो को उत्पन्न करता हूँ कितने ही खजूर की बाल मे लटकते हैं, अनुपम और सोपम अंगूर, अनार और जैतून के उद्यान । जब वे फलते और पकते हैं तो उनके फलों को देखो । इसमे ही विश्वासी जातियो के लिए प्रमाण हैं ।^{३९} क्या तू नही देखता परमेश्वर ने ही जल उतारा, फिर उसमे अनेक प्रकार के अच्छे फल और पर्वतो मे श्वेत, रक्त, अति कृष्ण आदि अनेक वर्ण की उपत्यका उत्पन्न हुई । कीडे, पशु और मनुष्यो मे बहुत प्रकार के वर्ण वाले प्राणी हैं । इस प्रकार के ज्ञान वाले भगवान मे डरते हैं । परमेश्वर निस्सन्देह क्षमाशील और बलिष्ठ है ।^{४०} मनुष्य को बिन्दु से सिरजा ।^{४१} मैंने पद्म मे ही मनुष्य को बनाया और उमसे पहले प्रज्वलित अग्नि से जान्न (जिन्न) उत्पन्न किये ।^{४२} धन्य है जिसने आकाश मे शिखर, वहा प्रकाशक चन्द्र और प्रदीपो को सिरजा । जिसने छः दिनों मे पृथ्वी, आकाश और जो उनके भीतर हैं निर्माण किये, फिर स्वर्ग पर चढा ।^{४३} क्या अविश्वासियो (नाम्निको) ने नही देखा, आकाश और पृथ्वी पहले डँके थे, फिर हमने उन दोनो को उघाडा और पानी मे सारे प्राणियो का निर्माण किया । आकाश को सुरक्षित छत बनाया; वह उसके प्रमाण हैं, किन्तु (वे) विश्वास नही करते । जिसने रात, दिन, चन्द्र, सूर्य को बनाया (जो कि) सारे आकाश मे परिक्रमा देते है । पूर्वजो मे से भी किसी को अमर नहीं बनाया, यदि तू (मुहम्मद) मरे तो क्या वह (नास्तिक) अमर है । सारे प्राणी मृत्यु के स्वाद रूप है ।^{४४}

३८. कुरान, २:३:८-९

३९. वही, ६:१२:३-५

४०. वही, ३५:४:१-२

४१. वही, १६:१:४

४२. वही, १५:३:१-२

४३. वही, २५:६:२; २५:५:१५

४४. वही, २१:३:१, ३-५

ईसाई धर्म यहूदी धर्मों की तरह दम्याम धर्म भी जीवों के पुनर्जन्म को नहीं मानता। लेकिन क्यामत (प्रलय या पुनरुत्थान) के दिन प्रत्येक जीव अपने पुराने शरीर के माध्यम से उठेगा। उसी दिन उसके पाप-पुण्य का न्याय होगा। उस निर्णय-दिन के विषय में कुरान में निम्नलिखित भाव हैं—जिसने पुण्य कर्म किया, वह अपने लिये, जिसने पाप कर्म किया वह अपने लिये। तेरा ईश्वर किसी सेवक के साथ अन्याय नहीं करता।^{४५} उस दिन कोई दूसरे का भार नहीं उठायेगा, यदि बहुत भार से टूटा जाता कोई पुकारे तो भी उसमें कुछ लेकर कोई न ढोवेगा, चाहे सम्बन्धी ही क्यों न हो।^{४६} जो कुछ उन्होंने अर्जन किया, अवश्य सब प्राणी उसका फल पायेंगे, वह अन्याय से पीड़ित न होंगे।^{४७} फिर भी, किये गये पापों पर पश्चात्ताप होने पर क्षमा प्राप्ति का निर्देश कुरान में है।^{४८} पुण्यात्मा मृत्यु के बाद स्वर्ग की और पापी नर्क की प्राप्ति करती है। पुराणादि की तरह कुरान में भी स्वर्गलोक का वंभवपूर्ण वर्णन है—शुभ कर्म करने वाले विश्वासियों को शुभ-संदेश सुना। उनके लिए उद्यान है, उसके नीचे नहरें बहती हैं, सारे अच्छे फल वहाँ लाये गये हैं। (स्वर्गवाले) उन लोगों को, जैसा कि पहले कहा गया था, वैसा ही यह उपहार दिया है। उसमें उनके लिए सुन्दर स्त्रियाँ हैं, और वह (पुण्यात्मा लोग) सर्वदा वहाँ के निवासी होंगे।^{४९} उद्यान का वृत्तान्त जो उनके लिए प्रतिज्ञात है, वहाँ दुर्गन्ध रहित जल की नहरें दूध की नहरें हैं, जिनका स्वाद नहीं बदलता, शराब की नहरें जो पीने वालों को स्वादिष्ट हैं, फेनरहित मधु की नहरें हैं, उनके लिए वहाँ बहुत से स्वादिष्ट फल हैं।^{५०} तुम और तुम्हारी पत्नियाँ सादर उद्यान में प्रवेश करो। उन (स्वर्गियों) के पास सुनहली घाली और प्याले लिये लडके घूमते हैं, वहाँ सब कुछ है—जो कुछ चाहिए और जो कुछ नेत्रों को अच्छा प्रतीत होता है, तुम लोग सर्वदा वहाँ के वासी रहोगे। यह वही उद्यान है, जिसे तुमने उसके बदले पाया है, जो कुछ कि तुम करते थे। तुम्हारे लिए वहाँ बहुत से स्वादु फल हैं, उनमें से खाओ।^{५१} प्रभु के विरोध में खड़े होने से डरने वालों के लिए दो बाग हैं। फिर तुम कौन कौन से प्रसादों को

४५. कुरान, ४४:६-२

४६. वही, ३५:३-४

४७. वही, ४५:३-१

४८. वही, २:६-२

४९. वही, २:३-४

५०. वही, २:६-२

५१. वही, ४३:७-३-६

भूठलाओगे ? जहा बहुत-नी शाखाएँ है । उन दोनो बागों में दो भरने भरते है । उनमे नाना प्रकार के सारे अच्छे फल है । तकिया लगाये कोमल तूलशय्या पर बैठे हैं, दोनो बागो मे फल लटक रहे हैं । वहाँ मनुष्यो और जिन्नों मे न छूई गई नीचे दृष्टि वाली रमणियाँ है । उन बागो मे दो गर्म पानी के सोते हैं । वहाँ अच्छे अच्छे फल खजूर और अनार हैं । सब उद्यानो मे परिशुद्ध सुन्दरियाँ हैं । संयम मुक्त, गौरवर्णवाली, शामियानो मे हैं । किसी मनुष्य या जिन्न से वह (इससे) पूर्व नही छूई गई हैं । वहा तकिया लगाये हरे चदवे के नीचे बैठे हैं और वहा कोमल बहुमूल्य विछौने भी है ।^{५२} स्वर्ग मे जितना सुख वंभव है, नर्क में उतनी ही विपत्ति और यातना । "कुरान कहता है, जिन्होंने हमारे प्रमाणो पर विश्वास नही किया, थोड़ी देर में हम उन्हें अग्नि मे फेंक देगे । जब उनका एम चमडा जल जायगा, तो उसमे दूसरा हम बदलेगे, जिसमे कष्ट आस्वादन करे ।^{५३} उन सारे शंतान के अनुयायियो के लिए नर्क का वचन दिया गया है, उमके सात द्वार है, प्रत्येक द्वार मे एक मुण्ड बाटा गया है ।^{५४} काफिरो के लिए आग्नेय वस्त्र बनाये गये हैं । उनके सिर पर गर्म जल डाला जाता है । उससे जो कुछ पेट में है और जो चमड़ा है, सब वह जाता है । उनके लिए लोहे के मुद्गर हैं । कण्ठ रक जाने मे वह बाहर निकलना चाहते हैं, किन्तु फिर भीतर डाल दिये जाते है । चक्खो नर्क यातना को ।^{५५} उस अग्नि के समूह मे डाल दे । फिर १४० हाथ लम्बी बेडी मे बाध दे । वह महान परमात्मा पर विश्वास नही करता था । याचको को भोजन देने मे दत्तचित्त न होता था । यहा इमके मिवाय उगका कोई मित्र नही । घाव के धोय जल के सिवाय (कोई) भोजन नही । अपराधी छोड़ दूसरा कोई उसे नही खाता ।^{५६} कुरान मे स्वर्गियो और नर्क निवासियो के बीच कई स्थान पर^{५७} दिये गये वार्तालाप मे ज्ञात होता है कि स्वर्ग और नर्क दोनो पास-पाम हैं । नर्क उत्तर तरफ और स्वर्ग दक्षिण की ओर । दोनो के बीच एक दीवार है । कुरान कहता है, (स्वर्ग और नर्क) दोनो के बीच एक दीवार (घोट) है, उमके ऊपर मनुष्य है, जो प्रत्येक को उनके लक्षणो मे पहचानते हैं । वे स्वर्गियो से बोलते-तुम्हारे लिए नमस्कार है । वे स्वर्ग मे प्रविष्ट नही हुए, वे स्वर्ग के इच्छुक हैं । जब नारकीयो की ओर (उनकी) दृष्टि पड़ी, बोले-हे मेरे स्वामी, हमें

५२. कुरान, ५५:३ ४६-४७

५३. वही, ४ ८.६

५४. वही, १५:२-१६

५५. वही,

५६. वही, ६६:२.२८-३४

५७. वही, ७४:२:६; १०, १२-१४, १६-१८

घपराधी लोगों के साथ न कर ।^{५८} इस दोवार को "इध्राफ" कहा जाता है । कर्मों के मुताबिक ही स्वर्ग या नर्क मिलता है । नेकिन कर्म करने में भी जीव की परतन्त्रता का निर्देश करने वाले घष "कुरान" में है—भगवान जिसे चाहता है मार्ग पर लगाता है, जिसे चाहता है भटकाना है । ईश्वर जिसे मार्ग पर चलने की प्रेरणा करता है, वह मार्ग वाला (होता है), जिसे भटकाना है वह भटकता रहता है ।^{५९} मृत्यु भी भगवान ही के अधीन है—कोई भी जीव परमेश्वर की धामा में लिखित धर्षि के विरुद्ध नहीं मरता है ।^{६०} जो उमकी इच्छा का अनुसरण करता है, प्रभु उसे नानि मार्ग बननाता है । धरने धादेन में धन्यकार में प्रकाश की धीर भेजता है, उसे सीधे मार्ग पर चलनाता है ।^{६१}

इस्नाम की धर्म माधना में नमात्र, कर्मकाण्ड, मातृभाव, कुर्बानी, हज्र, मूर्तिपूजागण्डन, धान्नार विचार (धर्षानु भडरा भडप मद्यान, न्यायध्ववस्था, स्त्री धर्षिकार, दण्ड, मदाधार) धादि धाने महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं । इस्नाम शान्ति धर्म है नेकिन कुरान की एक उक्ति को लेकर उमकी साम्प्रदायिक सहीरुता के मदर्भ में बहुत कुछ कहा जाता है—जिमने इस्नाम में भिन्न धर्म को स्वीकार किया, बदायि वह स्वीकृत न होगा धीर वह धन्यदिन में पाटा उठान वाला है ।^{६२} हिन्दू धर्म में जो स्थान मध्या पूजा या ब्रह्मरज का है, इस्नाम में वही स्थान नमात्र का । प्रत्येक मुसलमान का नमात्र एक निरव-कर्म है—मनात धीर मधमलात के निये सावधान रही । नम्रनापूर्वक परमेश्वर के लिए मडे ही । यदि मनरे में ही तो पंदन या मवार ही (उमें पूरा) कर लो । पुन जब शान्त हो ... " ...तो प्रभु को स्मरण करो ।^{६३} उमके लिए शुद्धि की भी धावगपवता है—हे विश्वासी मुसलमानो ! जब तक जो कुछ तुम कहने हो उमें नहीं ममझने, या तुम नगे में हो, धयवा यात्रा में न होने पर भी धगुद्ध हो, तब तक नमात्र में न जाधो, जब तक कि तुम स्नान न कर लो । यदि रोगी या यात्री की धवस्था में मनोत्पगं या स्त्रीम्यगं किया धीर जन न मिला, तो शुद्ध मिट्टी में उमें हाथ मुद्ध पर फेरो ।^{६४} कर्मकाण्ड के धन्यगंन रोत्रा

५८. कुरान ७ ५:७-८

५९. वही, ७ २० ७

६०. वही, ३ १५ २

६१. वही, ५:३:५

६२. वही, ३ : ८ : ५

६३. वही, ३ ३२ . ३-५

६४. वही, ५ : ७ : १

(उपवास) के मन्दभं में कुरान ने सूचना दी है—हं आस्तिक मुसलमानों । पूर्वजों के समान तुम पर भी कुछ दिनों के लिए रोजा रखने का विधान लिखा गया है, जिसमें कि तुम सयमी हो । फिर जो कोई तुम में रोगी हो या यात्रा में हो तो वह बड़ने में एक गरीब को भोजन दे । जो शुशी से शुभ कर्म करो तो वह मंगल है और यदि उपवास करो तो तुम्हारे लिये शुभ है, यदि तुम जानते हो । रमजान का मास पवित्र है, जिसमें स्पष्ट, मार्ग प्रदर्शक, मानव शिक्षक, मत्यासत्य विभाजक कुरान उतारा गया । इसलिये तुम में से जो कोई रमजान महीने को प्राप्त हो, उपवास करे ।^{६५} भ्रानृभाव जिसका बड़े बल में इस्लाम प्रचार करता है—अवश्य सारे मुसलमान भाई हैं । अतः मिला हो (परस्पर लडते भगडते) भाइयो को । ईश्वर से डरो, कदाचिन् तुम दया के पात्र बनाये जाओ ।^{६६} हज्ज के लिए कहा है—मनुष्यों को हज्ज के लिये बुला, कि तेरे पास दूर से पैदल और ऊँटों पर चले आवें । भगवान के लिये हज्ज और उम्रा पूरा करो । और यदि किसी प्रकार रोके गये तो यथाशक्ति बलिदान (कुर्बानी) करो । जब तक बलि ठिकाने पर न पहुँच जाय शिर की हजामत न बनवाओ । और जो तुम में से रोगी हो या जिसके शिर में पीडा हो, तो उसके बदले रोजा करे या दान दे या बलिदान करे । जब तुम सकुशल हो तो जो कोई हज्ज के साथ उम्रा चाहे यथाशक्ति बलि भेजे, और जो न पाये तो तीन-दिन का उपवास हज्ज के समय में और मात उपवास जब लौटकर जाये, यह पूरे दश (उपवास) उन लोगों के लिये है जिन के घर काबा के पाम नहीं हैं ।^{६७} बलि-कुर्बानीका सिद्धान्त यहूदी धर्म जैसा ही इस्लाम में भी है । अन्तर सिर्फ यही है कि यहूदी धर्म पशुमांस का आग में होम करता है और इस्लाम पशुहत्या करने मात्र में विधि की ममाप्ति में मानता है । फिर भी कुरान में बलि के विरुद्ध में भी कहा गया है—परमेश्वर को उनका मांस और रक्त नहीं पहुँचता, बल्कि तुम्हारा सयम पहुँचता है ।^{६८}

इस्लाम ने मूर्ति पूजा का विरोध किया है—जब कोई शुभ फल प्राप्त हुआ तो उन्होंने (मूर्ति-पूजको ने) मूर्ति में साभी बनाया । किन्तु परमेश्वर उनसे जिनको कि उन्होंने साभी बनाया, बडा है । क्या उन मूर्तियों को (परमेश्वर का) साभी बनाते हैं जो स्वय उत्पन्न है और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती; न अपनी सहायता कर सकती हैं, न अपने भक्तों की । क्या उन (मूर्तियों) के पैर हैं जिन से चलती हैं,

६५. कुरान २ : २३ : १-३

६६. वही, ४६ : १ : १०

६७. वही, २:२४:८

६८. वही, २२:५:४

या उनके हाथ हैं जिनमें पकटनी या घाँव हैं जिनमें देगनी है अथवा कान हैं जिनमें मुननी हैं ।^{१६} मूनिपूजा का गण्डन कई स्थानों पर मिलता है ।^{१७} भद्रयाभय के विषय में इन्द्रनाम कहा है, मुर्दार, मून, शूकरमांस जिनके ऊपर भगवान को छोड़कर दूसरे किसी देवता, प्रतिमा आदि का नाम पढ़ा गया हो वह, तथा दम घटने में, चोट में, मीम मारने में मरे, और जिनमें अन्य किसी मीमाहागी प्राणी ने खाया हो—ये सब तुम्हारे लिए अशुभ है । किसी स्थान के नाम पर बलि चढ़ाना या पामा डालना पाप है ।^{१८} चोरी—हत्या के लिए कुगन भी मना करता है ।^{१९} पगोश हथ में मद्यपान और जुआ को भी महापाप कहा है ।^{२०} परम्योगमन और मूढ नेत्र का निषेध किया है ।^{२१} मयनि के शिष्यों में स्त्री को अधिकारी माना है ।^{२२} अत्याय-पूर्ण वर्तन चोरी और व्यभिचार के अत्यन्त कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है ।^{२३} मदाचार के अन्तर्गत कृत्तव्या को एक अपराध माना गया है^{२४} लेकिन अपव्ययता में खुदा मुग नहीं रहना वैसा कहा गया है ।^{२५} आचार सम्बन्धी उपदेश देने हुए कहा गया है—गुम कर्म कर और क्षमा मान ले, अज्ञानियों में उपेक्षा कर । ईश्वर कलह नहीं पसन्द करता । घोषा हत्या में बढ़कर है ।^{२६} विश्वासात्मक और क्रियात्मक मतधर्मों की दृष्टि में कुगन में कहा गया है—यह पुण्य नहीं कि तुम अपने मुँह का पूर्व या पश्चिम की ओर कर लो, पुण्य तो यह है—परमेश्वर, अन्तिम दिन, देवदूतों किताब और ऋषियों पर श्रद्धा रखना, धन को प्रेमियों, सम्बन्धियों, अनाथों, दरिद्रों, पयिक्तों, याचकों और गर्दन बचाने के लिए देना, उपवास रखना, दान देना, जब प्रतिज्ञा कर चुके तो अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना, विपत्तियों, हानियों और खुदा में सहिष्णु होना; जो ऐसा करना है वही मन्त्रे और मयमा है ।^{२७}

६६ कुरान ७ २४ २-२६

७०. वही, १० ४, ४-६, १२ ५:६-५, १६ ३ ११; १६:७ १; १६:३ २,
२१ ६:२-१७, २६ ५ १, ६६.१ ६

७१. वही, ५ १ ३

७२. वही, ४.५.४

७३. वही, ४.७ १, २:२७.३

७४. वही, ७०.१.२६, ३०, ३:१६ १

७५. वही, ४.२ १, ६.२.२; ४ २६ ५

७६. वही, ६:१.१०; ५.६.४, ६.७.२, २६ १:२

७७. वही, ६:६:४ ७८. वही, ७:३.६

७९. वही, ७:२४:११; २.२५:६. २:२७.१

८०. वही, २:२२.१

हिन्दू और ईसाई धर्म की भांति इस्लाम में भी सम्प्रदाय-उप-सम्प्रदाय हैं। उनमें से सूफीमत अपनी दार्शनिक शैली के कारण अलग-सा दिव्यार्थ पड़ता है। इस्लाम धर्म की रहस्यवादी साधना को ही सूफीमत कहा जाता है। परममर्त्य का ज्ञान प्राप्त करना ही तत्संबन्ध है और इसीलिए मुस्लिम रहस्यवादी अपने को "अल्ल अल-हकक" कहते नहीं सकते।^{५१} सूफियों के सिद्धान्त व्यक्तिगत आध्यात्मिक और महस्यवादी अनुभूति पर ही विशेषतः आधारित हैं। वे बाह्याचार से भी अधिक आन्तरिक शुचिना पर जोर देते हैं। उनके मतानुसार धार्मिक सिद्धान्तों का "सत्य" के साथ मार्मजस्य होना चाहिए और "सत्य" अर्थात् "परमसत्य" का ज्ञान। जो रहस्यवादी साधना से प्राप्त हो सकता है। ई० कंडेने कहा है, मर्मा के लिए परमात्मा सब कुछ है और कुछ भी नहीं। "सब कुछ" इसलिए कि किसी भी वस्तु का अस्तित्व उसे छोड़कर संभव नहीं है और "कुछ भी नहीं" इसलिए कि वास्तविक जगत् की प्रत्येक वस्तु से वह परे है।^{५२} सूफी साधकों के परमात्मा सर्वातीत, निर्गुण और असीम होने पर भी सर्वगत और सगुण भी है। उसको समझने के लिए आन्तरिक प्रेम, भक्ति चाहिए। परमात्मा प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप और अनन्त-मोन्दर्ययुक्त है। पापों से मुक्ति पाने के लिए प्रायश्चित्त को वे महत्वपूर्ण मानते हैं ही, बल्कि आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होने की प्रथम सीढ़ी भी मानते हैं।^{५३} कट्टर इस्लाम की कर्मकाण्ड की विधि के मुताबिक रहने वाले मार्ग को "गरीमत" कहते हैं और सूफी-माधक उसको लांघ गये हैं। उसमें ऊपर वाली भूमिका को "तरिकत" कहते हैं। इस भूमिका के माधक रोजा आदि कर्मकाण्ड को महत्व नहीं देते। हृदय में अपने "मालिक" के प्रति प्रेम-निष्ठा रखते हैं। सूफीमत के प्रेम की तीमरी भूमिका को "हकीकत" कहा जाता है, अर्थात् जिस भूमिका में आत्मतत्त्व का पूरा अनुभव हुआ हो। मिलन के विरह की वेदना जीव के लिए असह्य हो जाती है और फलतः भगवान के प्रति निष्ठा बढ़ती है। इस चौथी भूमिका को "मारिफत" कहते हैं। जुहीरुद्दीन अहमद ने^{५४} भारतीय सूफीमत के सदसर्भ में कहा है कि वे सूफी मार्ग की चार मजिलें और उन मजिलों की चार अवस्थाएँ मानते हैं। प्रथम अवस्था नामून

५१. R.A. Nicholson, The Mystics of Islam (Preface), p. 1.

५२. E. Caird, The Evolution of Theology in the Greek Philosophers, Vol. II, p. 286.

५३. Al-Hujwiri, The Kashf Al-Mahjub (Trans. R. A. Nicholson) p. 294.

५४. Zuhirruddin Ahmed, A Dictionary of Islam, p. 609.

है धर्मात् मनुष्य की प्रवृत्त धर्मव्या । हमने शरीरजन के बानून-नीति-नियमों का पालन करना पड़ता है । प्राथमिक ज्ञान की धारणरचना की दृष्टि में हमका महत्व है । दूसरी धर्मव्या की "मनदूत" कहते हैं जिसमें परिव्रता का मत्तग माधक लेता है । इस धर्मव्या में सामाजिक प्रसोभनों का ग्य.ग कर देरदून-भा वह पवित्र होना है । तीसरी धर्मव्या "धर्मरत्न" में माधक धाध्यागिधर शक्ति प्राप्त करके परमात्मा-मिलन के मार्ग की बाधाओं का दूर हटाना है । यही ईश्वरीयज्ञान (सात्त्विक) की धन्तिम स्थिति है । इस स्थिति को "हरीर" भी कहते हैं । साध्याग्यतया सूरि माधना की सातमखिने मानी जगती है—(१) उदूदिध्वन हमम माधक धाने हृदर की पवित्र करने के प्रयत्न में लगना है जिसमें हि धान की धोर बढ मने । शरीरजन के मुताबिक परमात्मा की सेवा में वह धाने धारको मगा मने । (२) इध. परमात्मा का प्रेम उसके हृदय में उदात्त होता है धोर माधक इस धर्मव्या में फक (मगीरी) को प्रदग रगना है । (३) जुहुद् धर्मात् इस धर्मव्या में सामाजिक इन्ग्रा-नायव का नाग डाता है । (४) सात्त्विक धर्मव्या में वह परमात्मा के गुण, स्वभाव, कर्म का ध्यान करना है । (५) धर्म (भावावेग) धर्मव्या में परमात्मा के "एकत्व" के ध्यान में नीत हो जाता है । (६) हरीरधन धर्मव्या में माधक की परमात्मा के वास्तविक स्वल्प का ज्ञान हो जाता है धोर उस पर माधुर्ग रूप में नदकृत (निर्भर) करता है । (७) धर्म—इस धन्तिम धर्मव्या में परमात्मा के म धार का धनुभक्त करता है ।^{८२} कट्टर इन्नाम के परमात्मा धर्तिनीय धोर मृष्टि के मभी पशायों में मिध्र है, नेकिन सूरीमन के "एकेश्वरवाद" के धनुमार परमात्मा इस दृश्यमान जगत में परिध्याप्त एगमात्र मन्थ है । उस परममता को धरने धारको प्रकट करने के तिल इस धमन् धागजगुर मृष्टि उन्ध्र करती पटी । यह मृष्टि परमात्मा की प्रतिकल्पि है धोर मनुष्य इस मृष्टि का धग । धनः मनुष्य में परमात्मा के मन् धोर धोर मृष्टि के धमन् तन्व निहित है । इधुन धरवी का कहना है कि शाधन धोर दृश्यमान वधुर्ग दोनो 'एक' के ही पूरक हैं धोर उनमें परस्पर धन्यान्वाधय मध्वग्य है । जीव मृष्टिकर्ता की बाध धनिध्वनि है । मनुष्य, परमात्मा का चेतनधंग है, जो इस मृष्टि में प्रकट दीग्य पडता है ।^{८३} जीवधारियों में मनुष्य सर्वोच्च स्थान को प्राप्त किये हुए हैं, नेकिन उसका चर्मोत्कर्ष "पूणं-मानव" में है । पूणंमानव (इन्मानुव-वामिल) पिदाल को इधुन धरवी ने ही नामधरण किया ।^{८४} सूरी धान्या के नरुम (कुप्रवृत्तियों का स्थान) धोर रूह

८२ रामपूजन निवारी सूरीमन—माधना धोर साहित्य, पृ० ३२६

८३ R. A. Nicholson, The Mystics of Islam, p. 155,

८४ R. A. Nicholson, Studies in Islamic Mysticism, p. 77.

(मद्वृत्तियों का स्थान) वैसे दो भेद बताते हैं। भावावेग से परिचालित नफस और विवेकयुक्त रूह का का संगर्ष चलता रहता है। उच्चतर आत्मा जो प्रारम्भ में शरीर में स्थिति है उसके कत्व (दिल), रूह (ज्ञान) और सिरं (अन्न करण) ये तीन विभाग हैं। सिरं विभाग में ही साधक परमात्मा के दर्शन कर पाता है। इस सत्ता में आने से पूर्व आत्मा-परमात्मा अभिन्न थे। परन्तु यहाँ रहते समय वह परमात्मा में निर्वासित रहता है और मनुष्य शरीर उम आत्मा का निर्वासनस्थान है।^{८८} नफस पर काबू पाने के लिए सूफीमत ने मीन, उपवास, एकांतसेवन आदि को आवश्यक समझा है। सूफियों का चरमलक्ष्य है परमात्मा में "एकत्व" को प्राप्त करना और यह संभव है जब साधक अपने आपको जान लेता है। परमात्मा के लिए प्रेम का होना आवश्यक है। जब तक उनकी मेहरबानी नहीं होता साधक के हृदय में प्रेम नहीं होता। उन्हीं की कृपा से प्रेम सुलभ हो जाता है। साधक चाहे जितनी भी चेष्टा क्यों न करे, यह असूक्ष्म वस्तु तब तक प्राप्ति नहीं होती जब तक भगवान की दया नहीं होती।^{८९} सूफियों ने ज्ञान के इल्म (माथारिक) और मारफ (अध्यात्मिक) नामक दो प्रकार माने हैं। परमात्मा का ज्ञान "इल्मेमारिकन" है जिसके द्वारा परमात्मा को उनके पंगम्बर और सन्त जान पाते हैं।^{९०} वास्तव में सूफीमत इस्लाम का अद्वैतवाद है आत्मा और परमात्मा की एकता और उस ऐक्य की सिद्धि के लिए सूफियों के अनुसार परमात्मा के प्रति प्रेम का होना आवश्यक है।

स्वामी प्राणनाथ ने 'सनध', "खुनामा", "मारफत" और क्यामतनामा (छोटा और बड़ा) में इस्लामधर्म का विवेचन किया है। इस विवेचन में उन्होंने प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है। पुराणादि में जिसे "मृत्युलोक" कहा गया है वही कुरान में "नामूत" है, अक्षरघाम के लिए जबरून, विष्णु के लिए अजाजील, रुद्र के लिए अजराइल, ईश्वरसृष्टि के लिए खाम खलक, परब्रह्म के लिए पुरजमाल, अद्वैत के लिए तोहीद, अक्षरातीत उत्तम पुरुष के लिए इल्ललाहु, विज्ञान के लिए मारफत, निर्गुण निराकार के लिए बेदून बेचगुन आदि का प्रयोग कुरान में किया गया है। वस्तुतः सर्व धर्मों का सार है कि ब्रह्म एक है, बुद्धिमान लोग उसे कई नामों से पुकारते हैं—"एक मद्विप्रा: बहुधा वन्दनी।" कुरान और पुराण के अनुसार वह परब्रह्म स्वनीलाद्वैत है। उन्होंने कल्कि अवतार, मेहरी वा ममीहा के आविर्भूत होने की

८८. Zuhiruddin Ahmed, A Dictionary of Islam, p 609.

८९. Al-Hujwiri, The Kashf Al-Mahjub (Trans. R. A. Nicholson), p. 177.

९०. Ibid, p. 16

साध्यता को उपयुक्त षंघो से प्रस्तुत किया ^१ । उन्होंने "क्यामत-नामा" में कुरान, द्वाबीत और तीरेन के मतानुसार "अन्तिम दिन" का विवरण किया है और बताया है कि किस प्रकार, ईसा, मोहम्मद और इमाम का प्रादुर्भाव हुआ । उक्त ग्रन्थ में हिन्दू, ईसाई और मुस्लिम धर्मग्रन्थों में की गई भविष्यवाणी का भी वर्णन किया गया है । हिन्दू महापुरुष ही मानवसंसार कर मकेगा यह बात भी जरूरी है । इसविषय, प्राउज महोदय ने उक्त ग्रन्थ के संदर्भ में कहा है कि, क्यामतनामा के अन्तर्गत इस बात पर विश्वास पैदा करने की कोशिश की गई है कि जिसमें वैसे महापुरुषों से मूर्खों अर्थात् और भक्तिभाव प्राप्त हो ।^{११}

स्वामी प्राणनाथ के अनुसार, इब्रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की कुरानशरीफ के सूक्तव्य हिन्दू के गौणिकः ग्रन्थों ने गूढधर्म में भेद खाने हैं । प्रणामी सम्प्रदाय के "नारतम्य-मन्त्र" (दीक्षा मन्त्र) और कविमह का धर्म ममान है । कविमह शरीफ के मूल शब्दों के गूढ धर्म में और श्रीमद्भागवद्गीता के अध्याय १५ के "द्विगुह्यतम" गुप्त में भी गुप्त ज्ञान में ऐश्वर्य का आभास मिलता है । "ना इलाह इल्लल्लाहु, मुहम्मद रसूलुल्लाहु" कविमह शरीफ के ना + इलाह + इल्लल्लाहु के धर्म की श्रद्धा इस प्रकार की जाय कि "ना" धर सर्वाणि भूतानि, "इलाह" कूटस्थोक्षर और "इल्लल्लाहु" उत्तम पुरुषस्वरूप परमात्मैत्युदाहृत है ।^{१२} गीता में कहा है —

द्वावमोपुष्पीयोके धरश्चाक्षर एव च ।

धरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

उत्तम पुरुषस्वरूप परमात्मैत्युदाहृत ।

यो लोकत्रयमाविश्य विभक्त्यैश्वर्य ईश्वरः ॥

इस प्रकार, धर "ना" और अक्षर "इलाह" दो प्रकार के पुरुष हैं । जितना जड़ चेतनात्मक मिथ्या विराट पुरुष प्रलय में लीन होने वाला धर (ना) है और अक्षर ब्रह्म (इलाह) कूटस्थ नित्य है । इन दोनों में भिन्न अक्षरातीत उत्तम पुरुष (इल्लल्लाहु) है । इस प्रकार कविमह इस्लाम में मुराद अल्लाह त घाला इल्लल्लाहु बरहक तीरीश (अर्द्धत) स्पष्ट होता है । वह परब्रह्म अल्लाह तघाला बिस्मिल्लाहि रहमान निर्देहीमवे सबो बेनमून अर्थात्, दयालय, दयालू, कृपाशील और स्वनीलादित है । ऐसे पूर्णब्रह्म परमात्मा—अल्लाह तघाला के ज्ञान व महिमा का वर्णन वेद, शास्त्र और पुराणों में स्थान-स्थान पर आया है । ऋग्वेद में "इलाह" नाम पर ब्रह्म को स्पष्ट किया है और स्वतन्त्र मूल ही इलाह के नाम पर है ।

११. F. S. Grows, Mathura, A District Memoir (1883)

१२. श्रीमद्भागवद्गीता, अध्याय, १५, श्लोक, १६-१७.

“कुरान” में “एह देनस्मेरातल मुस्तकीम” का अर्थ ऋग्वेद के “अग्ने नय सुपथा” के अर्थ से मिलता है। वेद का “एकमेवद्वितीयं ब्रह्म” और कुरान शरीफ का “बहद हू साशरीकतहू” उसी सीहीद-अर्द्ध अर्थ को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार कुरान का “ला इलाह इल्लाहाहू” और जेन्द अबस्ता का “नेस्त ऐजिद यजदान” का अर्थ भी एक है। गीता में परमात्मा को “ज्योतिषामपित्तज्ज्योतिः” और “प्रभास्मिणशिसूययो” लिखा है और “कुरान” में उसी प्रकार अल्लाहूतआला को “नुस्न अल्लानूर” और “नुस्समा बाते बल अर्ज” कहा है। इस प्रकार “इन्नाइन्जुलना” और “इन्नायेतना” आदि कुरान की सूरतो के द्वारा कुरान-पुराण की चकता पर स्वामी प्राणनाथ ने जोर दिया। इस्लाम और वैदिक धर्म के आपसी विरोधाभासों में भी, निहित एकता को ही अधिक महत्त्व दिया—

नाम सारों जुदा धरे, लई सबो जुदी रमम।

सबमे उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म ॥^{६३}

उसी प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता और ईसाई धर्मग्रन्थ “न्यू टेस्टामेंट” में समान तत्त्वां को ढूँढा जा सकता है। जिस प्रकार गीता में कहा गया है,

प्रियो हि ज्ञानिनोऽप्रियंमह म च मम प्रिय ॥^{६४}

जहाँ में भी यह कहा है कि जो मुझे प्रेम करता है उसके प्रति पिता (भगवान) का भी प्रेम होता है और मैं भी उसको चाहूँगा

(He that loveth me shall be loved by my father and I will love him).^{६५}

गीता में कहा है, मैं सहायक, भगवान, गवाह, शरण और मित्र हूँ।^{६६} उसी प्रकार जहाँ में कहा है, मैं ही पथ-माध्यम, सत्य और जीवन हूँ।^{६७} गीता में कहा है,^{६८} जो मेरी भक्ति सच्ची श्रद्धा से करता है उसमें मैं निवाम करता हूँ और वह मुझ में। जहाँ में है, मैं उसमें हूँ और वह मुझ में है, दोनों में सम्पूर्ण रूप से एकत्व ही जाता है।^{६९} गीता में है, मेरी भक्ति करने वाला अविनाशी है।^{७०} जहाँ में कहा है,^{७१} मुझ में श्रद्धा रखने वाले का नाश नहीं होता, उसकी अमर जीवन प्राप्त होता

६३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० ११, पौ० ३८.

६४. गीता, ७:१७.

६५. New Testament, St. John, 14:21

६६. गीता, ६:१८

६७. New Testament, St. John, 14:6

६८. गीता, ६:२६

६९. New Testament, St. John, 17:23

१००. गीता, ६:३१

१०१. New Testament, St. John, 3:5

है। त्रिम प्रकार गीता में कहा है, मैं आदि, मध्य और अन्त हूँ—प्रथमादिभ मध्य च भूतानामन्त एव च ।^{१०२} उमा प्रकार, ईसाई धर्म कहता है,

I am Alpha, omega, the beginning and the ending.

धर्मान् मैं मध्य, आरम्भ और अन्त हूँ ।^{१०३} गीता में अन्त आरम्भ किया गया है कि मैं तेरी सब पापों में रक्षा करूँगा—

मर्त्वं धर्मान्प्रित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वा सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥^{१०४}

उमा प्रकार मेषू में कहा गया है, वन्द, मुझे पापों में मुक्ति दी जायेगी—

Son, be of good cheer, thy sins be forgiven ^{१०५}

यहूदी धर्म ने ईश्वर की सर्वोपरि, अनन्त, पारब, गहरा, सर्वव्यापी, सर्वत्र और प्रविकारी माना है—

There is no God but him He is the first and the last, was changeth not He is from everlasting to everlasting He is the most high, the Lord of lords, the God of heaven and earth He is the creator and the sustainer He killeth and he maketh alive ^{१०६}

गीता में भी "ममेवाशी जीवन्तोके जीवभूत मनात्मन के साथ कहा गया है—

ईश्वर सर्वभूताना हृद्देश्जुन तिष्ठति ।

धामयन्मवैभूता त्रियन्प्राकृद्धानिमाधया ॥^{१०७}

यहूदी और ईसाई धर्म में यही अन्तर है कि ईसाई मनुष्यावतार रूप ही ईश्वर को मानता है। इस्लाम के भगवान गम्बगी त्रियार की सम्मनना यहूदी (हिब्रू) के साथ दिव्याई पडती है। यहूदी और ईसाई धर्म आत्मा की भावनाशील पर जोर देने हैं जबकि इस्लाम ने आत्मा के संदर्भ में अधिक चिन्तन नहीं किया।^{१०८} यहूदी, ईसाई और इस्लाम में पुनर्जन्म की मान्यता सामान्यतया नहीं है। लेकिन मुस्लिमों ने ऐसे उन्नेय किये हैं और वे इसके लिए आशावादी हैं। अइ में चैतन्य स्वरूप में और उममें देवत्व म उत्तरोत्तर कम चलता है। अन्त मूक्तियों के अनुसार महाचैतन्य

१०२ गीता, १०२०

१०३ New Testament, The Revelation, 1:8

१०४. गीता, १८ ६६.

१०५. New Testament, St Mathew, 9.2.

१०६ Alban G. Widgery, The Comparative Study of Religions, p 123

१०७ गीता, १८ ६१.

१०८ Alban G. Widgery, The Comparative Study of Religions, pp 179, 181.

में एकत्व हो जाना है। अमरता की मान्यता यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों में है। यहूदी में हिन्दूधर्म की भाँति वैकुण्ठ प्राप्ति की ही कामना होती है। इस्लाम में भी 'पुण्यशाली आत्मा ईश्वर के साथ रहती है' ऐसे निर्देश मिलते हैं।

अतः प्राणनाथ ने उक्त सभी धर्मग्रन्थों में निहित एकता को बताते हुए यही कहा कि गुरु देवचन्द का जोश ही जबराइल है, आतम दुलहन ही श्रीठकुरानीजी अर्थात् रह अल्लाह ईसाममीह है, नूर ही तारतम अर्थात् खुदाई इलमके अवतार मेंहदी गाहव है, हुकम ही रसूल अर्थात् मुहम्मद साहब है तथा बुघ मूलवतन ही असराफील है—^{१०६}

श्री ठकुरानी जो रह अल्ला, महमद श्रीकृष्णजीस्वाम।

सलिषा रहैं दरगाहकी, गुरत अक्षर फिरस्ते नाम ॥

बुघजी को असराफील, विजयाभिवद हमाम।

उरभे मव बोली मिने वास्ते, वास्ते जुदे नाम ॥

बाकी तो वेदकतेव, दोउ देत है साख।

अंदर दोउके गफलत, लडत वास्ते भाप ॥

कुरान में भाषा के सम्बन्ध में कहा गया है कि प्रत्येक जाति में नबी उसकी भाषा में ही भेजा गया है, अतः प्रत्येक भाषा पुनीत है।^{११०} अतः विशेष रूप से सूफियो ने जनभाषा का उपयोग किया। उसी प्रकार प्राणनाथ ने भी जनभाषा को "हिन्दुस्तान" (हिन्दी) नाम दिया है और जनसाधारण के लिए अपने विचार उसी में अभिव्यक्त किये हैं।

अद्वैत वेदान्त के सदभं में डॉ० राधाकृष्णन् के विधान उल्लेखनीय है—सूक्ष्म और गभीर विचारों से भरी हुई शंकर की रचनाओं को बिना यह अनुभव किये पढ़ना असंभव है कि हम एक अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और पूर्ण आध्यात्मिकता से युक्त मस्तिष्क के सम्पर्क में है "उनका दर्शन पूर्ण रूप में उपस्थित है, जिसमें न किसी पूर्व की आवश्यकता है और न अग्र की" चाहे हम सहमत हो अथवा असहमत, उनके मस्तिष्क का तीव्र प्रकाश हमें जहाँ हम थे, वहाँ कभी नहीं छोड़ता है।^{१११}

शंकर के मतानुसार ब्रह्म सर्वोच्च परमार्थ सत्य है।^{११२} वह पूर्ण और एकमात्र सत्य है। ब्रह्म जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का कारण है। ब्रह्म स्वयं ज्ञान, ज्ञाता एवम् ज्ञेय है। ब्रह्म का सत् (सत्ता), चित् (ज्ञान) और आनन्दस्वरूप

१०६ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, खुलासा, प्र० १२, चौ० ५३-५४

११०. डॉ० सरला शुक्ल, जायती के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य-शास्त्रज्ञ।

१११. Dr. Radhakrishnan, Indian Philosophy, Vol. II. pp. 446-447

११२. एकमेव हि परमार्थ सत्य ब्रह्म।

(सच्चिदानन्द) लक्षण है।^{११३} लेकिन माया के कारण वही मगुण ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है। वस्तुतः निर्गुणब्रह्म ही परम सत्य है। मगुण-अप्यब्रह्म सोपाधि, सविशेष और मप्रपञ्च है जबकि निर्गुण निरुपाधि, निर्विशेष और परब्रह्म है। सच्चिदानन्द परब्रह्म के लक्षण है। मगुण ब्रह्म की कल्पना उपायना के निमित्त व्यावहारिक दृष्टि में ही की गई है।^{११४} आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। ये दोनों मन, इन्द्रिय, और बुद्धि में परे हैं। ब्रह्म और आत्मा के इस समन्वय को लेकर शंकर ने पारमाधिक, ज्ञानात्मक एवं मून्यात्मक अद्वैत की स्थापना की है। ब्रह्म आत्मा के रूप में घट घट में व्याप्त है। विभुंमं ज्ञो है वही अणु में भी है। गीमित जगत में मगान से समान में मगान निकलने पर बुद्ध नहीं बचना। परन्तु असीम के क्षेत्र में पूर्ण में पूर्ण निकलने पर पूर्ण ही बचना है।^{११५} वस्तुतः जगत की सृष्टि, प्रलय, जीवन और ईश्वर के भेद आदि का व्यावहारिक महत्त्व है। पारमाधिक दृष्टि में एवमात्र ब्रह्म ही परम सत्य है। वही आत्मा भी है और वही अज्ञान के कारण जीव, जगत और ईश्वर के स्वरूप में दिखाई पड़ता है। ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के लिए उन्होंने कार्यकारण के सम्बन्ध में भी विचार किया है। कार्यकारण में भिन्न नहीं है और सत् में अमत् की उत्पत्ति कभी नहीं मानी जा सकती। समस्त जगत स्वयं ब्रह्म है।^{११६} जगत ब्रह्म का विवर्तन है, परिणाम नहीं। ब्रह्म अनिर्वचनीय और निर्वच्यक है।

परमेश्वर की बीज शक्ति का नाम माया है। मायाहित होने में परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती और न वह जगत की सृष्टि करता है। शंकराचार्य ने माया का स्वरूप दिखाने समय लिया है कि माया भगवान की अल्पक शक्ति है जिसके आदि का पता नहीं चलता, वह गुणत्रय में युक्त अविद्याभ्रिणी है। उसका पता उसके कामों में चलता है। वही इस जगत को उत्पन्न करती है।^{११७} माया की आवरण और विशेष दो शक्तियाँ हैं। सृष्टि की तरह माया भी अनादि है। माया के आवरण में वेष्टित ब्रह्म को ही ईश्वर कहते हैं। परमेश्वर का सृष्टिध्यापार लीलामात्र है।^{११८} ईश्वर नित्य, एक और सर्वव्यापी है। वह मोक्ष प्राप्ति में

११३. (अ) तैत्ति० उप० २।१।१ (ब) बृह० उप० ३।६।२८

११४. प० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ४२८

११५. पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णंपूर्णं मुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेव वशिष्यते।

११६. ब्रह्ममेव इदं विश्वं समस्तं इदं जगत्। —मुण्डकशांकर भाष्य १:२-१२।

११७. विवेक चूडामणि, श्लोक ११०

११८. शांकर भाष्य, २/१/३२-३३/ (ब्रह्मसूत्र)

सहायक है। उनके मत में आत्मा और ब्रह्म अभिन्न है।^{११६} आत्मा अव्यभिचारी और स्वयमिन्द्र है। आत्मा निरुपाधि एवम् प्रकृत है जबकि जीव सोपाधि और भेदक है। आत्मा अशरीरी और नित्य मुक्त है तथा जीव शरीरी, मुखदुःख आदि से युक्त है। भकराचार्य के अनुसार आत्मा में अविद्या की मोक्ष है। मुक्ति न तो प्राप्य है और न उत्पाद्य है। वेदान्त मत में मुक्ति की दशा नितान्त आनन्दमयी है। अज्ञान का आवरण हट जाने से ब्रह्म की अनुभूति होती है और आनन्दमयी दशा प्राप्त होती है। यही मोक्ष है।

रामानुज के विशिष्टाद्वैत ने चित, अचित और ईश्वर इन्हीं तीन को परम मूल तत्त्व माने हैं। इस दर्शन में ईश्वर प्रधान अंगी है और 'चित्' तथा 'अचित्' उसके दो अंग या विशेषण हैं। चित् तत्त्व ही जीवात्मा है और वह ज्ञाता, कर्ता एवम् कर्ता है। वह देह इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि में भिन्न है। जीव ईश्वर की प्रेरणा से ही कर्म करता है। जीव और ईश्वर एक नहीं हो सकते। जिस तरह अंश का अस्तित्व अंशों पर या जीवित शरीर का अस्तित्व आत्मा पर निर्भर है, उसी प्रकार जीव भी ईश्वर पर निर्भर है। इसीलिए उनके अनुसार 'तत्त्वमसि' का अर्थ है अन्तर्निहित ईश्वर और विश्वप्रपञ्च का निर्माता ईश्वर दोनों की तात्त्विक एकता है। जीव और ईश्वर में अद्वैत अवश्य है, परन्तु विशिष्ट प्रकारों का अद्वैत है क्योंकि दोनों एक नहीं है।^{१२०} रामानुज ईश्वर और जीव के सम्बन्ध में भेद, अभेद और भेदाभेद तीनों को मानते हैं। भेद का अर्थ है ईश्वर पूर्ण और अनन्त है तथा जीव अपूर्ण और अणु है।^{१२१} अभेद का अर्थ है कि ईश्वर जीवों का आत्मा है, चित् और अचित् में दोनों ब्रह्म में नित्य वर्तमान हैं और सर्वव्यापी ब्रह्म में भिन्न होते हुए भी नित्य अविच्छेद्य रूप से सम्बद्ध हैं। अखण्ड सत्ता के रूप में ब्रह्म सभी जीवों का उपादान स्वरूप है। ब्रह्म और जीव में पूर्ण और अंश का तथा कार्य और कारण का सम्बन्ध है। इसलिये जीव और ब्रह्म में भेदोभेद का सम्बन्ध है। अतः ईश्वर के बिना अरण्य में गये जीव का निस्तार तथा कल्याण नहीं हो सकता, शरणागति ही जीव की आध्यात्मिक उन्नति का साधन है।

११६. केन उप० शांकर भाष्य-५

१२०. प्रकार द्वयविशिष्टैकवस्तुप्रतिपादनेन सामानाधिकरण्य च सिद्धम् ॥

—श्री भाष्य १११।

१२१ (अ) बालाप्रशतभागस्य शतधा कल्पितम्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः सः चानन्त्याय कल्पते ॥

—श्वेताश्वतर उप० ५/६

(ब) मुण्डक उप०, ३/१/६

जीव बद्ध, मुक्त और निर्य, तीन प्रकार के माने हैं। बद्ध जीव उन्हें कहते हैं जिनका सामाजिक जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है। ये १४ भवनों में रहते हैं। ब्रह्मा में लेकर मुक्त जीवों तक सभी हैं और ज्ञान, भक्ति व प्रवृत्ति में मुक्ति चाहते हैं। मुक्त जीव सब लोकों में इच्छानुसार विचरण कर सकते हैं। निर्य जीव अभी समाप्त में नहीं आते। इनके अवतार स्वच्छा में होते हैं।

उन्होंने मृष्टि के विषय में उपनिषदों का विद्वान्त मान्य रखा है। ईश्वर अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत की मृष्टि करता है। ईश्वर की यह मृष्टि उनको ही वास्तविक और मत्प है जितना स्वयं ईश्वर। उन्होंने "प्रवृत्ति" तत्त्व के तीन भेद माने हैं। शुद्ध-मन्त्र मिथ-मन्त्र और मन्त्र-शून्य। प्रलय हुआ में जीव तथा जगत मूढम रूप धारण कर ब्रह्म में लक्ष्मिन हो जाते हैं।^{१२२} उन्होंने ६५ तरह शकाराचार्य के ब्रह्म, जगत, जीव और मुक्ति के विद्वान्तों का संश्लेष किया।

माध्वमत के अनुसार परमात्मा के गुरु धनन्त हैं और प्रत्येक गुण निरवधि तथा निरतिशय है। परमात्मा ही उत्पत्ति, स्थिति, महार, निवृत्त, ज्ञान, धारण, बंध और मोक्ष के वर्ता है। जीव, जड और प्रकृति में वे विनशय है। ध्यानन्द ज्ञान प्रादि कल्याण गुण भगवान के शरीर होने पर भी निर्य और सर्व स्वतंत्र है। मन्त्री परमात्मा की शक्ति है। वह परमात्मा के धरणी रहती है। पर परमात्मा के समान निर्यमुक्त है। गुरु में लक्ष्मी परमात्मा में नून है, परन्तु देवता की दृष्टि में उनके समान व्यापक है। इन मन के अनुसार जीव तीन प्रकार के होते हैं—मुक्तियोग्य, नित्यममारी और तमोयोग्य। देव, ऋषि, रिन्, चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्यरूप मुक्ति प्राप्त करने योग्य जीव है। नित्यममारी जीव कर्मानुसार मुक्त दुःख या ऊँच-नीच गति को प्राप्त कर स्वर्ग, नरक तथा भूतल में विचरण करता है। दैत्य, राक्षस तथा पिशाचों के माय अधम मनुष्य तमोयोग्य जीव है। मुक्तावस्था में जीव परममाध्य को प्राप्त कर लेता है।^{१२३} कर्मशय, उत्क्रान्ति, अधिरादि मार्ग और योग ये मोक्ष के चार प्रकार मान गये हैं। उनमें में भोग के साधोक्त्य, सामोक्त्य और साधुक्त्य प्रकारानुगत साधुक्त्य मुक्ति को, धर्मात् भगवान् में प्रवेश कर उन्ही के शरीर में ध्यानन्द भोग करना, ही श्रेष्ठ माना है। माध्वमत में इस जगत के जन्मादि व्यापार में परमात्मा केवल निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है। पंचविधभेद का जिनमें ईश्वर का जीव से भेद, ईश्वर का जड से भेद, जीव का दूसरे जीव से भेद और एक अड पदार्थ का दूसरे जडपदार्थ में भेद इन पाँचों का

१२२ पं० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृ० २१०

१२३. "निरजन परमं साम्यमुपैति"—मुण्डक उप० ३/१/३

परिज्ञान मुक्तिसाधक माना गया है। ज्ञान मुखादि का अद्यमान परमात्मा में ही होता है और यही तारतम्यज्ञान है।

निम्बार्क के द्वैताद्वैतदर्शन में रामानुजाचार्य के चिन्, अचित और ईश्वर का स्वरूप मान्य गया है। जीव अर्थात् चिन् ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय है।^{१२४} जीव में संसारी एवम् मुक्त दशा में कतृत्व की सत्ता है। ईश्वर नियन्ता है और जीव नियम्य। ज्ञान और भोग की प्राप्ति के लिए जीव ईश्वर के अधीन है। जीव परिमाण में अणु है और प्रतिशरीर में भिन्न है, अतः वह अनन्य है। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, अशी है और जीव उमका शक्तिरूप है अतः अंश है। माया के आवरण में जीव का धर्म-भूतज्ञान संकुचित हो जाता है। भगवान् के प्रगाद में जीव के मच्चे स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।^{१२५} जीव दो प्रकार के माने हैं बद्ध और मुक्त। बद्ध जीव में भी मुक्ती का इच्छुक जीव मुमुक्षु और विषयानन्द का इच्छुक वृत्रुषु कहलाता है उसी तरह मुक्त जीव में प्राकृत दुःख रहित और नित्य भगवान् के स्वरूप का दर्शन करने वाला नित्यमुक्त और अविद्या में उत्पन्न दुःखों के अनुभवों में रहित जीव केवल मुक्त कहलाता है। अचिन् तीन प्रकार होता है-प्राकृत, अप्राकृत और काल।^{१२६} प्राकृत के अन्तर्गत महत्त्व से लेकर महाभूत तक प्रकृति में उत्पन्न जगत का समावेश होता है। अप्राकृत में विष्णुपद या परमपद आदि संज्ञाओंवाला भगवान् का लोक, जो प्रकृति के राज्य से बहिर्भूत जगत है। काल जगत का नियामक होने पर भी भगवान् के अधीन है। ईश्वर समस्त प्राकृत दोषों से रहित और अशेष ज्ञान, बल आदि कल्याणगुणों का निधान है।^{१२७} जीव और ब्रह्म में द्वैताद्वैत सम्बन्ध स्वभाविक और प्रत्येक दशा में नियत है। ईश्वर जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है। कर्मानुसार फल का वितरण करना है। प्रपत्ति से जीवों को भगवदनुग्रह की प्राप्ति होती है और भगवत्साक्षात्कार में जीव समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है। जीवमुक्ति की कल्पना अमान्य है।^{१२८}

आचार्य बल्लभ के शुद्धाद्वैत दर्शन के ब्रह्म को माया में अलिप्त और इसीलिए नितान्त शुद्ध माना है। मायासम्बन्धरहित ब्रह्म ही अद्वैत तत्त्व है। ब्रह्म के सगुण

-
१२४. दशश्लोकी १
 १२५. घर्नादिमायापरित्यक्तरूप त्वेन विदुर्बे भगवत्प्रसादान्—दशश्लोकी २।
 १२६. दश श्लोकी, ३।
 १२७. वही, ४
 १२८. वही, ६

घोर निमुंल द्विविध रूप गत है । ब्रह्म तीन प्रकार के है साधिदेविक, साध्यामिक घोर साधिभौतिक सर्वात् परब्रह्म, अक्षरब्रह्म घोर जगत । श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है घोर मन्विदानन्दमय है । अक्षरब्रह्म में उलम होने के कारण वह पुरयोत्तम है । कायेरागण में भेद न होने से कायेरूप जगत कारण रूप ब्रह्म ही है । जगत का साविर्भाव काये केवल मौलानात्र है ।^{१२६} जगत का गहार भी उन्हीं के अर्थात् है । अर्थात् साधिव्य माया में वस्तुषो की गृष्टि करता है घोर अन्त में अर्थात् में निरोद्धि करता है । यह जगत साधिक घोर अन्त नहीं है । जीव तीन प्रकार के माने गये है—मुक्त, मुक्त घोर गमारी । अविद्यापूर्व जीव मुक्त कहलाता है । मुक्त जीव जीवमुक्त घोर अन्तमुक्त इन दो प्रकार के होने है । मुक्त दशा में जीव अन्त अक्षर को प्रगट कर स्वयं मन्विदानन्द बन कर अन्त प्राप्त करता है । अविद्यामुक्त जीव गमारी कहा जाता है । जीव नित्य है । मुक्ताङ्ग ने जगत घोर गमारी में गुरुम भेद माना है । परमात्मा के गहन में बना हुआ पदार्थ जगत घोर अविद्यायुक्त जीव द्वारा अन्विता पदार्थ गमारी है । जगत की उत्पत्ति घोर विनाश नहीं, लेकिन साविर्भाव घोर निरोभाव मानने है । भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए पुष्टिमानों को सर्वोत्तम कहा गया है । अन्तिमानों ही पुष्टि माने है ।

(ख) प्राणनाय घोर स्वतीसाङ्गत

ब्रह्म—प्रणामी मन्त्रदाय के गिष्ठान्तों पर श्री मद्भगवत तथा भगवद्गीता का विशेष प्रभाव पडा है । ब्रह्म के क्षर, अक्षर घोर अक्षरातीत तीन रूप माने गये है । ब्रह्म के इन तीनों रूपों की बन्धना गीता में प्रस्तुत है^{१२७}

"साविमोपुरयो सोमे क्षरनाक्षरएव ।

क्षर सर्वाणि भूतानि कूटम्बोऽक्षर उच्यते ॥

उत्तम पुरुषस्त्वय परमात्मैर्युपाहृत ।

योनीकप्रयमाविषय, विमल्व्ययईश्वर ॥

यस्मादक्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम ।

अतोऽस्मिन्लोके वेदेऽप्रथित पुरुषोत्तम ॥

क्षर की नश्वर, अक्षर की नित्य अविनाशी घोर अक्षरातीत को परात्पर नियम अलण्ड उत्तमपुरुष मानने है । अक्षर अक्षरातीत में लीलाभेद में स्वरूप भेद है अन्वयात् अ गानी भाव से दोनों एक ही हैं । प्रातीतिक, व्यावहारिक घोर पारमाधिक भेद में क्षर, अक्षर एव अक्षरातीत में तीन प्रकार के पुरुष हैं एव इनकी जीव, ईश्वरी

१२६. सुबोधिनी, तृतीय स्कंध ।

१२७. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १५ १६-१७-१८

और ब्रह्म नाम की त्रिधा सृष्टि है।^{१३१} श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण और ब्रह्म में नितान्त अभेद है। कृष्ण का ब्रह्म रूप में गीता,^{१३२} उपनिषद्,^{१३३} ब्रह्मवैवर्त^{१३४} भागवत,^{१३५} पुराणों में ग्रहण किया गया है। अक्षरातीत परब्रह्म ही आलम्बन-धाराधना करना, यही सर्व श्रेष्ठता-उत्तमता है। इस ब्रह्म को पूर्णतया पहचान लेने से परमधाम की प्राप्ति होती है।^{१३६} क्षर-अक्षर में पर जो अक्षरातीत ब्रह्मस्वरूप है यही प्रणामी सम्प्रदाय में उपास्य है। अतिउज्ज्वल एव अति उत्तम निजधाम में रहने वाले परम प्रकाशक, शुभ्र और शुद्ध सच्चिदानन्द अक्षरातीत ब्रह्म को ब्रह्महस-ब्रह्ममृष्टिर्था पहचानते हैं। सुवर्ण के समान प्रकाश वाले, अपनी इच्छानुसार लीला करने वाले और प्रत्येक प्राणियों के कारणभूत अक्षरातीत परमात्मा को जो विद्वान् जब जान लेता है, तब वह लौकिक सुरदुःखों को त्यागकर परमशान्ति पाता हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।^{१३७} इस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को "स्वलीलाहृत" मानने का हेतु यह है कि श्रुति-स्मृति में ब्रह्म के दिव्य अलौकिक नित्य-विग्रह तथा शक्तिमूह एवं घाम, वन, मरीचर आदि सामग्री का वर्णन किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है, अतः ब्रह्म को अनंत शक्ति घाम-पीलादि सामग्री से पूर्ण ही अर्द्धत मानना चाहिये। छन्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है^{१३८}—

यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितम् ।
त चेद् ब्रयुरस्मिश्चेदिद् ब्रह्मपुरं सर्वं समाहितम् ॥
स एकधा भवति त्रिधा भवति पचधा भवति ।
सप्तधा नवधा चैव पुनश्चेकादश. स्मृतः ॥

अर्थात् इस उपासक के इस लोक में जो भोग्य वस्तु हैं और जो मनोरथ मात्र गोचर यहाँ पर नहीं हैं संपूर्ण वह उम ब्रह्मधाम में निरन्तर विद्यमान है। ब्रह्म और

१३१. श्री भट्टाचार्यकृत निगमार्थ प्रदीप : ५०

"तदेव क्षरमक्षरमक्षरातीतं चेति त्रिविधं पदार्थो भवति । एतद्वये । तत्र क्षरं प्रतीतिकत्वाकान्तम् । अक्षरन्तु व्यावहारिकसत्त्वाकान्तम् । अक्षरातीतं तु पारमार्थिकसत्त्वाकान्तम् । तत्र च त्रिविधा सृष्टिः ।

१३२. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १०:१२ । १३३. कल्याण उप० अंक, श्लोक १२

१३४. ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, अ० १३३ श्लोक ७२

१३५. श्रीमद्भागवत् १:२:११

१३६. श्री भट्टाचार्यकृत निगमार्थप्रदीप, पृ० ४६

१३७. वही, पृ० ६०-६१

१३८. छान्दोग्य उप० ८-३-३ एवम् ७-२६

मुक्त पुरुष दोनों ही ऐश्वर्य, आनन्द और मंकल्प मिद्धि में समान सामर्थ्य रखते हैं । एक से दो हो जाते हैं, तीन, पाँच, मात, दस, सौ दो सौ, महाम्यत्र रूपा में अपनी इच्छानुसार ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं ।

अक्षरातीत परब्रह्म की प्रणामी सम्प्रदाय "श्रीराज" नाम से पुकारता है । "राजते स्वय प्रकाशते य. स राज" के आधार पर जो स्वय प्रकाशमान है, जिसके प्रकाश में क्षर, अक्षर की तमाम समृद्धि मनाय है और प्रकाशित होनी है । उमी पूर्णब्रह्म अक्षरातीत के दो भेद है । प्रथम भेद है स्वलीला अन्तर्गत किशोर स्वरूप का और दूसरे भेद में अपने अंग की ज्योति से सर्वत्र परिपूर्ण अर्द्धत है । उमी तरह महाराणी श्यामा (राधा) तथा बारहजार ब्रह्मागनाओं व अन्य पदार्थ एकरमरूप है^{१३६}—

मनमुख रोजन पिवत ॥ पुरण पाचो इन्दि स्वरूप ॥
 एक एकमे पाच पूरण ॥ एक एक में वल पाचका ॥
 हर एक में पाच गुण ॥ एक एक जाहिर सबमे ॥
 एक एक मे चार वातुन ॥ इनविध रहे मुतनक ॥
 अगल अरम में तन ॥ अरम तन रहें आत्मा ॥
 तरफ सबो बराबर ॥ पुरण कहावे याही बास्ने ॥
 सब विधो ए कादर ॥

पूर्णब्रह्म परमात्मा पाँच लक्षणों से युक्त हैं । ये पाँच लक्षण हैं सत्, चिद्, आनन्द, अनन्त और अर्द्धत ।^{१४०} सत् में हरेक पदार्थ में सत्तात्मक स्वरूप सर्वत्र व्यापक है; चिद् में चैतन्य धर्माविच्छिन्न, निरय, ज्ञानपूर्ण है; आनन्द से धर्माविच्छिन्न, पूर्णतपूर्ण, सदासर्वदा सुखदाना, नित्यलीलाविशिष्ट और सर्वत्र सत्ता मात्र में आनन्द पहुँचानेवाले हैं; अनन्त में धाम, गिरि, नदी, वृक्षादि तथा जो जो पदार्थ हैं वे सब सच्चिदानन्द स्वरूप अर्द्धत अनन्त लक्षणयुक्त विद्यमान हैं तथा अर्द्धत से सदा सर्वदा एक रम, अलण्ड और सर्व पदार्थ एक ब्रह्म स्वरूप होने में अर्द्धत स्वरूप है । पूर्णब्रह्म परमात्मा अक्षरातीत कभी पैदा हुए नहीं । वे सर्वदा अविनाशी, अलण्ड, एक ब्रह्मानन्द स्वरूप है । उनमें पर कुछ नहीं है । क्षराक्षर उनके अशाश स्वरूप स्थित है । अत पूर्ण परिचय में इस अक्षरातीत परब्रह्म कृष्ण की उपामन्त्र के सदर्भ में प्राणनाथ ने कहा है—

१३६. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

१४०. रणदोडदास बीरजी, पाताल ने परमधाम (गुजराती), पृ० १७६

“घटकले एम केम पामीए, ए तो नहि पंच-प्रपंच मारा संबंधी ।
एने पगले न पहुँचाये, जहा चौकस न किजे वित मारा संबंधी ॥
जहां घटकल तहा भ्रांतडी, अने भ्रान्त तो थई घाडी पाल ।
पार जवाये पूरण दृष्टे, इहा रज न समाये पवाल ॥

००

००

००

क्षरथी तोत अक्षर धमा, अने अक्षरातीत कहेवाये ।

मायने जावुं एणे घेर, इहा घटकले केम पहुँचाये ॥ १४१

वैष्णवमतो के अनुसार ही प्रणामी सम्प्रदाय ने भी परब्रह्म अक्षरातीत के परमधाम का वर्णन किया है। उस परमधाम को दिव्य ब्रह्मपुर कहा गया है और यह अद्वैत, अखण्ड एकरम व आनन्दधन सर्व प्रकार की सच्चिदानन्द सामग्री से युक्त है। अक्षरातीत का यह परमधाम अक्षरब्रह्म के धाम के मामने ही—एक ही भूमिका पर स्थित है। दोनों के बीच जमुना की धारा बहती है। अक्षरातीत का यह परमधाम रंग-भुवन है। अक्षरातीत का स्वरूप मत् अर्थात् वस्त्राभूषण, उसी के स्थूल रूप में पुनः मत् चित् और आनन्द में मत् से अक्षरब्रह्म का स्वरूप और आनन्द में श्यामाजी का स्वरूप है और चित् भाव से दोनों स्वरूपों में अन्वयमी रूप से व्यापक है। परमधाम के रंगभुवन आदि पचीसपक्ष ब्रह्मानन्द किशोरीलाल को निरवविहार जगह है और उसके मोदय का अर्थ शब्दातीत है—

न कहेवाय मायामा वाणी, पण माथ मारे कहेवाणी ।

माथ ना ददे रमाडवा तो में शब्दमां वाणी ॥ १४२

वे सुमार लगेवे सुमारमें वास्ते आवने दिल रहन ॥ १४३

सच्चिदानन्दमय उस परमधाम का विपरीत रूप से—अज्ञत्, जड और दुःखमय होकर इस ससार में प्रतिबिम्बित है। १४४ दश रंगमहल की दश भूमिकाओं की कल्पना की गई है। इन दश भूमिकाओं को मूल मिलावा (अथवा आधारभूमिका), भूलवनी (भ्रमिका), मवादभूमिका (या भोग मुक्ति भूमिका), आनन्द (प्रमदस या शयन) भूमिका, शिविका, दोनिका, हिंडोला, दूरदर्शि व भूमिका और सर्वदर्शिका भूमिका अथवा नाम माने गये हैं। मूल-मिलावे के मध्य में रत्नजडित सुवर्ण सिंहा-

१४१. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, कि०, प्र० ६८, चौ० १-२, प्र० १७, चौ० ५

१४२. वही,

१४३. वही, पृ०

१४४. श्री भट्टाचार्यकृत निगमाथप्रदीप, पृ० ५६

मन पर "श्रीराजशशा" (हृत्पुत्राया-पुननम्बर) विराजमान है और उतरी चारों ओर तीन पत्तियों में १० हजार ब्रह्माक्षरों" बँटी है और उनमें परम्पर प्रेममाना होना है। मन प्राणनाथ ने कहा है—

'मना धनी श्रीराजशशा, मना वाता है निरुपाम ।'^{१४४}

दुमरी भूमिका में हृत्पुत्राया और मणियों के बीच मूल पुत्रावनी की सीमा होती है। तीसरी भूमिका में परम्पर प्रेम की चर्चा होती है। चौथी भूमिका में निरुपम प्रथम प्रहर रात्रि पर नृपराजान आदि सीमाएँ होती हैं। पाँचवीं मन्त्र सीमा की भूमिका है। छठवीं भूमिका में सुप्रदाय आदि सर्व प्रकार के वाहन रहते हैं। सातवीं में हृत्पुत्राया की मणियों के साथ मूलन की सीमा होती है। आठवीं भूमिका सातवीं जैसे ही है और अन्ततःपत्ति में दर्जना होती रहती है। नवीं भूमिका में परमात्मा प्रमातृत्वं हरयो का अवलोकन करने है और दशवीं भूमिका के मध्य में स्थित अक्षर पर पूर्णता के दिन गथाहृत्पुत्र-मणिरत्न आदियों का मूल लेने है। मणियों इस पुनःसम्बरण की निषेधा करती है।

अक्षरबद्ध ब्रह्मा, विष्णु महेन्द्र आदि देवों को धरती मना के अन्तर्गत रखने है। अक्षर बद्ध धरती कोटि ब्रह्मादे की धरती माया मन्त्र में उन्नति, स्थिति और मन्त्र करने वाले, ऐश्वर्यादि धनेक सुगमरत्न, अविनाशी सर्वशक्तिमान और निरुपम वैकुण्ठलोक में निवास करने वाले हैं। परमधाम में प्रतिहृत्पुत्रा प्रतिबिम्बित मन मन्त्र का प्रवेश वाली अक्षर बद्ध द्वारा उन्नत होता है, एक देवों अन्दर उन्हीं अक्षर की बिम्ब-प्रतिबिम्बित चेतना धरती है और इन्हीं तीसों में व्यावहारिक और परमाधिक पदार्थ का भी प्रतिनाम होता है।^{१४५} अक्षरबद्ध अक्षरगीत के निरुपम सुबह में दर्शन करने वाले हैं।^{१४६}—

सुन्दर मंजु एक निरुपम एक पंटे एक पावे उडे एक बँटे ।

इन मन्त्रे मन्त्रवानत्री इन, दर्शनहु पावे निरुप ।

अन्तरे मानी नजर करे, प्रणाम करके तिष्ठे सिरे ॥

१४४. प्राणनाथ कुनरुमम्बर (प्रणववाणी) प्रकाश प्र० ३३ चौ० ०

१४५. "जीवना चक्षुर्वचनमागन्तेन प्रतिबिम्बितमस्य नात्पुत्रायां प्रतिबिम्बित-
देव जीवनामध्यामन्मन्त्र । स्वप्नहृत्पु अविहारिकपदार्थप्रतीत्या
स्वप्नहृत्पुत्रिष्ठ स्वान्त्रिक पुत्राणांमन्त्रप्रथम मन्त्रो ध्याम इति न
स्तिविदमन्त्रम ।"—श्री भट्टाचार्ये हृत्त निरुपमप्रदीप', पृ० ५३

१४६. प्राणनाथ, कुनरुमम्बर, प्रकाश, प्र० ३१ चौ० ८१

यह विश्व अक्षर भगवान के द्वारा अधिष्ठित है अर्थात् अक्षर ब्रह्म के द्वारा स्थापित है गुहागत (अक्षरधाम) ब्रह्माण्ड और ही है, वही गुहाचर नामक स्थान महान तेजस्वी और चेतन है ।^{१४८} जिस तरह प्रदीप्त अग्नि से चिनगारियाँ उड़ती हैं इसी तरह अक्षर ब्रह्म से सासारिक जीव पैदा होते हैं और अंत में ही उन्हीं के अन्दर जा कर लीन हो जाते हैं । उनका अण्ड वैकुण्ठधाम माया से परे है । अक्षर ब्रह्म धाम और परमधाम में विचरते हैं और स्वप्न द्वारा तृतीय ब्रह्मांड (इम ससार) में भी मंचरण करते हैं । जिन अक्षर ब्रह्म के अंशांशों प्राणी उत्पन्न होने हैं और मरते हैं । सम्पूर्ण ससार के अधिनायक वैकुण्ठाधिपति विष्णु भगवान् हैं और अण्ड अक्षर भगवान् कालस्वरूप हैं, जो अक्षर भगवान् बालभीलायत् जगन् की उत्पत्ति और प्रलय करते हैं ।^{१४९} अक्षर ब्रह्म काल ससार के प्रणियों का ईश्वर है परन्तु वह सर्वेश्वर प्रभु का शासक नहीं है । वस्तुतः अक्षरब्रह्म अक्षरातीत परब्रह्म का मनस्वरूप है । प्राणनाथ ने कहा है—

‘स्वरूप एक ने लीला दोष ।’^{१५०}

अक्षरब्रह्म के चार स्वभाव हैं—सत् स्वरूप, सबलिक ब्रह्म, अव्याकृत ब्रह्म और केवल ब्रह्म । सच्चिदानन्द अक्षरातीत के चित् के तीन स्वभाव हैं—सत्, चिद् और आनन्द । पुनः इन्हीं तीन भावों के स्थूलपाद में आनन्द स्वभाव अन्तर्गत लक्ष्मीजी और १२ हजार सलियों का स्वरूप है । लक्ष्मीजी में भी ये ही तीन भाव हैं । इस तरह परमधाम और धाम के प्रत्येक अंग में सच्चिदानन्द स्वरूप से अपार लीला प्रसारित है । उरर कहे गये स्वभावों में से प्रथम सत् स्वरूप अक्षरब्रह्म का मनरूप है । कूटस्थ अक्षरब्रह्म के चार अंतःकरण मन बुद्धि, चित् और महकार माने गये हैं ।^{१५१} अक्षरब्रह्म की दो वृत्तियों में से विलास की वृत्ति (मुरता) से अपने धाम में आनन्द-पीडा होनी है और खेन की वृत्ति से अव्याकृत में चेतन का आभास होता है । मत्स्वरूप के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और निर्मल चैतन्य लीलाभेद से पाँच स्थान हैं । निर्मल चैतन्य को तुरीयातीतावस्था कहा जाता है । यही उत्तम जीवों का मुक्तिस्थान है । महाकारण में सदश, चिदश और आनन्दांश तीन मुख्य रूप से विद्यमान हैं । इसको तुरीयावस्था कहा जाता है । कारण के अन्तर्गत सत्-आनन्द भाव से केवल ब्रह्म का शृंगाररस स्वरूप है । सूक्ष्म को अक्षर-ब्रह्म का चित् स्वरूप

१४८. श्री भट्टाचार्यकृत, निगमायं प्रदीप, पृ० ५६

१४९. वही, पृ० ७३

१५०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

१५१. रणछोडदाम वीरजी, श्री परमधाम प्रणालिका, पृ० १७

है। स्थूल में प्रकृतिपुरुष अर्थात् स्त्री का स्वरूप है। इसे मूला माया या घटना प्रकृति कहते हैं। इम मूल स्वरूप में त्रिविध भाव का संज्ञा प्रकाश बना रहा है। केवल ब्रह्म अक्षरब्रह्म की बुद्धि का स्वरूप और शृंगाररम का स्वरूप है। इनके साथ अर्थात् स्वामिनीजी और १२ हजार शक्तियाँ हैं। प्राग्नाथ न स्वामिनीजी को ध्यानयोगमाया कहा है। इनका धाम केवलधाम है। कृष्ण का महाधाम ध्यानयोगमाया का आश्रय ग्रहण करके सन्तान्त्र योगमाया का नया ब्रह्माड बनाकर हुआ। केवल-ब्रह्म अमानन्द है परत इममें अनुपाद की रचना नहीं है। गवतिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षर का दिव्यस्वरूप है या अक्षरब्रह्म का चिन् स्वरूप है। धनन्त्र कोटि ब्रह्माड के बर्हीहर्ता सबिक ब्रह्म है। सर्वात्र ब्रह्म के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण अनुपाद स्वरूप हैं। निर्मल अन्तर अक्षरब्रह्म का प्रतिभाग है और कृष्ण के श्याम-स्वरूप का यही मुक्तिस्थान है। इसी नीमरे मुक्तिस्थान के मर्म में प्राग्नाथ न कहा है,

‘त्रिन त्रिन राह हवरी, लई मान में शक्तियत।

बहिस्त होमी तिनो नीमरी, माने ना जले कथामत।’^{१५२}

महाकारण में केवलब्रह्म के अक्षर रागाकृष्ण का अण्ड महाधाम वर्तमान है। कारणस्वरूप में नित्य गीतोक है। मूदम के अन्तर्गत केवलब्रह्म का ध्यान अक्षर और सबिक ब्रह्म का चिदश मिलकर विज्ञानन्द नहरीक, स्वरूप है। अन्त कूटस्थ अक्षरब्रह्म के हृदयाकाश में उदित यही मुमगना शक्ति है। स्थूल में प्रकृतिपुरुष का निरन्तर वाम है और इसके कारणपाद में पाँच शक्तियों का मूल है, मूदम पाद में पाँच वासना (महाविष्णु, शिवजी आदि) का मूल है और ७२ हजार शक्तियों का मूल है तथा सूत्रपाद में पाँच वेद तथा ऊँकार प्रणव ब्रह्म रोचिनो शक्ति अव्यक्त रूप में है। अर्थात् ब्रह्म अक्षरब्रह्म के अक्षर का अन्तःकरण स्वरूप है। यही प्रतिबिम्बित गीतोक है। अर्थात् ब्रह्म महाकारण, कारण, सूक्ष्म और स्थूल चार पाद है। महाकारण के भी शुद्ध महाकारण, शुद्ध कारण, शुद्ध सूक्ष्म और शुद्ध स्थूल चार पाद है। अर्थात् ब्रह्म का स्थूलपाद ही वेहद भूमिका है।^{१५३}

हृदके पार वेहद, वेहद पार अक्षर, अक्षर वार अक्षरातीत।

इसी स्थूल पाद में प्रणव ब्रह्म और जानशक्ति गायत्री स्थित हैं। प्रणव ब्रह्म के पर और अपर दो स्थान हैं।

१५२ प्राग्नाथ, कुलजमस्वरूप, गुलामा, प्र० ५ चौ० १६

१५३ वही

को समेट कर महाविष्णु में घौर महाविष्णु प्रकृति में विनीत हो जाते हैं। इस प्रकार महाप्रलय में व्यष्टि समष्टि मन का लय हो जाता है—

नारायणरच शम्भुरच सहस्य स्वगुणान् बहून् ।

महाविष्णो विनीतरच ते सर्वे शुद्ध विष्णुवः ।

महाविष्णु प्रहृत्या च मा चंद परमात्मनि ॥^{१५७}

तीना रहस्य

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की तरह प्रणामी सम्प्रदाय में उपास्य परब्रह्म कृष्ण की लीलाधो का महात्म्य है। लीला को छोड़ कर इन ब्रह्मांड की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं। पं. वलदेव उपाध्याय लिखते हैं,^{१५८} भगवान् की लीला भी उन्हीं के समान निश्च, अनन्त तथा चिन्मय होती है। लीला साम्यभाव, मध्य की भावना पर आधारित रहती है, असमानता या वैषम्य के उद्भव होने पर लीला का प्रादुर्भाव कथमपि नहीं हो सकता। लीला के विषय में वैष्णवमनों में पर्याप्त मन विभिन्नता लक्षित होती है। भगवान् के माधुर्य भाव के प्राधान्य होने पर तद्रूप लीला का प्रमंग उठना है।

प्रणामी सम्प्रदाय कृष्ण के तीन प्रादुर्भाव मानता है। उनके प्रत्येक प्रादुर्भाव में स्वरूप और उनकी शक्ति का महत्त्व भिन्न भिन्न प्रकार में माना गया है। कम का वच वामुदेव कृष्ण ने किया, नन्दनन्दन कृष्ण ने नहीं। कृष्ण के प्रथम स्वरूप विष्णु द्वारिका गमन किया था। अश्वत्थ विहारी परमात्मा ने निजप्रथम द्वारा ही ब्रज में माझान् कृष्ण स्वरूप धारण किया था। ब्रजविहारी नन्दनन्दन कृष्ण के प्रथम मात्र कृष्ण ने मथुरालीला की तथा द्वारिका गमन करने वाले कृष्ण मथुरावामी कृष्ण के प्रथम थे। इन प्रकार कृष्ण की त्रिधा लीला की मान्यता है—^{१५९}

- (अ) पृथिवी और मनुष्य को पूर्व जन्म में दिया हुआ वरदान तथा पाप पीडित पृथ्वी का मोक्ष धारण कर वैकुण्ठगमन और अवनार धारण के लिए प्रार्थना के फलस्वरूप वामुदेव कृष्ण का देवकी के यहाँ वागवृह में जन्म हुआ था।
- (ब) वामुदेव त्रिम कृष्ण की गोकुच में पहुँचा घाये और नदजी के तट पर पुत्रोत्सव मनाया गया। यह स्वरूप गोशेरु की सामग्री युक्त था। इसी पर अक्षरात्मा और पुरुषोत्तम अक्षरानीत का आवेग विराजमान हुआ है। इस

१५७. ब्रह्म वै० पु० कृष्णजन्म गूढ

१५८. पं. वलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, पृ० ६४६

१५९. पं० श्रीकृष्णदत्त शास्त्री, सम्प्रदाय सिद्धान्त, पृ० ३३

द्वितीय प्रादुर्भाव के कारणों में, गोलोक में श्रीरामा ग्रीर राधा का कलह, विरजा सखी के साथ कृष्ण का नित्यविहार, राधा ग्रीर श्रीरामा का परस्पर श्रापादि एव देवो सहित नारायणजी का गालोक जाना ग्रीर पूर्णवतार धारण कर सब के दुःख हरने की प्रार्थना करना; परमधाम में अक्षरातीत के साथ शक्तियो का प्रेमसवाद होना, अक्षरब्रह्म के खेल को देखने की इच्छा, अक्षरब्रह्म के मन में अक्षरातीत की किशोरलीला देखने की कामना, मखियों के प्रेम की परीक्षा लेना, उनको अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराना आदि माने गए हैं।

- (स) रासरान्त्रि के बाद पुनः जगत प्रकट होता है ग्रीर उसमें वेदश्रुचा सखीरूप में प्रकट होती है। गोलोक के कृष्ण कृष्णरूप से प्रकट हो प्रातःकाल नन्द के घर से उठते हैं। अपनी माया से उद्भूत यह लीला साल भर की है। रासलीला के समय काल माया के ब्रह्माड का लय हो गया था ग्रीर योगमण्डल की रचना हुई। उसमें गोलोकी स्वरूप कृष्ण का अवतरण हुआ था। यद्यपि नन्दपुत्र कृष्ण में गोपोंकी स्वरूप ग्रीर चारव्यूह सहित विष्णु-भगवान का अश गोकुल में भी विद्यमान था। अधिकार के कारण पूतना प्रवासुर बकासुर का वध भी उन्ही के द्वारा हुआ था। इस प्रादुर्भाव में पूर्णब्रह्म कृष्ण का आवेश मुख्य रूप में था। ११ वर्ष ग्रीर ५२ दिन की कृष्णलीला को ही प्रमुख लीला माना गया है। वही ब्रह्मलीला है। कृष्णलीला के अन्तर्गत रासलीला वास्तवी, प्रतिमासिकी ग्रीर व्यावहारिकी इन तीन भेदों में विभाजित है। वास्तवी अत्रण्ड लीला को ही उत्तम माना गया है। अक्षरब्रह्म के हृदय में जो लीला होती है वह वास्तवी, नित्य वृन्दावन की रासलीला प्रतिमासिकी ग्रीर काल माया के ब्रजमण्डल में हुई रासलीला को व्यावहारिकी कहा जाता है। माराशतः ब्रज मध्यवर्ती गोलोकी ग्रीर द्वारिका कृष्ण की लीलाओं में ब्रजलीला ही सर्वोच्च है क्योंकि ब्रज में कृष्ण के ११ वर्ष ग्रीर ५२ दिन तक के स्वरूप पर अक्षरातीत पूर्णब्रह्म आवेश, अक्षरब्रह्म की आत्मा ग्रीर गोलोक की सामग्रीयुक्त उनका स्वरूप था। वह परमधाम की लीलायुक्त होने में अवतार संज्ञा में भिन्न है।^{१६०}

अक्षरब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म की ब्रह्मलीला देखने की जो इच्छा हुई थी उसके संदर्भ में प्राणनाथ ने कहा है—^{१६१}

१६०. रणछोड़दास बीरजी, परमधाम, प्रणालिका (गुं सं०); पृ० ६१५

१६१. प्रणनाथ, कुलजम स्वरूप

"नव हवने भग का नूर जो, जो है नूरजनाल ।
तब नितके दिन पंदा हुआ, देखुं इगक नूरजमान ॥
कंमा इगक बडी रहमो, कंमा इगक साथ ददन ।
बडी रहता इगक हूमो, इगक हूमो कंमा मवन ॥"

× × ×

या ममये श्री वैकुण्ठ नाथ, इच्छा दर्शन करने माय ।
पक्षर मन उपजी यह भाग, देखुं घनीवी को प्रेम विनाम ॥

श्री वाग्मवी लीला है वह आत्मज्ञान में ही जानी जा सकती है, व्यावहारिकी लीला को उतम जीव जान सकते हैं। किन्तु वाग्मवी लीला के ज्ञान बिना व्यावहारिकी लीला का धीरे धीरे स्वरूपही लीला के बिना वाग्मवी लीला का पदार्थ ज्ञान नहीं होता। इन दोनों लीला के ज्ञान में सच्चिदानन्दरूप एक अन्य भगवद् लीला का आत्मा में प्रकाश होने लगता है। वाग्मवी लीला इस जगत में परे है और उसका प्रतिमाम वृन्दावन की लीला में होने में उसे प्रतिमात्मिकी कहते हैं। वृन्दावन लीला भी नित्य है। रामलीला ही आध्यात्मिकी लीला है। नित्य रामलीला इस जगत में पर नित्य वृन्दावन म्यान में हुई है। डा० मरोत्रिनी कुलश्रेष्ठ ने बताया है कि^{१६२} राधाकृष्ण की नित्य लीला का स्थान अथर्व वृन्दावन है। वाग्मर में वह स्थान अथर्व वृन्दावन में परे है। उम महारामलीला का वर्णन करने हुए प्राणनाथ कहते हैं कि कृष्ण ने शृंगार करके नृत्य किया और सब सन्धियों ने भी उनका अनुसरण किया। बाद्य बजने लगे, दिव्य शब्द की ध्वनि उठी, आभूषणों की आवाज, पग के धुं धर की मधुरध्वनि में माग वातावरण गूँज उठा। इसको देख कर वृद्ध-पशु-पक्षी-नन्दादि मन हो गये, यमुना का जलप्रवाह रुक गया, चंद्रमा की गति स्थिर हो गई—१६३

"भोगनिवा नाचे रगे राचे, शब्द करे टहकार ॥
बादरहा पाये उभा माय, लिपे गुलाटो मार ॥
पशुपंथी वामे मन उलाने, आनंदियो अपार ॥
बनकुलात्रे वेनो आवे, फूलहा करे वेहेकार ॥
चादनियो तेजे जुंजे हेजे, नीधो आबी तिरधार ॥
जल यमुनाना बाध्या घणा, आधा न वहे लगार ॥
पडलदा बाजे शोप विराजे, पहलाले धपकार ॥
मधनी मगे उमग भगे, अजब रगे धधार ॥

१६२. डा० मरोत्रिनी कुलश्रेष्ठ, हिंदी साहित्य में कृष्ण, पृ० १८४

१६३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, रास, प्रकरण, ४, चौ० १८-१३

भूपण वाजे घरणी गाजे, वृन्दावन हो होकार ॥

अमृत वा वाये लहेरी लिये वनराय,

अंग उपजावे करार ॥

एम केटली भाने रमिया खाते, रामत रग अपार ॥

कहे इन्द्रावती एणीपेरे लिजे, चालो मुख तणो सरदार ॥

अवतार निरूपण

गीताकार ने "सभवामि युगे युगे" लिख कर और भागवतकार ने २४ अवतारों को ग्रहण करके कृष्ण को अवतारी और अवतार रूप में प्रचलित किया। कृष्ण को अवतारी समझने के साथ ही उनके ससग में आने वाली प्रत्येक चीज या व्यक्ति अलौकिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। इस मृष्टिचक्र को व्यवस्थित चलाने के हेतु विष्णु के अश्वरूप पृथ्वी पर ये २४ अवतार हुए। इन अवतारों को प्रणामी मम्प्रदाय ने अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार स्फूर्ति अवतार, लीलावतार और पूर्णावतार में विभाजित किया है।^{१६४} गुरु देवचन्द्र को आवेश अवतार और प्राणनाथ को प्रवेश अवतार माना गया है। लेकिन बजलीजा करने वाले कृष्ण विष्णु की सोलहकला, सर्व देवराशि, चार ब्यूह, नव रस इत्यादि युक्त समझा जाता है। उसे ही पूर्णावतार की सजा दी गयी है। प्राणनाथ ने कहा है कि इस कृष्ण के बालचरित्रों एवम् किशोर स्वरूप की लीला का वर्णन किस मुह से कहूँ—^{१६५}

"बाल चरित्र लीला जोवन, कं विद्यस्नेह किये सैयन।

कं लिये प्रेम विलास जो मुख, सो मैं केता कहूँ या मुख ॥"

जिस तरह सूरदास ने ^{१६६} "वेद ऋचा होइ गोपिका हरि सो कियो विहार" बृहदवामन पुराण की कथा के आधार कहा है, उन्ही प्रकार प्राणनाथ ने कहा है—^{१६७}

"कालमायाको यह जो इंड, उपज्यो और जाने माई ब्रह्मांड।

ये तीसरा इंड नया मया जो अब, अक्षर की मुरत का सब ॥

याहि मुरत की मखिया भई, प्रतिबिम्ब वेदऋचा जो कही।

जिनको कह्यो उद्धव ज्ञाने योगारम्भ,

मोक्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिम्ब ॥

१६४. रणछोडदास बीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० २३३ और ६१३-६१४

१६५. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश (प्रकटवाणी)।

१६६. सूरदास, सूरसागर, पृ० ४६२

१६७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश (प्रकटवाणी), ४३-४७

(२) जीव

प्रायः जीव और ब्रह्म के तात्त्विक अमेद को मभी अद्वैतवादी दर्शनों ने मान्य रखा है। मुँडक और बृहदारण्यक उपनिषद में ब्रह्म को अग्नि और जीवों को स्फुलिगो का रूप दिया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद के "एकोऽह बहुस्याम्" के अनुसार ब्रह्म की इच्छा से ही जीवों की उत्पत्ति भी मानी जाती है।^{१६८} प्राणनाथ ने तीन प्रकार की जीवमृष्टि (जीवात्मा) बताया है—

मास्त्रो तीन मृष्ट कही, जीव ईश्वरी ब्रह्म ।
तिनके ठौर जुदे जुदे, देखियो अनुक्रम ॥
जीवमृष्ट वैकुण्ठ लो, मृष्टि ईश्वरी अक्षर ।
ब्रह्म मृष्टि अक्षरातीत लो, शास्त्र कहे यो कर ॥^{१६९}

अर्थात् ब्रह्ममृष्टि, ईश्वरी और जीवमृष्टि इन तीन प्रकारों में से जीवमृष्टि के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। ब्रह्ममृष्टि नित्यमुक्त, ईश्वरी मृष्टि मुमुक्षु और जीवमृष्टि बद्धमुक्त है। परमधाम में इस ससार के मायापूर्ण खेल देखने के लिए आने वाले जीव—ब्रह्ममृष्टि और ईश्वरी-मृष्टि—जीवमृष्टि में अलग है। क्षरपुरुष की यह जीवमृष्टि मेल रूपा है—स्वप्नवत् है और ब्रह्म—ईश्वरी जीवात्माएँ खेल देखने के लिए आने वाली जाग्रत हैं। किन्तु माया के कारण इस संसार के लोग नहीं पहचान सकेंगे—

यामे जीव दो भाग के, एक खेल दूजे देखनहार ।
पहिचान ना होवे काहुको, आडी मायामोह अ धकार ॥^{१७०}

बद्धमुक्त प्रकार के जीव में से जो उत्तम हैं वे भक्ति के नीतिनियमों का पालन करते हैं, उत्तम देवों की उपासना करके स्वर्ग, वैकुण्ठ, कैलास या महानारायण पद तक पहुँच पाते हैं। महाप्रलय तक अपने इष्ट के साथ रहते हैं और अन्त में आध्यात्म में लीन हो जाते हैं। मध्यम प्रकार के जीव देवदेवी की उपासना सकामवृत्ति से करते हैं, ससार की जात में फँसे रहते हैं, अतः स्वर्ग, मृत्यु व पाताल लोक के मध्य में बर्मानुसार आवागमन के चक्र में फिरते रहते हैं। कनिष्ठ जीव हिंसा आदि पापकर्मों में डूबे रहते हैं। वे नर्कयातना भुगतते हैं और ८४ लक्ष योनि

१६८. (अ) बृहदारण्यक उप० २:१:२०

(ब) मुँडक, २:१:१

१६९. प्राणनाथ, बुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० ३७, चौ० २२-२३

१७०. वही

के चक्र में फिरते रहते हैं। जगत के प्राणीपदार्थ भी इसी प्रकार के माने जाते हैं। जीव-सृष्टि अर्थात् बद्धमुक्त जीव मिथ्यात्वयुक्त है और उनके परमधाम मोक्ष अप्राप्त है। बद्धमुक्त जीव मोक्ष का अधिकारी ही नहीं है। उसके लिए तो बैकुण्ठगमन ही माना जाता है।^{१७१}

ईश्वरीय जीव ब्रह्मज्ञान से जाग्रत होता है। यह जीव अक्षरब्रह्म की सुरता स्वरूप है। भक्ति, ज्ञान और कर्म से अक्षरब्रह्म में लीन हो जाता है। अक्षरब्रह्म के ईक्षणादि से प्रवेशान्त जो सृष्टि वह ईश्वरी सृष्टि है।^{१७२} इस प्रकार के जीव का मोक्षधाम अक्षरधाम ही है।

ब्रह्मसृष्टि की वासनायुक्त जीव सर्वोत्तम है। माया का आवरण उनको भी स्पर्श कर लेता है—“ब्रह्मसृष्टि भी घरे मोहके आकार”।^{१७३} यह जीव शाश्वत है। इसको किसी ने मृजा नहीं लेकिन ब्रह्म की शक्तिस्वरूप सनातन है। छान्दोग्य उपनिषद् “मम्मूला सोम्येयाः प्रजाः मदायतना सत्प्रतिष्ठाः” के आधार पर यह सनातन धाम-परमधाम का है और इसकी प्रतिष्ठा भी सनातन है। श्री भट्टाचार्यजी लिखते हैं कि ब्रह्मात्माएँ परस्पर सद्वोध के द्वारा परमधाम को प्राप्त हो जाते हैं। ब्रह्मात्माएँ भी लोकदृष्टि से स्वप्नमयी जीव के समान जन्मवाने तथा मरण धर्मो प्रतीत होती है। वस्तुतः वे वैसी नहीं हैं।^{१७४} ब्रह्मात्मा आन्तरवाह्य ढग से शुद्ध एवं प्रेमलक्षणाभक्ति युक्त होती हैं। प्रणामी सम्प्रदाय का “सुन्दरसाय” (धनुयायी) इसी कक्षा की जीवात्माएँ हैं।^{१७५} इन ब्रह्मात्माओं का परमधाम प्रेमलक्षणा भक्ति है—

जब प्रेम इन्हो आवसी, तब देखेने मुझको ।

प्रेम बिना इन खेलमे, मैं मिलूँ नहीं इनको ॥

खद प्रियनने प्रियसो, किया प्रेम का जोय ।

तो धाममें प्रेम बिना, बैठ ना सके कोय ॥^{१७६}

इसीलिए जो ब्रह्मात्माएँ इस संसार में अवतरित होकर अपना असल स्वरूप

१७१. श्री भट्टाचार्यकृत निगमायं प्रदीप, पृ० ६४ और ६६

१७२. भविष्यकरण पर्व ३-२०-५५

१७३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

१७४. श्री भट्टाचार्य कृत निगमायं प्रदीप, पृ० ६६

१७५. रणछोड़दास बीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ५६६

१७६. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

भूल गयी है और माया में डूब गयी है उनको अपनी निद—अज्ञान, मोह—हटा देने के लिए प्राणनाथ ने कहा है—१७७

निद उढाये जब बिन्होगे आपको, तब जानोगे महोन यु रचानो ।
तब आपई धर पाओगे आपको, देखोगे अलख लखानो ॥

(३) जगत

शंकराचार्य के “जगन्मिथ्या” उद्घोष के परन्तु जगत् का मिथ्यात्व का विषय विक्रम पाता रहा । बल्लभाचार्य ने इस तत्त्व को नये ढंग में देखा । लेकिन प्रणामी सम्प्रदाय ने गीता के अर तत्त्व को ही ग्रहण किया है । अक्षरब्रह्म की परा शक्ति में इस जगत की रचना हुई है . कालमायाकृत यह संसार जगत नाशवन्त है जिम तरह प्रदीप अग्नि में चिनगारियाँ उठती हैं इसी तरह अक्षरब्रह्म में सामागिक जीव पैदा होने हैं और अन्न अन्न में उन्ही के अक्षर जाकर लीन हो जाने हैं . १७८ शक्ति और शक्तिमान के बीच कोई भेद नहीं है अर्थात् दोनों एक ही हैं । परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति में यह सारा जगत् ब्रह्मम्भूत कहा जाता है । इस जगत की उत्पत्ति के लिए अक्षरानीन परमात्मा और उनकी इच्छाशक्ति को महाकारण माना गया है । प्राणनाथ ने कहा है कि जिम वक्त न ईश्वर की उत्पत्ति हुई थी, न मूल प्रकृति पैदा हुई, उन वक्त निकं अक्षरानीन पूर्णब्रह्म थे और उनके मनः स्वभाव का स्वरूप अक्षरब्रह्म थे, इनके सिवाय कुछ नहीं था—१७९

ना ईश्वर ना मूल प्रकृति, ता दिन की कह अगावीनी ।

निज लीला ब्रह्मवाल चरित्र, जाकी इच्छा मूल प्रकृति ॥

भागवत के कथन का ही अनुसरण किया गया है कि आदि देव नारायण प्रकृति में अघिष्टित होकर पचभूतों की सृष्टि करते हैं तथा उनके द्वारा ब्रह्माण्ड नामक विराट की रचना करते हैं—“भूतैर्पंदा पचभिरात्म-मृष्टैर्पुर विगज विरचय तस्मिन् ।” १८० सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था । उसने निश्चय किया कि मैं जगत को उत्पन्न करूँगा और उमने लोक उत्पन्न किये । उमने सूक्ष्म और स्थूल, रूपहीन और रूपवान् पैदा किये । आकाश आत्मा से उत्पन्न हुआ, वायु आकाश में उत्पन्न हुई, अग्नि वायु में उत्पन्न हुई, जल अग्नि में उत्पन्न हुआ, पृथ्वी जल में उत्पन्न हुई

१७७. वही

१७८. श्री मठाचार्यकृत, निगमार्थप्रदीप, पृ० ५८ और ८०

१७९. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, प्रकाश (प्रकटवाणी) .

१८०. भागवत ११-४-३

और पृथ्वी में पीछे उत्पन्न हुए।^{१८१} जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। वह ब्रह्म से उत्पन्न होता है, उसी से पलता है और उसी में समा जाता है। इस जगत को स्वप्नवन् माना गया है और स्वप्न में जिस तरह अघटित घटनाएँ दीख पड़ती हैं। परमात्मा की इच्छा शक्ति में जगत की उत्पत्ति के साथ ही परिणामवाद और विवर्तवाद की चर्चा उपस्थित हो जाती है। महाकारण से विषम सत्तावाले कार्य की उत्पत्ति को विवर्तवाद कहा जाता है। इस दृष्टि से सच्चिदानन्दमय परमात्मा से अमूर्, जड़ और दुःखमय जगत उत्पन्न हुआ। अतः यह जगत परमात्मा का विवर्त-रूप है। ब्रह्म की इच्छामात्र से समुत्पन्न यह पंचभौतिक जगत अष्टावरण सहित प्रकृति पर्यन्त सब अनित्य है।^{१८२} जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय भगवान् के कारण है। गीता के अनुसार ईश्वर की अव्ययता में प्रकृति से जगत उत्पन्न होता है—^{१८३}

“मय ध्यक्षेण प्रकृतिः सृयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते ॥”

लेकिन गीता की तरह इस जगत को नित्य और सत्य नहीं माना गया। ईश्वर जगत की उत्पत्ति के लिए निमित्त कारण तो है ही, परन्तु उपादन कारण भी है।

सृष्टि उत्पत्ति और विक्रम के संदर्भ में माना गया है कि^{१८४} महत्त्व नारायण की अहंकार से आध्यात्मिक की तीन शक्ति, ज्ञान की क्रिया और इच्छा त्रिगुण हो कर प्रकट हुईं। ज्ञानशक्ति स्वात्म अहंकार के रूप में, क्रियाशक्ति राजस अहंकार के रूप में और इच्छाशक्ति तामस् के रूप में प्रकट हुईं। पुनः स्वात्म अहंकार से चार व्यूह-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध-अतःकरण पैदा हुए। राजस् अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। तामस् अहंकार से शब्द तन मात्रा, इस तन मात्रा से आकाश तत्त्व, आकाश से स्पर्श तन मात्रा, स्पर्श तन, मात्रा से वायु तत्त्व, वायु तत्त्व में रूपतन मात्रा, से तेज तत्त्व, तेज तत्त्व से रस, रस तत्त्व से जल तत्त्व से गंध तन मात्रा, गंध तन मात्रा से पृथ्वी तत्त्व-इन दश तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ। इन २४ तत्त्वों में नारायण भगवान् की अंशरूप चेतनाशक्ति मिलकर २५ प्रकृति मानी जाती है। संकर्षण व्यूह अहंकार की सुरता

१८१ एतरेवोपनिषद् १:१ और २:५, ६, ७

१८२. प० कृष्णदत्त शास्त्री, संप्रदाय सिद्धान्त, पृ० ४

१८३ श्रीमद्भगवत् गीता, ९ १०

१८४ रणछोड़दास वीरजी, परमधाम प्रणालिका, १०७-१३७

है। यह महानारायण के चतुर्पाद का अक्षरात्र द्वैत धारण करके मत्तारूप पाताल में उतरी और मोहमागर के अक्षर में पाताल में गर्भोदक की रचना की। उसमें महाप्रकाशवान अण्ड स्वरूप किया। इसीमें में ज्ञेयशायी नारायण की उत्पत्ति हुई। मृष्टि तीन प्रकार की है—महदमृष्टि, मानसीमृष्टि और मैथुनीमृष्टि। चौदह लोक, इस प्रकार माने गये हैं—मनलोक, तपलोक, जनलोक, महारलोक, स्वर्गलोक, विदुलीक मृत्युलोक, अतल, बितल, मुतल, तलातन, रसातल और पाताल। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन अष्टावरणों की वरूपना की गई है। धारण बताया जा चुका है कि मैथुनी, मानसी और महदमृष्टि है उनको चार प्रकार के प्रलय नित्यप्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राक्क प्रलय और आत्यन्तिक महाप्रलय लागू पड़ते हैं। अन्तिम प्रलय में जगत् अख्यात में लीन हो जाता है।

(५) माया

शाकराचार्य ने अविद्या, अज्ञान, अध्याय, अध्यायेय, अनिर्वचनीय, विवर्त, भ्रान्ति, भ्रम, नामरूप, अव्यक्त, बीजगति, भूतप्रवृत्ति आदि शब्दों का प्रयोग माया के अर्थ में ही किया है। विशेषण: माया, अविद्या, अध्याय, और विवर्तको तो एक समानार्थी ही बताया है—“अविद्यालक्षणा अनादि माया।”^{१८५} लेकिन दार्शनिकों ने सूक्ष्म भेद बताया कि अविद्या और माया एक ही तत्त्व के आत्मगत और वस्तुगत पक्ष हैं। जीव में अविद्या है और माया जगत् के नाम रूपात्मक प्रपञ्च की अष्टा है। कृष्ण की परमधाम की-अखण्ड वृन्दावन की रासलीला योगमाया के अधीन हुई थी लेकिन उस वक्त कालमायाकृत ससार नहीं था। योगमाया अतिबलवती एव महाशक्ति मानी गयी है। शायद इन्हीं दो स्वरूपों के लिए “सत्तारक” और “विनाशक” शब्दों का उपयोग भी किया जाता है।^{१८७} परब्रह्म की पहचान कराने में और ससार को पार करने में सहायक होनेवाले सत्तारक माया है और माया को ही सत्य मानकर मोह पंदा कगने वाला स्वरूप विनाशक है। प्राणनाथ का कहना है कि लोग इस विश्व में पूर्ण ब्रह्म की व्यापकता मानते हैं लेकिन वह ससार तो स्वप्नवत् है और पूर्णब्रह्म तो स्वप्नवत् के दृष्टा है, जाग्रत है—^{१८८}

लोक चौदह दशो दिश, मव नाटक स्वाग संनार ॥
 आवे नैन अखण मन वचन, ए मव माया मोह अणकार ॥

१८५. माण्डूक्य उप० शाकर भाष्य ३. ३६

१८६. श्री भट्टाचार्यवृत्त, निगमायं प्रदीप, पृ० ६२-६३

१८७. रणछोड दाम वीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ५०२

१८८. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

क्या दानव क्या देवता, क्या तिर्यंकर अवतार ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश लो, सो भी पंदा मायामोह ब्रह्कार ॥

अर्थात् वास्तविक चैतन्य तो माया से पर परमधाम में ही है। इस विश्व का चैतन्य मायावी है। इस नश्वर जगत के अधीश्वर महानारायण है और वह भी पूर्ण ब्रह्म की माया में ही उद्भूत है। मुक्त जीव-ब्रह्ममृष्टि भी इस जगत में अवतरित होकर माया के धर्म को सत्य मानकर चलते हैं और उन्होंने भी मांहु के आकार धारण किये हैं—

ब्रह्म मृष्टि भी धरे मोहके आकार,

सो इत आवही कौन प्रकार ॥ १८६

जगत मायावी और विनाशशील है। पूर्णब्रह्म की प्रेरणा से अक्षरब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति से उसकी उत्पत्ति हुई है। अतः पूर्णब्रह्म परमात्मा माया से पर है, अक्षरब्रह्म ही माया का बीज है। माया भावरूप है यद्यपि वह यथार्थ नहीं है। यह विज्ञान तिरस्या भी है अर्थात् ज्ञान होने पर वह दूर ही जाती है। अविद्या के नाश होने पर विद्या का उदय होता है। पारमार्थिक सत्ता पर एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है। माया व्यावहारिक जगत में उसी ब्रह्म का विवर्त है। अतः माया अनिर्वचनीय है। माया का आश्रय और विश्रय ब्रह्म है तथापि जिस प्रकार रूप हीन आकाश पर नीला वर्ण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अथवा जिस प्रकार जादूगर अपने जादू से स्वयं प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार ब्रह्म पर माया का भाव नहीं पड़ता। माया अपनी आवरण और विक्षेप शक्ति से असली स्वरूप पर पर्दा डाल देती है तथा विक्षेप से दूरमरी वस्तु का आरोह कर देती है। इस प्रकार माया हमारे लिए भ्रम का कारण होती है। इस माया ने सबको अभित किया है और अपना प्रभाव बढ़ाती रही— १८०

ए माया छे बलवती, अपनी छे मूल धरणी थकी ॥

मुनिजनने मनाव्या हार, शिवब्रह्मादिक नय लहे पार ॥

शुकसनका दिकने नव टली, लक्ष्मीनारायणने फरीवली ॥

विष्णु बैकुण्ठ लीघा माहे, सागरशिखर न मूक्तया क्याए ॥

ए. उपर हवे शुं कहे, बीजा नाम ते कौना लऊ ॥

एने बचने सरवालो थयो, ब्रह्ममाण्डनुं धम सरये भावयुं ॥

तत्व सद्गुणो जीती लीघा, चौद लोक पोताना कीघा ॥

वली लीघुं तत्व मोह, ने थकी उपज्या सद्-कोय ॥

१८६. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप

१६०. वही, रासप्रकरण १, चौ० ४-८

कहे इन्द्रावनी बल्लभा, ए माया छे अति छल ॥
हवे जुद्ध माद्युं छे अमर्शं, एहनुं कह्युं न जाय बल ॥
उगोन यही का चैतन्य आमक बताया है—^{१६१}

“ए चैतन बहावे बूटी जिमी, सो सब जह तुम जानो ।
जो स्थिर कहाये अशंभे, सो चैतन सदा परवान ॥”

वृष्ण परमात्मा माया के इस खेल के दृष्टा हैं एवम् जाता भी—^{१६२}
जा कारण माया रची शास्त्र भी तिन कारण ॥
खेल भी एही देगही, और अर्थ भी लिए इन ॥

यह माया रमरूप, कुटिल, चंचल, चपल है—^{१६३}
एमना आयुध अमृतरमरूप, छलबल बल अचल ।
अगिन कुटिल ने कोमल, चंचल चतुर ने चपल ।
एहनो कैंटलो बहू विस्तार, जोगावर अति अपार ।
मोसु युद्ध माद्युं छे अमाधार, युद्ध करे छे बारवार ।

माया का निरूपण श्रीमद्भागवत् मे ^{१६४} भी कुछ इसी प्रकार का है ।

प्राणामी सम्प्रदाय ने माया को हटाने के लिए, मोह अज्ञान का नाश करने के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति का महत्त्व अकित किया है । विशेषतः प्रेमलक्षणा भक्ति ही एक सर्वोत्तम साधन माना गया है कि जिसमें जीव निर्विरोध ईश्वर प्राप्ति कर सके ।

साधना पक्ष

(१) कर्म, ज्ञान और भक्ति

सुखप्राप्ति मानवप्रकृति में प्रादि काल से ही शायद सशोधन का विषय रहा । यह सृष्टि, यह जीवन प्रादि सब आश्चर्य है और इन सब के पीछे कौनसी प्रेरणा काम कर रही या कौन-सी शक्ति है, यही एक बात ने मनुष्य को उस अलौकिक तत्त्व के प्रति आकर्षित किया है । मनुष्य के बल्ल्याण हेतु कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का प्रादुर्भाव हुआ है । वेद कर्मवाद में मानते हैं । वेद के अनुसार जीव अनेक बार इस ससार में जन्म लेता है और मरता है तथा अगले जन्म में शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ता है । पूर्व जन्म के दुष्ट कर्मों के कारण लोग पाप कर्म में

१६१ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप

१६२ वही,

१६३ वही, रास प्रकरण ।

१६४ श्रीमद्भागवत् पुराण स्कन्द ११-२०

प्रवृत्त होते हैं ।^{१६५} श्रीभद्रभागवत् में सात्विक, राजस् और तामस् कर्मों के संदर्भ में कहा है—

शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठान् लोकानाम्नोति कर्हिचित् ।
 दुःखोदकानियायासांस्तमः शोकोत्कटान्वचित् ॥
 क्वचित्पुमान्क्वचिञ्च स्त्री क्वचिन्नोभयमंदधीः ।
 देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथा कर्मगुणं भवः ॥
 सुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ।
 चरन्विदति^१ यद्दिष्ट दंडमोदनमेव वा ॥
 तथा कामाशयो जीव उच्चावचपया भ्रमन् ।
 उपर्यधो वा मध्ये, वा याति दिष्ट प्रियाप्रियम् ॥^{१६६}

सात्विक कर्म से कभी अच्छा और ज्ञानयुक्त जन्म मिलता है, राजस् कर्मों में परिश्रमपूर्ण और दुःखयुक्त अवतार मिलता है और तामस् कर्मों में अज्ञान-शोकयुक्त जन्म प्राप्त होता है । तामस् कर्मों से विभिन्न निम्न कोटि के जन्म लेने पड़ते हैं । कर्मकांड के मुताबिक जप, तप, तीर्थ, व्रत, उसवाम, यज्ञ, पचाग्नि, चाद्रायन आदि का महत्त्व है । निस्वार्थ मन से और आत्मा को बश में रखनेवाला, सब पदार्थों का त्याग करनेवाला, अपने शरीर के लिए सिर्फ आवश्यक कर्म करने वाला पापमुक्त रहता है । लेकिन प्राणनाथ ने इन बाह्याडंबरों के प्रति तिरस्कार बताया है—

“वेद अगम कहीं उलटे पिछे, निगम नेति करो गया है ।
 खबर न पड़ी बिन्द उपज्या कहा ये, ताये नाम निगम धराया है ॥^{१६७}

× × ×

ज्ञानि अनेक कथे बहु ज्ञान, ध्यानि कइ विध धरे ध्यान ।
 पर ये सब ही शून्य के दरम्यान, छुट्या नाकाहु सशय उन्मान ॥^{१६८}
 उन्होंने चमत्कार करने वालों के लिए कहा—^{१६९}

“आगम भावो मनकी परखो, सुभे चौदे भूवन ।
 मृतकको जीवित करो, पर घर की ना होवे गम ॥”^{१७०}

१६५. ऋग्वेद, ७-८६-६

१६६. श्रीमद् भागवत् ४:२६:२८-३१

१६७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

१६८. वही

१६९. वही

इतना स्पष्ट है कि ज्ञान और भक्ति ये दोनों ही साधना के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। फिर भी ज्ञानयोग की सफलता भक्तियोग के ऊपर आधारित है। कामना और वासना का क्षय और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के निरन्तर प्रयत्न ही ज्ञानयोग के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। इस प्रक्रिया के लिए भक्तियोग की महायत्ना लेनी ही पड़ती है। भक्ति की सहायता के बिना ज्ञानमार्ग विघ्नमय हो जाता है तथा पद-पद पर पतन की आशंका बनी रहती है। ज्ञान भक्ति का पूरक और प्रकाशक है। २०० उपासनात्मक ज्ञान और भक्तियोग दोनों में कोई अन्तर नहीं है। सर्वदा भगवान् का चिन्तन, ध्यान, स्मरण भगवान् में अत्यन्त विश्वास और तत्परायण भजन का नाम उपासना है। उपासना की सफलता के लिए भगवान् के प्रति असीम प्रेम का होना जरूरी है। हृदय के अनुराग के बिना केवल जप, तप आदि से भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती—

“कं आचारी अपरसी, कं करें कीरतन ।
यो खेलें जुदे जुदे, सब पडे बस मन ।
कं कीरतन करें बैठे, कं जाग जगन ।
कं कचे ब्रह्म ज्ञान, कं तपे पच अगिन ॥

× × ×
खेल खेलें आप खदे, मिनो मिनो करें क्रोध ।
जैमे मछ गलागल, छोडे ना कोई ब्रोध ॥” २०१

गीता, मागवन, नारद भक्तिमूत्र, नारद पाचरात्र, शांडिल्य भक्तिमूत्र आदि ग्रन्थों द्वारा कर्मयोगादि से भक्ति का स्थान थोपटना के पद पर पहुँचा और भक्ति की महिमा का प्रसार होता रहा।

(२) भक्ति के प्रकार और प्रेमलक्षणा भक्ति का महत्त्व

भक्ति के स्वरूप के सदर्थ में विभिन्न मत हैं। फिर भी सभी ने प्रेमलक्षणा का स्वीकार किया है। “प्रेमपूर्वमनुष्यान् भक्तिरित्यभिधिमते” आदि श्रुति वाक्यों में यह स्पष्ट है कि शास्त्रों में सामान्यतया प्रेमपूर्वक किये जाने वाले भगवद्दयान को भी भक्ति कहा गया है। श्रीमद्भागवन में भक्ति को “नवधा” कहा है— २०२

श्रवण कीर्तन विष्णोः स्मरण पादमेवनम् ।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ।
इतिपुंसाविता विष्णो भक्तिश्चेन्नव लक्षणा ॥

२००. सायु श्री प्रज्ञानाथजी, कल्याण (भक्तिप्र क), जनवरी, ५८, पृ० ६४

२०१. प्राणनाथ, कुलजमम्बरूप, कलश, प्र० १४, ३३०-३३१, ३४४

२०२. श्रीमद् भागवन, ७:५.२३-२४

आचार्य श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति के चार प्रकार बताये हैं—बंधी, रागानुगा, भावभक्ति और प्रेमाभक्ति ।^{२०३} उसी तरह भक्ति को सगुण और निगुण में भी विभाजित किया जाता है । बंधी भक्ति में जिस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से पूजन-अर्चन, गुरुपादाश्रय, साधुसेवा, भोगादि का त्याग, बहुग्रन्थकलाभ्यास, वैष्णवतिलकमुद्रादिघ-घारण, अर्चना, परिक्रमा, जप, गीत, संकीर्तन, नैवेद्यग्रहण, एकादशी आदि व्रत और जन्माष्टमी उत्सव प्रवृत्तिधारण का जो महत्त्व है उसी प्रकार सगुण भक्ति में भी । लेकिन निगुण-भक्ति परा भक्ति है और उसमें श्रवण, कीर्तन, ध्यान, धारणा, समाधि, प्रपत्ति, व्रत, नमस्कार, दान, पूजा आदि पराभक्ति के साधन मात्र हैं ।^{२०४} शंकराचार्य के स्थूला और सूक्ष्मा भेद, वैष्णव आचार्यों ने गौणी, बंधी, रागात्मिका रागानुगा, उत्तमा भक्ति, प्रेमाभक्ति, साधन भक्ति आदि भक्ति के प्रकार बताये हैं । किन्तु भागवत के “भक्त्या संजातया भक्त्या” वचनानुसार साध्यसाधन भेद से दो प्रकार हैं ।^{२०५} नवधा भक्ति प्रेमलक्षणा भक्ति को सिद्ध करनेवाली होने के कारण “साधनभक्ति” के अन्तर्गत है और प्रेमलक्षणा भक्ति को “साध्य भक्ति” कहते हैं । जैसे पतिव्रता नारी के लिए पति ही एक मात्र परमस्वार्थकेन्द्र है वैसे भक्त के लिए एक भगवान ही मात्र परमस्वार्थकेन्द्र हो—

पतिव्रता नारी ते पतिने पूजे, मेवे अनेक पेरे ।

पोड पर वचन सुणे जो वाकू तो देहत्याग त्यहा करे ॥^{२०६}

इसीलिए, भक्त भगवान को वेश्या की तरह बारबार नहीं बदलता—

“पतिव्रतापणे सेविए, न थडए वेश्या जेम ।

एक मेली अनेक कीजे, तेनी घाय घखीवट केम ॥^{२०७}

इस तरह भगवान ही साधनरूप और वही फलस्वरूप है और इसीलिए इस भक्ति को “ऐकान्तिकी” भी कहते हैं । गुणाभेद से तामसी, राजसी और सात्विकी भक्ति ही पराभक्ति में परिणत हो जाती है । “देवी भागवत” में गुणश्रवण, नाम-कीर्तन, एकलीनता आदि प्रेमलक्षणा के लक्षण बताये हैं—

अधुना तु पराभक्ति प्रोच्यमान निबोध मे ।

मद्गुणश्रवण नित्य मम नामानुकीर्तनम् ॥ ।

२०३. आचार्य श्रीरूप गोस्वामी, भक्ति रसामृत सिन्धु, पृ० ४।१

२०४. शांडिल्य भक्तिमूत्र, ७१, ५६-७०

२०५. श्री मद् भागवत, ११:३:३१

२०६. प्राणनाय, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० ६४, ७८१ चौ०

२०७. वही ।

कल्याणगुणरत्ना नामकराया मयि स्थिरम् ।

चेतनो वर्तन चैव तैलधारा सम ॥^{२०८}

प्रेमलक्षणा भक्ति में भक्त भगवान में अभिन्नत्व की स्थिति पर पहुँच जाता है ।^{२०६} प्रणामी सम्प्रदाय के अनुसार यही एक सर्वोत्तम भक्ति प्रकार है । आ० मधुसूदन मरस्वती ने भक्ति की उत्पत्ति के पूर्व ११ भूमिकाओं को बताते हुए अविम भूमिका में पराभक्ति को ही माना है ।^{२१०} प्रेमभक्ति में आत्मा पवित्र हो जाय पीछे फिर ध्यान की भी जरूरत नहीं, क्योंकि उस दशा में पहुँचने पर आत्मा और परमात्मा का मयोग हो जाता है ।^{२११} प्रेमलक्षणाभक्ति ज्ञान-विज्ञानपूर्ण एवं परम प्रेमरूपा है क्योंकि "मैं कौन हूँ" इस प्रकार की जिज्ञासा का प्रश्न होते ही परात्मज्ञान की जिज्ञासा होती है और उसकी प्राप्ति के प्रेम का फवारा ही उड़ता है । इसलिए प्राणनाथ ने कहा है—

पहले आप पहचानो रे साधो, पहले आप पहचानो ।

बिना आप बिन्हे पारब्रह्मको, कौन कहे मैं जान्यो ॥^{२१२}

× × ×

इसक लगाए पिआसो पूरा, खेले अबला होए अहिंसित ।^{२१३}

× × ×

पुरप पूजा कोई बाहू न कहावे, मत्रो भजिया कर भरतार ।^{२१४}

× × ×

प्रेममें भीगे रहिए, पीउसो आनन्द घन ।^{२१५}

भावना से डूब-सा जाता है और प्रेम के कारण भक्त पलमात्र में परमात्मा के पास पहुँच जाता है—

पथ हों कोटि कल्प, प्रेम पहुँचावे मिचें पलक ।^{२१६}

२०८. देवी भागवत ७.३७: ११-१२

२०९. वही, ७:३७:१४

२१०. आ० मधुसूदन मरस्वती, भक्ति रसायन, प्रथम उल्लास, कारिका ३२-३४

२११. श्री भट्टाचार्यकृत, निगमाथंजरीप, पृ० १६

२१२. प्राणनाथ, कुलजमल्वरूप, किरतन, प्र० २, चौ० १

२१३. वही, किरतन, प्र० ६, चौ० ७८

२१४. वही, किरतन, प्र० ५३, चौ० ५७६

२१५. वही, किरतन, प्र० ३५, चौ० ४३४

२१६. वही,

प्रियतम कृष्ण की प्राप्ति के लिए दुःख भी आवश्यक है—२१७

दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक ।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेवे मिलिए हक ॥

शायद इसीलिए भक्त की प्रियतम के प्रेम में कितनी मग्नता है—

रम मगन भई सो क्या गावे ।

विचली बुध मन चित मनुआ, ताए सबद सीधा मुख क्यों आवे ।
विचले नैन श्रवन मुखरमना, विचले गुन पख इन्द्री अंग ।
विचली भात गई गत प्रकृत, विचल्यो सग भई और रग ।
विचली दिमा भवम्या चारो विचली मुध ना रही मरीर ।
विचल्यो मोह अहकार मूल थें, नैनो नीद न आवे नीर ।
विचल गई गम बार पारकी, और अंग न कहुए सान ।
विधा रममे यो भई महामत,

प्रेम मगन क्यों करसी गान ॥२१८

प० श्री मिथीलालजी शर्मा ने कहा है कि प्राणनाथ ने आत्मा और परमात्मा की अनन्तरममयी नित्यलीलाओं के गूढ़तम रहस्य को स्पष्ट करते हुए, उन्हें सरल ढंग से एवम् मुक्तभरूप में प्राप्त करने के लिए मगुण और निगुण से पराभक्ति प्रेम-लक्षणा को ही परमसाधन बनलाया । क्योंकि प्रेमलक्षणा भक्ति क्रियामात्र से साध्य नहीं होती; उसके लिए उसकी परम सिद्धि के लिए तो आत्मपरात्मज्ञान की नितान्त आवश्यकता है ।^{२१६} डा० सरोजनी कुमथ्रेष्ठ ने कहा है कि प्राणनाथ के हृदय में कृष्णसाक्षात्कार के फलस्वरूप जो प्रेमसागर उमड़ा उसको आपने प्रेम, इशक, शराब, तारतम ज्ञान, भक्ति इत्यादि नामों से पुकारा है और श्री श्यामाञ्ज ठकुराइन रासेश्वरी श्री राधा पर आपका अनन्य प्रेम था । श्री कृष्ण की पराभक्ति करने का उपदेश दिया है ।^{२२०} वस्तुतः श्याम-श्यामा—युगल स्वरूप पर ही प्राणनाथ का अनन्य प्रेम था - -

वारी रे वारी मेरे प्यारे, वारी रे वारी ।

ठूक ठूक कर डारो या तन ऊरर कुजबिहारी ।

२१७. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० १८, चौ० २०५

२१८. वही, किरतन, प्र० २६, चौ० २८१-२८४

२१९. प० श्री मिथीलाल शास्त्रीजी, कल्याण (भक्तिप्रक), जनवरी, ५८, पृ० ५६०

२२०. डा० सरोजनी कुमथ्रेष्ठ, हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ६८

वतन के भ्रंशुर बिना, इत दुनि करे कई बल
मुक्त मुग इत होंयसी, पर पावे ना घाम निरबल ॥^{२३६}

×

×

×

जंसी करनी करे इत घाद, तंसी फब लइ पहुँके ताहीं ।
स्वर्गनकं इनही ते जाये, मुक्ति चार इतही ते पावे ॥
होय ज्ञान निश्चय जेही घावे, ते पद पर ताकु पहुँचावे ॥
संस्कार जाको जहाको घाय, ते पदको पहुँचे ते जाय ॥^{२४०}

सामुज्य मुक्ति ही प्राणनाथ का लक्ष्य-बिन्दु रहा है ।

(४) गुरु महिमा और नीति-नियम

साधना के क्षेत्र में भारतीय परम्परा ने गुरु को महत्त्वपूर्ण और आवश्यक समझा है । भक्ति के मोपान पर अग्रसर होने के लिए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता रहती है । “गुरु” “शब्द वा” “गु” अन्धकार का वाचक है और “रु” उसको दूर करने का—^{२४१}

गु शब्दस्त्वन्धकारस्यदु शब्दस्तन्तिरोधकः ।
अन्धकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभीधीयते ॥

ध्यान, पूजा, मुक्ति, सेवा आदि उन्हीं के प्रति होना चाहिए और उत्तम सिद्धिदाता है ।^{२४२} गूढ आध्यात्मिकज्ञान की प्राप्ति गुरु के बिना नहीं हो सकती । नानक ने कहा है—

गुरु बिन राह बतावैं कौन, बोहिय कयो पहुँचे बिन पौन ।^{२४३}
प्राणनाथ ने भी गुरुप्रसाद से परब्रह्म की ज्योति प्राप्त की थी—^{२४४}

देत देखाई बाहेरभीतर, ना भीतर भी नाहीं ।
गुरु प्रमादे अतर पेख्या, सो सोभा बरनी न जाई ॥

सन्गुरु सोई मिले जब माचा, तब मिघ बिद परचावे ।
प्रगट प्रकाम करे पारब्रह्मसो, तब बिद अनेक उडावे ॥

२३६. वही,

२४०. नवरंग स्वामी, गुरुशिष्य सवाद,

२४१. कुलार्णव तन्त्र, प्रथम उल्लास, १७।१

२४२. वही, १२-१३-१४

२४३. नानक, प्राणमगनी, १, पृ० ६

२४४. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, प्र० ३, ८-६

आत्मा-परमात्मा क्या है और आत्मा का असली स्थान कौन-सा है, कहा पर है आदि समस्याओं का समाधान कराने वाले सत् गुरु को ही पाना चाहिए—२४४

“सत् गुरु सोई जो बतन बतावे, मोह माया और आप ।

पार पुरुष जो परखावे, महामत तासो कीजे मिलाप ।”

उन्को गुरुकृपा पर सतोप है क्योंकि धामपरमधाम, आत्मा आदि का ज्ञान गुरु ने दिया था—

“गुरु प्रसादे नाटक पेख्या ।”२४६

प्राणब्रह्म, स्वलोलाद्वैत सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की मनसा, वाचा और कर्मणा सेवा करनेवाला, लोक-अलोक-परलोक से अतीत सत्य वस्तु को समझ सकनेवाला, परमात्मा में आसक्ति रखने वाला; निर्गुण-सगुण, साकार-निराकार, शून्य-अशून्य, व्यक्त-अव्यक्त के भेदों को सही रूप में जाननेवाला, ईश्वर की एकता और अनेकता, व्यापकता और व्याप्यता, भेद-अभेद, उत्पत्ति लय आदि का रखनेवाला, वेद-पुराण, श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रों का ज्ञान रखने वाला, कृष्णलीला के रहस्यों को समझानेवाला, समर्पण के समभाव रखनेवाला, गुरु ही सद्गुरु कहा जा सकता है । इसीलिए प्राणनाथ ने कहा है—२४७

सत्गुरु साधो वाको कहिए, जो भगमकी देवे गम ।

हृदबेहृद सब समझावे, भामे मन को मरम ॥

महामत कहे गुरु सोई कीजे जो अलख की देवे लख ।

इन उलटीसे उलटाएके, पिथा प्रेमे करे सनमुख ॥

दीपक से गुरु के लिए मूरदास ने कुछ वंसा ही कहा है—

गुरु बिनु ऐसी कौन करी ।

माला तिलक मनोहर बाना लं सिर छत्र धरं ।

भयसागर से बूडन राखें दीपक हाथ धरं ।

मूरस्याम गुरु ऐसो समरथ, छिनमें लै उधरं ।२४८

अष्टविकार, दुर्गुण, आदि पर विजय होने वाला और सब के प्रति प्रेम व समभाव रखनेवाला गुरु ही उत्तम है । वंसा अगर गुरु होगा तो शिष्य की शकाएँ दूर होंगी—

२४५ वही, पृ० २१, चौ० २४७

२४६ वही, पृ० ७, चौ० १७

२४७ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरंतन, पृ० ५, चौ० १२-१३

२४८ मूरदास, मूरसागर, पृ० ७१

पहें गुनें विकार न छूटे, अग न अंगर्थे जाए ।
 आप बतन चौम्हे विना, तो लोजल बिन गोते खाए ॥
 ए ससे सब समभाएके, कोई अग करे उजास ।
 सो गुरु मेरा मैं सेवो ताए, मुच चित होए दास ॥^{२४३}

प्राणनाथ ने जपमन्त्र आदि के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं बतायी, लेकिन आज प्रणामी सम्प्रदाय के नीतिनियमों में ऐसी कई बातों का समावेश हो गया है । प्राणनाथ ने तो इन मनातन तरवों का ही निर्देश किया है—

“साख्यात तखी सेवा कर रे, ओलखीने अग ॥”^{२४०}

× × ×

“प्रेम सेवा एम राखो मन”^{२४१}

लेकिन अब माला, मन्त्र, पूजा, आरति आदि के भी नियम बनाये गये हैं । सुबह-शाम की पूजाविधि, आरतीविधि, छापातिलक, जप, भोग, पारायण आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है । गले में कठी लगाने का भी नियम है । पन्ना, जामनगर आदि स्थानों की यात्रा का निर्देश किया गया है । हर माह की अष्टमी और चौदहवीं के दिन उपवास रखा जाता है । फिर भी कई नैतिकतापरक नियम भी रखे गये हैं । मन, वाणी, बर्तन से सच्चाई को उतारना, विकारी चीजों में दूर रहना, व्यसनो का निषेध किया गया है, निन्दा चोगी आदि में दूर रहना, अहिंसा, दान-पुण्य, बाह्य एवम् आन्तरिक शुचिता, ऐक्य, प्रामाणिकता का सेवन करना, सत्संग करना, ब्रह्मचर्य पालना, किए हुए पापकर्मों के लिए प्रायश्चित्त करना आदि नियम आवश्यक माने गये हैं ।^{२४२} प्राणनाथ ने आन्तरिक शुद्धि, शुभकर्मों की सुवास के सद्वर्तन में कहा है—

साथजी माफ हुये विना, अखण्डमे बयो पहोचत ।

चेत शबो मो चैनियो, पुकार बहे मशमत ॥^{२४३}

× × ×

जो लो जाहिरि अंग तरे नाम रे, तो लो आगे ना रहूके अग ॥^{२४४}

२४६. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, किरतन, पृ० २६, चौ० ३०६-३२७

२५०. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, राम, पृ० ४, चौ० १

२५१. वही, पृ० ४, चौ० २०

२५२. रणछोडदास वीरजी, परमपद मार्गदर्शक, पृ० ४५-५५

२५३. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप ।

२५४. वही ।

अशुभ कर्म जेम लिये नि दा, शुभ कर्म तेम नामना लइ जाये ।^{२५५}

प्राणनाथ ने अनेक आचार कर्मों से बढकर प्रेम और भक्ति को आवश्यक समझा है^{२५६}—

ए सुच कैसे होवे ही, तुम देखो पाकी विध ।
अनेक आचार कर यके, पर हृथा न कोई सुध ॥
नितदिन ग्रहिए प्रेम सो, जुगलमरूप के चरन ।
निरमल होना याहीसो, और धाम बरनन ॥
इस विध नरक जो छोडिए, और उपाए कोई नाई ।
भजन बिना सब नरक है, पच पच भरिए माहे ॥

सच्चे वैष्णव के लक्षण उन्होंने इस प्रकार बताया है^{२५७}—

हो भाई मेरे वैष्णव कहिए बाको, निरमल जाकी आतम ।
नीच करमके निकट न जावे, जाए पेहेचान भई पारब्रह्म ॥
इसक लगाए पिआसो पूरा, खेले अबला होए ग्रहिनिस ।
ओ अंधे अग्यानी भरमये भूले, पर या ठोर प्रेमको रस ॥
जब आतम दृष्टि जुडी पर आतम, तब भयो आतम निवेद ।
या विध लोक लखे कोई नही, कोई भागवती जाने ए भेद ॥
जब वैष्णव अंग किएरो अप्रस, और केमी अप्रसाई ।
परस भयो जाको युरुपोत्तमसो, सो बाहेर न देवे देखाई ॥
ग्रहिनिस आवेस हुअडा अगमे, जैसे मद चढ्यो महामत ।
बाको आमा और न उपजे त्रिस्ता, वह एकैमों एक चित ॥
उत्तपन प्रेम पारब्रह्मसग, बाको सुपन हो गयो मसार ।
प्रेम बिना मुख पारको नाही, जो तुम अनेक करो आचार ॥
माचा रे माहेब माच सो पाशए, माच को माच है प्यारा ।
या वैष्णव की गत देखो रे वैष्णवो, महामत इनमे भी न्यारा ॥

२५५ वही ।

२५६ वही, किरतन, प्र० १०६, चौ० १५४८-५१

२५७. वही, प्र० ६, चौ० ७७-८४

(इसी भजन की तुलना नरसिंह मेहता के "वैष्णव जन तो तेने रे कहिए" भजन, जो गांधीजी का प्रिय भजन था साँघ की जा सकती है ।)

उन्होंने इस तथ्य को बार-बार दुहराया है कि वेदो और कुरान में एक ही ईश्वर का गुणानुवाद है । लेकिन दोनों ही धर्मों में आ गई बुराइयों और अंधविश्वासों की निन्दा करने में भी वे नहीं चूके । मौलवी और उलेमा जो कुरान की व्याख्या करते थे उनकी आलोचना करने हुए प्राणनाथ ने कहा है—

पढ़े मुला आगे हुए, सो तो मत्र पाए गुमान ।
 लोंगो को बतता बही, कहे हम पड़ कुरान ॥
 राह बतावें दुनीको, कहे ए नवी कहेल ॥
 लिप्या और कतेबमे, ए पेले और पैल ॥^{२५८}

उनको फटकारते हुए वे कहते हैं^{२५९}—

कुफ्र न काहें आपनो, और देखे मत्र कुफ्रान ।
 अपना औगन न टेपाहि, कहे हम मुमलमान ॥

× × ×

ओ राजी एक भेषमे, ताए भार छुडावे दाव ।
 ओ रोवे सिर पीट ही, ऐ कहे हमे होन मबाव ॥

इसी प्रकार ब्राह्मण की भर्त्सना करते हुए उन्होंने व्यंग किया है^{२६०}—

दोष विप्रोने कार्द मा देजो, ए कलजुगना एंघरण ।
 आगम भाष्यु मल्ले छे सबे, बैराट वारणी रे प्रमाण ॥
 असुर थकी समपाघा रे भभीपणें, आगल श्री रघुनाथ ।
 तमसूं कपट करूं कुली माहे, ब्राह्मण पाऊं आप ॥

वे पूछते हैं कि अछूत कौन है ? वह शूद्र जिस का हृदय स्वच्छ है अथवा वह स्वार्थी ब्राह्मण जो सामाजिक भागों में लिप्त है ?^{२६१}

इस प्रकार उन्होंने स्पृश-अस्पृश्य, निर्मलता, सत्य आदि के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं । सिद्धान्त एवम् भावनापत्र की दृष्टि में प्राणनाथ की दार्शनिक धारा वैष्णवमत के ही निकट है ।

हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी विद्वानों ने प्राणनाथ की दार्शनिकता को देखते हुए निर्गुण भक्तों की कोटि में रखा है । लेकिन प्राणनाथ ने 'निर्गुण-निगाकार'

२५८ प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, सनघ, प्र० ३६, चौ० ५, ६

२५९. वही, प्र० ३६ चौ० ८-१७

२६०. वही, किरतन, प्र० १२५ चौ० ३८-३९

२६१. वही, कलस, प्र० १५, चौ० १५-२०

शब्दों का उपयोग करके सीधे ढग में उमके प्रति तिरस्कार बताया है। वस्तुतः उन्होंने ब्रह्म को सगुण, निर्गुण अथवा सन्-असन्, स्थूल-सूक्ष्म सभी प्राकृत धर्मों से पर माना है और उसे सच्चिदानन्दस्वरूप, अनन्त, अखण्ड स्वलीलाद्वैत प्रतिपादित किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि कृष्णलीला दो प्रकार की है— प्रकटलीला और अप्रकटलीला। मध्यकाल के भक्तकवियों ने प्रकटलीला का ही गान किया है, परन्तु अप्रकट नित्यलीला को वे भूले कभी नहीं।^{२६२} स्पष्ट है कि प्रणामी सम्प्रदाय ने उसी नित्यलीला को ही प्रमुख स्थान दिया है और ब्रह्म को क्षराक्षर में पर अक्षरातीत माना है। साथ ही अन्य वैष्णव सम्प्रदायों ने छूमछूत आदि तथ्यों के प्रति जो उदार दृष्टि नहीं रखी, अत उदारता रखने वाला यह सम्प्रदाय निर्गुण सम्प्रदाय समझा जाय यह स्वाभाविक है। सम्प्रदाय का आधुनिक स्वरूप सगुणपरक ही है।^{२६३} मिद्धान्त की दृष्टि में मानसी पूजा ही स्वीकार्य है। अतः प्राणनाथ की वानियों के संग्रह की पूजा की जाती है। मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया है। लेकिन यह ग्रन्थ-पूजा-प्रतीकपूजा-मूर्तिपूजा के स्वरूप की ही आज दिखाई पड़ती है। इतना स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सर्वभूमि समन्वयवादिता, ऐकेश्वरवाद और मूर्ति-पूजा का विरोध तत्कालीन परिस्थिति के लिए हिन्दूधर्म की दृष्टि में आवश्यक तत्त्व थे।

प्राणनाथ कबीर के माध्यम में तन्त्रमत से भी प्रभावित रहे। उनकी “धाम” की कल्पना पुराण के अनुकूल है, लेकिन संभव है कि कबीर की अभीष्ट मिद्धान्तस्था ही इस रूप में स्थापित हुई हो। डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के अनुसार, इस युग में पौराणिकता से प्रभावित होकर कबीर की अभीष्ट सिद्धान्तस्था, परमपद एक माननिक स्थिति में अलौकिक प्रदेश के रूप में परिणत हो गई। सन प्राणनाथ ने इसे “धाम” की सज्ञा दी जो किसी पावन एवम् पवित्र स्थान को लक्ष्य करता था और वहाँ तक पहुँचने वाले को “धामी” नाम से अभिहित किया है।^{२६४} आ० परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक कहा है^{२६५} कि सूफ़ी पीरों के वातावरण में आने के कारण प्राणनाथ की विचारधारा में इस्लामी धारणाओं का प्रवेश हुआ था।

डा० श्यामनारायण पाण्डेय और प्रो० शरण बिहारी सोस्वामी ने प्राणनाथ और प्रणामी सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति को सभी भाव की पद्धति के रूप में स्वीकार

२६२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, प्र० १४६

२६३. रणछोडदास बीरजी, परमधाम प्रणालिका, पृ० ६२५

२६४. डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, हिन्दी सन्तसाहित्य, पृ० ७६

२६५. प्र० परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, पृ० ३०

किया है।^{२६६} लेकिन दुर्गाशंकर शास्त्री ने^{२६७} प्रणामी सम्प्रदाय को निर्गुण माधना पक्ष की दृष्टि से ही वैष्णवधर्म के अन्तर्गत लेने का स्वीकार किया है, अन्यथा नास्तिक दृष्टि से उसे कोई विचित्र सम्प्रदाय ही समझा है। वस्तुतः यही कहना उचित होगा कि, इस सम्प्रदाय में सूक्ष्म दशधा वृष्णभक्ति को आधार मानकर सर्वधर्ममन्वय का प्रमाण किया गया है। इतना अवश्य हुआ है कि मन्वयवादी भावना के फलस्वरूप अन्य सगुणवादी सम्प्रदायों के समान इसमें सकीर्णता के दर्शन नहीं होने।

डा० पीताम्बरदत्त बडधवाल ने प्राणनाथ को विशिष्टाद्वैतवादी ठहराया है।^{२६८} इसी आधार पर डा० रामकुमार गुप्त ने उम तथ्य को स्वीकार किया है।^{२६९} लेकिन इसी बात को लेकर विशिष्टाद्वैतवादी ठहराना अनुचित है। धंश या अणु के रूप में जीव का होना ये बात सबसे पहले विशिष्टाद्वैत ने नहीं दी, लेकिन मुण्डक^{२७०} और श्वेताश्वर उपनिषद् में ही सर्वप्रथम मिलती है—

बालाप्रशतभागम्य शतधा कल्पिम्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेय स चानन्त्याय कल्पते ॥^{२७१}

इसी प्रकार बादरायण के वेदान्त सूत्र में^{२७२} और श्रीमद्भागवतगीता में “जीव मेरा ही अंक है और मैं ही एक अणु में इस सारे जगत का व्याप्त कर रहा हूँ” कहा गया है—

(अ) ममैवाणो जीवलोकं जीवभूत मनात्तन ।^{२७३}

(ब) विष्टम्याहृमिद कृत्स्नमेकाशेन स्थितो जगत् ।^{२७४}

आगे कहा जा चुका है कि प्राणनाथ पर भागवत और गीता का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। अतः यह स्पष्ट है कि जीवसम्बन्धी यह नन्व-दर्शन गीता में ही प्राप्त हुआ है, रामानुज के विशिष्टाद्वैत के प्रभाव में नहीं। वस्तुतः प्राणनाथ ने

- २६६ (अ) श्यामनारायण पाण्डेय, हिन्दी वृष्ण काव्य में माधुर्योपमना, पृ० ३७०
 (ब) स० रमाकान्त दीक्षित, मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १६३
२६७. दुर्गाशंकर शास्त्री, वैष्णव धर्मनो मक्षिण इतिहास, पृ० ८१२-८१३
२६८. डा० पीताम्बरदत्त बडधवाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १६६-१७०
२६९. डा० रामकुमार गुप्त, हिन्दी साहित्यको गुजरातके मंतकवियों की देन पृ० २३३
२७०. मुण्डक उपनिषद्, ३।१।६
२७१. श्वेताश्वतर उपनिषद्, ५।६
२७२. बादरायण वेदान्तसूत्र, २-३-६३, ४-४-१६
२७३. श्रीमद्भागवतगीता, १५-७
२७४. वही, १०-४२

स्वलीलाद्वैत का ही अन्वेषण किया है। एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा विरोध आदि बातें संभवतः कुरान, तोरेत और जबूर से प्रभावस्वरूप ही हो। विशेषतः उन पर सूफीमत का ही प्रभाव है। कट्टर इस्लाम सूफियों का विरोध करता है और इसीलिए उससे, प्रभावित प्राणनाथ का कट्टर मुसलमानी और गजेब पर प्रभाव नहीं पड़ा। जिस प्रकार प्राणनाथ ने जीव को ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरीसृष्टि और जीवसृष्टि में विभाजित किया है, ठीक उसी प्रकार सूफीमत में जीव के तीन भेद हैं इन्सान-उल-कामिल, इन्सान और इन्सान-उल-हैवान।^{२७५} इस्क, मारफिन, हकीकत आदि सूफियों की मजिहों का प्राणनाथ ने भी स्वीकार किया है। जैनधर्म के ग्रहिसा तत्त्व, बौद्ध धर्म के निस्सारत्व का भाव, शांकर के मिथ्यात्व और वैष्णवाचार्यों के लीलावर्णनों ने अथर्व ही उनको प्रभावित किया हो ऐसा लगता है।

(भा) प्राणनाथ की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन

चाहे किसी भी भाषा में हो, लेकिन भक्ति-साहित्य मानवमन की उस मसीह शक्ति के प्रति जो भावना है उसी की शब्दस्थ अभिव्यक्ति है। ऐसी अभिव्यक्ति की परख करने के मानदण्ड समय-समय पर कुछ नया मोड़ लेते हैं। हिन्दी-साहित्य का मध्यकाल भक्तों और सन्तों का ही बना रहा और उस युग ने उन लोगों की बानियों की सच्चाई और उपदेशपरकता को ही श्रेष्ठता प्रदान की। पं० रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन ही संभवतः इन सन्तों और भक्तों की बानियों को लागू होता है कि कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचन मण्डल से उठाकर लोकसामान्य भावभूमि पर ले जाती है ... इस भूमि पर पहुँचते हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अगना पता नहीं रहता है। वह अपनी सत्ता को लोकमत्ता में लीन करने रहता है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।^{२७६} काव्य प्रकाशकार ने भले ही काव्य के कई प्रयोजन बताये हो, लेकिन इन सन्तों और भक्तों ने प्रभुप्रीति और मानवकल्याण को ही सामने रखते हुए बानी की रचना की है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यही कहा है कि जो मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षित से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोहीप्त न बना सके, उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, वह साहित्य नहीं है। हमारे समस्त द्रव्यों का लक्ष्य एक मात्र वही मनुष्य है। उसको वर्तमान दुर्गति में बचा कर मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण की ओर उन्मुख करना ही हमारा लक्ष्य है, यही सर्व

२७५. Dr Bhagwan Das, A Study in the Theory of Avatars, p. 79 (Foot note)

२७६. पं० रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग १, पृ० १६२

है, यही धर्म है, मर्य यद् नहीं है जो मर्य में बोलने है, मर्य वद् है जो मनुष्य के प्रात्यनिक कन्यागु के विना किया जाता है।^{२३३} माहिर्य शब्द की ध्युत्पत्ति पर विचार करने समय हम मात्र शब्द और धर्म के समुचित सम्पादन पर ही विचार नहीं करते, धर्मिणु उमरे माध मानवहित की बात कहते सोचते है।^{२३४} डॉ० मागीर्य मिथ ने काव्यशास्त्र के धर्मगत मर्य, मानवता, निर्मल चरित, मोक्ष, भय कष्टता, भावुह व्यस्य और लोभानुभव की अभिव्यक्ति की माहिर्य उन्धान के प्रेरक तन्वी के रूप में समीक्षा की है।^{२३५} इनका स्पष्ट है कि माहिर्य के विना भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही अशुभित है। धनुभूति और अभिव्यक्ति के आधार पर स्वामी प्राणनाथ की रचनाओं का माहिर्यिक मूल्यांकन किया जाएगा।

(क) भावपक्ष

वर्णविषय की रचना में रगने हुए कविता का विभाजन किया जाता है। कवि जब धरती धनुभूति है को व्यक्त करता है, धर्मार्थ धरने द्वारा धनुभूत भावों का वद् वैपणिकतावद् होकर अभिव्यक्त करता है तब उम काव्य की "स्वानुभूति निरूपक" काव्य कहा जाएगा और जब वद् धरती अतिक्रम भावनाओं को छोड़कर इतर कवित्त या धर्मार्थ वस्तुओं की, मनोवेगों का अभिव्यक्त करता है तब उम काव्यार्थनिरूपक काव्य कहा जाएगा। पहली दशा में धर्म ही हृदय की आना-निराशा, सुशी-नाराजगी आदि में कवि पाठकों को इस प्रकार मर्मित्त करता है कि पाठक अपना ही धनुभव महसूस करता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में धर्म और कभी-कभी धर्मभ्रत का स्थान कवि खुद ही ले लेता है और दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति में धर्म्य और धर्मभ्रत दोनों ही उमरे प्रयत्नता रखते है। प्राणनाथ की रचनाओं को इन दो अभिव्यक्ति प्रकारों में विभाजित करके देगना उचित होगा।

प्राणनाथ की स्वानुभूति निरूपक रचनाओं में विविध वृष्णनीताओं का वर्णन जिनमें वे अपने आपकी एव पात्र या दर्शक के रूप में चित्रित करने है तथा धर्म-निवेदन, दैन्य, मर्य, दाम्य, कान्तादि भावों की अभिव्यक्ति की है, वही धर्मार्थी। स्वानुभूति निरूपक काव्य में अगर कवि अपने "धर्म" की मोमाओं को लोडकर प्रस्तुत हो सकता है तब मर्यता मिलनी है और काव्य में मर्मिकता या मर्यता है। एकमात्र मर्य की अभिव्यक्ति उम काव्य की प्रभावहीन बना देती है। जहाँ कहीं प्राणनाथ की रचनाओं में मर्मिकता या पापी है उनके पीछे भी वही कारण है।

२७७. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, धर्मोत्तर के फूल, पृ० १६६

२७८. डॉ० गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ० २-३

२७९. डॉ० मगीर्य मिथ, काव्यशास्त्र, पृ० ३२२-३४२

इसी अध्याय में अन्य स्थान पर लीलाग्रहस्य की चर्चान्तर्गत कृष्णस्वरूप भेद और कृष्णलीला भेद का निर्देश किया जा चुका है। प्राणनाथ ने रासलीला के चित्रण में अपने आपकी भी शामिल किया है—^{२५०}

दो भुजा मरूप जो स्याम,
घ्रातम अक्षर जोम धनी धाम ।
ए वन देखा सैया सब,
हम खेल धनी भेले आनन्द घन ॥
बालचरित्र लीला जीवन,
कं विद्य मनेह किए सैन्यन ।
कं लिए विलास जो मुख,
सो केले कहू या मुख ॥

श्रीमद्भागवत पुराण में रामपचादशायो अन्तर्गत जैमा विवरणात्मक वर्णन है वैसा ही रामवर्णन प्राणनाथ ने भी किया है। लेकिन प्राणनाथ का यह अखण्ड महारास है, और वह आश्चर्यात्मक शैली में मिलता है। रामलीला का यही रहस्य है कि इस मृष्टि में प्राकृतलीला आविर्भूत तिरोभूत होती रहती है। नित्यविहारस्थ आत्माओं को कभी क्षणलीला देखने की इच्छा जाग्रत हो तब वे अक्षरब्रह्म में प्रवेश करके प्राकृतलीला का आस्वाद ले और अक्षरब्रह्म को नित्यानन्दविहार का आस्वाद करा दे। रामस्वरूप परब्रह्म की मंगोग-विषोषात्मक द्विधालीला है।^{२५१} अक्षरब्रह्म को पूर्णब्रह्म की ब्रह्मानन्द लीला देखने की इच्छा हुई और सखियों ने बाललीला देखने की इच्छा व्यक्त की।^{२५२} श्रीराजजी (कृष्ण) ने वह दुस्वरूपी खेल दिखाने के लिए तीन बार मना किया लेकिन सखियों ने वही माँगा।^{२५३} इसी हेतु क्षर ब्रह्माण्ड की रचना हुई और अज मे सखियाँ गोपि का स्वरूप उपस्थित हुई—^{२५४}

अयो निंदमे देखिये सुपन, यो उपजे हम अज वधू जन ।

उपजती ही मन आशा धनी, हम कब मिलमी अपना धनी ॥

शरदपूर्णिमा के दिन कृष्ण ने मुरली बजायी और गोपिकाएँ मुरध होकर उनसे 'राम भेखने' जा मिलीं। सखियों की इच्छा पूर्ण करने के लिए बनाया हुआ ब्रजमण्डल की भूमि निराली ही थी।^{२५५}

२८०. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, प्रकाश प्र० ३७, चौ० २५-२६

२८१. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी महाराज, श्री प्राणनाथ सदेश (राधाक-प्राकृतन), पृ० ५

२८२. प्राणनाथ, कुलजम शरीफ, प्रकाश, प्र० ३७, चौ० १२

२८३. वही, चौ० १४

२८४. वही, चौ० २०

२८५. वही, प्र० ३१, चौ० ११३

यह वन मुन्दर नीतम, नीतम बाधो वाय ।

जन जमुना नीतम, लहेग नये वनराय ॥

मुरली की तान मुनकर गोपिकाएँ अपना संगार भी भुल गयी और राधिका भी तत्काल वृष्ण के पास जाने के लिए तैयार हो गयी—२८६

जोगमायानो देहपरीने श्री श्यामाजी धया रे तैयार ।

तनधरण तीहा लेणे ठामे, मारे माधे कीधो शगगार ॥

कृष्ण का मौदर्य अवर्णनीय है—२८७

शोभा मे माहारा श्यामतणी, मगी बेणी पेरे वगण्ठु एह ।

गन्दातीत महारा बालाजीना शोभा, माहारो जिभ्या प्राणे देह ॥

फिर भी उनमे श्रीराजजी (कृष्ण) का शृंगारवर्णन किये बिना रहा नहीं जाता । कृष्ण की कोमल अंगुलियाँ, हीरे जैसे नामून, चरणनल की पप्ररेखा, हाथ मे लगाए गये कङ्कण, घुँघरू, शरीर पर माणिक्य-मोती आदि के अलंकार, पीलावस्त्र, गने मे रत्नहीरामुक्कणों का हार, हाथो मे विभिन्न अलंकार, बाहुबद्ध आदि को देखते हुए प्राणियों को तृप्ति नहीं होती—२८८

"निरखी निरग्यो नेत्र ठरे, पण बेमे न पामिए व्रत ।"

कृष्ण का मुखमौदर्य—गाल, होठों का रंग, अनारकली मे दान्त नुकीलो तेजभरी आँसू, मीठी पलक, भृकुटी की शोभा, भाल पर तिलकरेखा, मन्त्रक पर का मुहावना मुकुट, मुँह मे पान आदि को देखकर प्राणनाथ के दिल मे वाग्नाभ.व जागृत होता है—

"सज्ज धया शगगार करीने, राम रमबानी मन माहे ।

साध मकन बालाजी पामे आव्यो, इन्द्रावनी लागे पाय ॥२८९

कृष्ण के साथ ठकुराणीजी (राधा) का सौंदर्यवर्णन भी किया है । उनकी चरणप्रंगुलियाँ, और उस पर हीरा, माणिक्य और मोती के अलंकार, हाथो, मे मधुर ध्वनि पैदा करने वाले बगन, पाँव मे घुँघरू, मुन्दर वस्त्राभूषण, नाक-कानो पर रत्न के अलंकार आदि हैं । मुन्दर शरीर पर इन आभूषणों के कारण सौंदर्य और भी बढ़ गया, अतः वह मौदर्य भी अवर्णनीय है—

"मुन्दर सरूपने जोई जोई, मारो जीव धाय निरात"२९०

२८६. प्राणनाथ, राम (हस्तलिखित), प्र० ७, चौ० १

२८७. वही, प्र० ८, चौ० २

२८८. वही, प्र० ८, चौ० २०

२८९. वही, प्र० ८, चौ० ४६

२९०. वही, प्र० ६, चौ० ३०

गोपिकाएँ भी संजवज के आयी हुई थी। ये गोपिकाएँ तामसी, राजसी और सानसी स्वभाववाली थी। तामसी स्वभाव की गोपिकाएँ मुरलीतान, सुनते ही दीर्घी, शृ गार करती हुई राजसी स्वभाव की गोपिकाएँ अपने आभूषण उलट पुलट स्थानों पर दिये और सात्वमी को मास-ननन्द-देवर-पति आदि परिवार वाले बाधा रूप लगे और मोचती है—^{२६१}

“ए का थाय आडा रे दुरिजन ।
ए शु जाणे छे वर नही ऐनी बाल्यो,
तो जाना वारे रे वन ॥”

कृष्ण ने जब उनके प्रेम की कमीटी लेना शुरू किया तब तामसी प्रकृति वाली सखिया मुंह फट जवाब देती है, राजसी तडप रही है लेकिन सात्वमी सखियाँ कृष्ण के धर वापस लौट जाने का उपदेश सुनकर बेहोश हो जाती है। लेकिन गोपिकाएँ स्पष्ट रूप से बता देती हैं कि जन्मे मछली जल बिना नहीं रह सकती, वैसे हम भी आपके बिना नहीं रह सकती।^{२६२} अन्ततः कृष्ण को यही कहना पडा कि चलो वृन्दावन मे हम रास रचाये—^{२६३}

“सखी वृन्दावन देखाडियेजी, चालो रग भर रमिये रासजी ।
बिबिध परनी रामतोजी, आपण करशूँ माहोमाहे हास रे ॥”

सभवतः डा० श्याम सुन्दर शुक्ल ने प्राणनाथ के इस रास वर्णन में चित्रित नायक-नायिका राधा-कृष्ण के मीन्दय को देखते हुए उनकी भक्ति को रूपासक्ति स्वरूप बताया है।^{२६४} लेकिन कृष्णलीला से अभिभूत भक्तों ने कृष्ण काव्य में वंसा चित्रण किया ही है, इन परम्परा में प्राणनाथ अपने आपको दूर नहीं रख सके। उसी तरह उन्होंने वृन्दावन वर्णन भी किया है। इस वृन्दावन वर्णन पर से प्राणनाथ के वनस्पति शास्त्र का ज्ञान स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों में यह वृन्दावन आकर्षक वन पडा है। अतः इन्द्रवानी मखी (प्राणनाथ) रासखेल के लिए बड़ी उत्सुक है—

‘छूटक पडने घाटी छाया, रमवांना ठाम अति सारजी ।
इन्द्रावेती वाई अति उछरगे, आयत करे अपारजी ॥’^{२६५}

२६१ प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० ५, चौ० २३

२६२. वही, प्र० ८, चौ० ४५

२६३. वही, प्र० ८, चौ० ५७

२६४. डा० श्याम सुन्दर शुक्ल, हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति पृ० ३३७

२६५. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० १०, चौ० ३४

मन्त्रियों कृष्ण के साथ जिस प्रकार राम मेनका आदि बानो की चर्चा करती है और इन्द्रावती कृष्ण को अपने ललाटे की इच्छा व्यक्त करती है कि तुम्हें कृष्ण ने धाकर उनकी बाहें पकड़नी ।^{२६६} राम शुरू हुआ और मन्त्रियों की मञ्जा मायब हो गयी थी । राम का रंग बढ़ता गया वैसे मन्त्रियों की मुग्धी भी बढ़ती गयी ।^{२६७} इस प्रकार मन्त्रियों की इच्छानुसार हमारी 'तानमे कृदना-उद्धलना) श्रीम-मिचोली, नृत्य आदि रामने (राममेन) हुई । श्रीम-मिचोली के वक्त मन्त्रियों बहुत मावधान थी, क्योंकि अगर उनके कृष्ण को ही प्रारम्भ में छिप जाने का बहा जाए तो बह तो बहा घोनेवात्र है—^{२६८}

माय महु कहे बानो दाव देगे, पहेलो ने पिउजीनो वारी रे ।

जो पहेला दाव आपणु देऊ, तो ए भुयाय नही घुनारो रे ॥

लेकिन जब कृष्ण ने नृत्य मेलना शुरू किया तब वृन्दावन के पशु पक्षी और पेड़-पौधों ने भी नाचना शुरू कर दिया था । कृष्ण के साथ हाथ मिलाकर तानी बजाना और राम मेलने में सब मन्त्रियों में भगडा हुआ और कृष्ण अपने कई देह धारण सब मन्त्रियों के साथ मेलने हैं^{२६९} लेकिन इसी राममेन में से कृष्ण जब अन्तर्धान हो जाते हैं तब सब मन्त्रिया उदाम और बावरी हो जाती हैं । उस कृष्ण बिना उनका शरीर ही अचेत हो गया—

काया केम चाले तेहरे, काजहु ने कापू जेहरे ।

उमी केम रहेजे देहरे, बाध्या जे मूल स्नेह रे ॥

हाय हाय रे देव ने शु क्यू, केम रहे रे कायामा प्राण ।

जीवनजी सूकी गया रे, नव कीधू ने अमने जाए रे ॥^{३००}

मारे वृन्दावन में कृष्ण के नहीं मिलने पर मन्त्रियों में से राधा कृष्ण बनी और कोई नद जमोदा आदि । लेकिन जब कहीं से कृष्ण मुरली की आवाज सुनाई

२६६ एवी वान मभालना बालाओए मारे, आवीने यही बांटे,

कहो मर्वा पहेली रामत केहो कीजे, जे होय तमारा चित्त मांहु ।

—वही, प्र० ११, चौ० २

२६७ वही, प्र० १३, चौ० १

२६८ प्राणनाथ, राम (हृन्मन्त्रिण), प्र० १५, चौ० ३

२६९ कहे इन्द्रावती आ रामनटी, मारा बालाजी थइ अति मारी ।

मघली मने रमिया रगे, एक पिठ एक नारी ॥ —वही, प्र० २१, चौ० ८

३०० वही, प्र० ३० चौ० १ और १५

पडी तब सब सखिया उसी और दीडी और कृष्ण को जाण्ड लिया । सबके कारण कृष्ण ने नये देह धारण किये ।^{३०१} वियोग के बाद हुए संयोग में सखियों में रहा नहीं जाता और वे आनिगन करती है, चुंबन करती है ।^{३०२} अब सखियां कृष्ण के हाथ को छोडती नहीं और इसी कारण इन्द्रावती (प्राणनाथ) और केमरबाई सखी के बीच भगडा हो गया । लेकिन कृष्ण ने कई स्वल्प धारण करके सब सखियों को संतोष दिया ।^{३०३} रास खेल फिर में शुरू हुआ और शरदपूणिमा की सारी रात ऐसे ही गुजर गयी । प्राणनाथ के लिए उस रात का आनन्द अवरुणीय है—

अनेक विलास कीघा ए वनमा, भली सहू एकांत रे ।

ए मुखनी वातो शू कइ, काई रमिधा अनेक भात रे ॥^{३०४}

गोपिकाओं को प्रसन्न होकर कृष्ण ने इतना आश्वामन अवश्य दिया कि मैं तुम लोगो से अलग नहीं होने वाला हूँ, क्योंकि आत्मा में हम एक ही है (हमारी एक ही आत्मा है) ।^{३०५} गोपिकाओं के इस भावपूर्ण चित्रण के सदर्थ में डा० सावित्री सिन्हा कहता है कि राम के समय हृदय में आवेश का सागर लिए हुए, मिलन और लय की प्रतीक्षा में आनुर, विह्वल गोपिकाओं में मानो गति ही गति है, कही विराम नहीं । जीवन की प्रत्येक रात में अपने को डूबाये हुए नवल गोपिकाएँ, शृ गानों से सज्जित होकर धीरे धीरे विनाद और हँसीखेल में रत हो जाती है, इनके प्रारम्भ में जो लज्जा उनके पथ में बाधक बन रही थी, उसका रग लुप्त हो जाता है । यह कल्पना और सजीवता किसी भी प्रकार उपेक्षणीय नहीं है ।^{३०६} वस्तुतः रासवर्णन गुजराती साहित्य की देन है और उस साहित्य की दृष्टि से प्राणनाथ नरसिंह मेहता व प्रेमानंद की तुलना में अवश्य ही पीछे है ।

प्राणनाथ के कृष्ण रसस्वरूप है और कृष्ण का रसात्मक रूप ही सम्प्रदाय में उपास्य है । लेकिन योगमाया द्वारा प्रकटलीला को रास माना गया है और परमधाम की लीला नित्यलीला मानी गयी है । इस नित्य वृन्दावन परमधाम में युगल विहारी राधाकृष्ण नित्यविहार करते हैं—

कई चाकिले चित्रकारी ता पर बंटे जुगलबिहारी ।^{३०७}

३०१. वही, प्र० ३३, चौ० ३१-३२

३०२. वही, प्र० ३४, चौ० ३

३०३. वही, प्र० ३६, चौ० १२

३०४. वही, प्र० ४१, चौ० ७

३०५. वही, प्र० ४७, चौ० ८

३०६. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयत्रियाँ पृ० ६७

३०७. प्राणनाथ,

श्रीरात्र (कृष्ण) और शशमात्रो (राधा) की सेवा करके मन्त्रियों घाते घात को भाग्यवान और मुशगिन समझनी है । प्राणनाथ न कृष्ण की विभिन्न गौराओं में एक तात्पर्य राता है और वृन्दावन लीला को सर्वोपरि स्थान दि । है ।

रामलीला के संयोगवर्णन में भी विशेषवर्णन में प्राणनाथ का भावविशेष नीचेनम बन गया है । यह श्चतु और बाह्यमाम अतीत होने पर भी कृष्णमित्रन न जाने पर मन्त्रियों व्याहृत हो गयी है । घाय व का मन्त्रिना सूत्र पर, और वरार्शु प्रारभ हुई । इन श्चतु में उनही घाता थी कि वे प्रियतम को वास्तु घात-र और गुण प्राप्त करेंगी । ३०८ अर्धवेरा म गोत्रिकार् सूचनी रा रही है—

घबके बासु बाय, उद्धाने बन वेनरी रे ।

है ना वानाओ विनारे विदेग, जुह छ एकली रे । ३०८

प्रियतम नहीं होने के कारण, जगदश्वतु का गुःलाना मोचम घात्मा को जानि इन के बजाय और विज्ञान बनाता है । प्रतः द्वावनी मनी कर्त्नी है कि मेरे जन्म के जीवन माथी प्रियतम, मुशवनी भाशीमाम की गुवनरक्ष की राधाष्टमी की यही गन घग्गन मनभावनी व मुभावनी मुन्दर प्रतीत होनी थी । लेकिन वही मुशवनी गन घब कही है । ३१० अग्न में जाननी कि मेरे माथ लेना होगा तो मैं घायकी कैसे जाने देनी । ३११ दनना गुम्मा न करिये और इननी कडी परीक्षा मत लीजिए । जीव जगीर को छोड देगा तब क्या घाय निर्दोष हो जायेंगे ३१२

हमनश्चतु भी इन मन्त्रियों का कोई जीवनना प्रदान नहीं करनी । वे कर्त्नी है कि घाय दयावान होकर दर्शन दीजिए । आपके दर्शन बिना यह श्चतु घमहनीय हो रही है । जग घनगम्मा में विचार कर मेरी हावडा का घबनोहन करिये कि कंपी है । मेरा कनेजा भीतर ही भीतर कटा जा रहा है । ३१३ बन म पेड लनाथो में घिरे हुए है । गृहनी में भी जीवनना है । हवा जीवन वद् रही है । जन भी जीवन है और वृक्षा की छाया भी जीवन है । परन्तु मारा वानाकरण जीवन होने हुए भी

३०८ प्राणनाथ, कुनजमगगर, पटश्चतु, प्र० १, चौ० ३

३०९ वही, प्र० १, चौ० ६

३१० वही, प्र० २, चौ० ८

३११ वही, प्र० २, चौ० १३

३१२ वही, प्र० २, चौ० १६

३१३ वही, प्र० ३, चौ० ३

घांपके विधोग से मेरा अन्तःकरण जल रहा है और शरीर में विरह रूपी अग्नि घुंके रही है ।^{३१४} शिशिरऋतु की हवा इन विरहिलिणियों को तलवार के समान चोट पहुंचा रही है । सखी कहती है, नेत्रों में शीतल जल निकल गया । अब रोते-रोते नेत्र अत्यन्त लाल अग्नि के समान हो गये । नाशिका और मुह से धौंकनी की तरह गर्म प्रस्वांग निकल रही है । यह जीव जलता तड़पना दुःखा पुकार कर रहा है । इस-लिए उसके ऊपर कृपा कीजिए ।^{३१५} जिस प्रकार वर्षाऋतु के पहले पहल पानी बरसते ही लानविलोरी नामक कीड़ी लाल रंग पकड़ लेती है । उसी प्रकार इन्द्रावती की आत्मा भी आपसे मिलते ही तुम्हें प्रेमरस में मस्त दिवनी बन जाएगी ।^{३१६} बिना प्रियतम के वसन्त का मोम भी उनको अप्रिय लगता है । होली के उत्सव को याद कर वह कहती है, फामुन माम की हौनों का उत्सव बहुत ही सुहावना और आनन्दप्रद होता है । मेरी अभिलोपा है कि मैं आपके पाम आकर अबीर रंग और गुलाब रंग लेकर आपके साथ आनन्द खेलूं । विशेष सुगन्धित द्रव्यादि चोषा, चन्दन शरगजा और कई प्रकार के इत्रों से छिड़ककर मैं प्रियतम को लालोलोल करूँ, अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न कर दूँ ।^{३१७} ग्रीष्मऋतु तो बिना प्रियतम उनको सौताल समान लम्बी लगती है । कोकिला की मधुर ध्वनि, तोगो की क्रीडा, मयूर आदि पक्षियों का आनन्दगान उनके विरह को अधिक प्रवृत्तित करते हैं । इस तरह विरह में ही बारह मास व्यतीत हो जाने पर वह कहती है कि फिर वही आप, ठ और वर्षा के दिन आने से जीव को पानी की बाढ के समान विधोग रूपी घाव का अधिक दुःख फिर से अनुभव हो रहा है ।^{३१८} ब्रज की मन्वियां कृष्ण को याद करके रोती हैं—

सखीयो ताग मुखडा संभारीने हए,
हवे भ्रम विजोगणीयोने कोण आवी जुए ।
पीउजी बिना घामुडा ते कोण आवी लूए,
वाला पछे घावणो शुं भ्रम मुए ॥^{३१९}

इनकी शिकायत यही है कि पहले ब्रज प्रेम किया और अब आसमान में पढ़के दिया ।^{३२०} हर ऋतु और हर मास के अन्त तक उनको आशा लगी रहे प्रियतम का अब तो आगमन होगा ही लेकिन निराश ही होना पड़ना था ।

३१४. वही, प्र० ३, चौ० ६
३१५. वही, प्र० ४, चौ० ५
३१६. वही, प्र० ४, चौ० १८
३१७. वही, प्र० ५, चौ० १५
३१८. वही, प्र० ७, चौ० १४
३१९. वही, बारहमासी, प्र० ५, चौ० ६
३२०. वही, प्र० ६, चौ० ६

मूर आदि ने हिन्दी साहित्य में और नरसिंह मेहता, प्रेमचन्द, भानुगण आदि ने गुजराती साहित्य में अमरगान के प्रमग को अपने काव्य का विषय बनाया है उमी प्रकार प्राणनाथ ने भी इसका चित्रण किया है। प्राणनाथ ने इस प्रमग का अधिक विस्तृत चित्रण नहीं किया। गोपिकाएँ अतन निश्चल प्रेम और गहरी अनुभूति में ज्ञान और योग के समर्थक उद्भव पराजित कर देती हैं। उद्भव ने वचन स्त्री यौजाग में उन मन्त्रियों के हृदय के मर्म को नोच डाला—

बाला मारा हुती रे मोटी तागी आग,
जाण्युँ अमन मूकजे नहीं रे निरगश ।
ते नो नमे मोकल्यो तमारो खदाग,
नेणुँ छाडी बछोडयो मामीण् मम ॥^{३२१}

लेकिन अब गोपिकाएँ आगवस्त होकर यही मानती हैं कि अच्छा हुआ जका दूर हो गई। आग के संदेश को मुनकर हम जाग्रत हो गयीं। अब हमने समझ लिया कि निश्चित रूप में आपने हमें बिल्कुल ही त्याग दिया है।^{३२२} अब बिरह किमके ऊपर करे। नन्द मन्दन होते तो आने पर प्रसन्न हो जाते। किन्तु अब वे यदुगण बन गये हैं, अब अब आनी जाने उनको अच्छी नहीं लगती।^{३२३} अगर कृष्ण नन्द के नेन्दन होने तो शीघ्र दौड कर उनके पास चले जाने। वह यदुवशी कृष्ण है न कि गोपिकाओं का प्यारा कृष्ण—

मन्त्रियो ! हवे आपोणु महु कीई भालो,
कान्होजी होय तो दीडी जाइय चालो ।
ए जदुराय नहि रे गोपीप्रोनो बालो,
मन्त्रियो, हवे ओवद ने गुजडी का घालो ॥^{३२४}

इस प्रकार दिन का दर्द दिन में ही दिखाकर रखने का निर्णय करके उद्भव में माफमाफ कर देनी है कि हमारे प्रियतम हमारे दिन में ही दुःख हुए है। सो नुष्टारे आने में हमारी जगत् दूर हो गई। और हे उद्भव नुष्टारी बानो में हमारा मन विचलित नहीं हुआ। किन्तु नुष्टारे आने में हमारा मन और मुटुट्ट हुआ है।^{३२५} अब उनकी यही लगता है कि हम अपना सामाजिक परिवार समझ लेना चाहिये

३२१. प्राणनाथ, कुनजमणोरफ, पटञ्जलु, प्र० ३ चौ० २

३२२. वही, प्र० ३, चौ० ३

३२३. वही, प्र० ३, चौ० ८

३२४. वही, प्र० ३, चौ० ६

३२५. वही, प्र० ३, चौ० १२

क्योंकि लोकव्यवहार से हम तो निन्दित होगे लेकिन साथ ही प्रियतम को भी हमारे पीछे निन्दित होना पड़ेगा—

सखियो, हूवे घरडां महुए सभारो,
रखे कोई कालाजीने दोष देवराधो ।
ए विरह माहेना माहेज मारो,
सखियो. ए तो नहि घरजार उघाडो ॥ ३२६

जीवन जीने के लिए गोपिकाओं को सिर्फ उन दिनों की मूर्तिप्राप्ति ही धन्य बना देती है कि त्रिम दित प्रियतम के माथ गम खेल खेला था—

अखंड मे याद देने, ए जो बिन बजायो ।
चित दे साथको ले, आप मे समायो ॥
अखंडमे याद देने, ए जो खेल बनायो ।
बजराम जागनीमे, ए जो खेल खेलायो ॥
पीउने प्रकास्यो पेहेले, आयो सो अवसर ।
अज ले रास में खेले, खेले निज घर ॥ ३२७

कृष्णकाव्य में पडऋतुवर्णन और बारहमासा की एक पूरी परम्परा मिलती है। मूरदास, नन्ददास आदि का हिन्दी साहित्य में त्रिम तरह पडऋतु-बारहमासा वर्णन मिलता है उन्ही प्रकार गुजराती साहित्य में प्रेमानन्द, नरसिंह मेहता, रत्नेश्वर का भी है। हालांकि मूरदास ने क्रमबद्ध रूप से विभिन्न ऋतुओं का वर्णन नहीं किया। मभवतः गुजराती साहित्य में इन दोनों की एक प्राचीन परम्परा ही है। इस दृष्टि में प्राणनाथ का पडऋतु और बारहमासा वर्णन उस परम्परा में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

पनघटलीला, दानलीला आदि का वर्णन प्राणनाथ ने बहुत ही संक्षिप्त में किया है। पानी भरने के लिए जाती हुई या दूध दही लेकर घर से निकली हुई गोपिकाओं को तग करने वाले कृष्ण के सदर्भ में गोपिकाएँ कहती हैं—

वाई रे गेहेलो वालो गेहेली वात करे,
एहने कोई तम वारो ।
दुरजन देवता अमने बोलावे,
निलजने धुतारो ॥ ३२८

३२६. वही, प्र० ७, चौ० १३

३२७. प्राणनाथ, कुलजमशरोफ, किरतन, प्र० ८३, चौ० १-२-३,

३२८, वही, प्र० ५०, चौ० १

गोपिका खुद कुलवधुनार है इमीलिए नोजलाज में उने डरना पडता है, लेकिन वृष्णु निजेंल है ।^{३२३}

“तू तो निलज नन्दनोकुमार, मेरे पिउजी ।
तू देल भयो मोहे बावरो, मैं कुलवधुघा नार ।
गलिभनमे दुरजन देने, तीमे नहीं पिचार ॥

× × ×

माडी फागी कठमर तोडी, तोड्यो नवसर हार ।
घब घर कंमे जाइए, उलटाए दियो सिनगार ॥

प्राणनाथ में भी धात्मनिवेदन, दास्य, सख्य, दंग्य प्रादि भावना मिलती है । कहीं कहीं पर उनका दास्यभाव सहरभाव से मिश्रित-मा दिखाई पडता है । वैसे तो शुद्ध हृदय से चरणम्यान भी उन्होंने मागा है—

मतगुरु मेरा श्याम जो, मैं महनिम चरणे रहू ।
मनमय मेरा याहीमो, मैं तायें दाम मुख लहू ॥^{३३०}

उनके गुणों का वर्णन करना भी मुश्किल है क्योंकि खुद भी धवगुणों का भण्डार है—

धनीके गुणकी मैं क्या कहू, इन धवगुन पर एते गुन ।
महामन कहे इन दुलहे पर, मैं बारी बारी दुलहिन ॥

× × ×

इन इन्द्रियनकी मैं क्या कहू, ए तो धवगुन ही की काया ।^{३३१}

भक्त के लिए भगवान पतितवाचन है और इमीलिए अपने आपको पतित-पतितों का बादशाह कहकर भक्त उद्धार की याचना कर सकता है—

पतिन मेरे प्राण लौन कहावे,
मैं कोई न देख्या रे पतिन ।
तोडी मरजाद बिगड्या बिम्बधे,
मैं तो पतिन को पानशाह ।^{३३२}

३२६. वही, प्र० ४६, चौ० १-२, ६

३३०. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, बिरज्जन, प्र० ५२, चौ० १

३३१. वही, प्र० ४२, चौ० ४, १६

३३२. वही, प्र० १६, चौ० १, ४

इसीलिये, उनको यही कहना पडा है कि मैंने आपके साथ बहुत से अवगुण किये कि जिसका कोई पार ही नहीं और बड़ी-बड़ी ऐसी भूलों की है। लेकिन आप मेरे उन दुर्गुणों की और भूलों को भूना दीजिए। उन अवगुणों को चित्त में धारण न कीजिए।^{३३३} साथ ही भक्तों को इतना विश्वास अवश्य होता है कि कई अवगुण होने पर भी उम पर भगवान की कृपा होगी ही। अतः प्राणनाथ ने यही भागा है कि हे कृपा के सागर, हे मेरे प्रियतम, अब कृपा कर मुझे बुलाओ। जिससे आकर मैं आपसे अगोंअंग में मिल के माया में रहने ही अखण्ड सुख का अनुभव करूँ।^{३३४} आप कृपालु हैं, इसलिए मैं रो-रोकर विनय कर रही हूँ कि मेरा दुःख दूर कीजिए।^{३३५} इस बात का संतोष है कि भगवान की कृपा दृष्टि है—

सुन्दर सरूप श्याम श्यामाजी को, फेर फेर जाऊँ बनिहारी।

इन दोऊ सरूपों दयाकरी, मुझ पर नजर तुम्हारी ॥^{३३६}

उन्ही की दया में ही माया का परदा हट सकता है—

जिन दया का परदा उखाड़या, मैं फेर फेर सो भागो मेहेर।

इसक दीजे मोहे अपना, जामो लगे बुजरगी जेहेर ॥^{३३७}

अन्य भक्तों की तरह प्राणनाथ का भगवान भी-गतिनोद्वारक है और उन्होंने अपने उद्धार के लिये विभिन्न भावों का सहारा लेकर निवेदन किया है। यह स्पष्ट है कि उनकी प्रेम निवेदन के रूप में की हुई अभिव्यक्ति स्वाभाविक लगती है।

प्राणनाथ के बाह्यार्थनिरूपक काव्य के अन्तर्गत कृष्णलीला के कई भावपूर्ण प्रसंग, विभिन्न धर्ममतों में समन्वयवादी दृष्टि का उपदेश देते हुए पद और साम्प्रदायिक तत्त्वों के निरूपण का समावेश होगा।

उन्होंने कृष्णलीला के साथ विशेषतः आत्मसम्बन्ध ही जोडा है अतः बाह्यार्थ-निरूपक, लीलागान बहुत ही अल्पमात्रा में मिलना है। कृष्ण जन्म और कृष्ण की बाललीलाएँ हीही उनकी दृष्टि हैं और अन्य लीलाओं का उल्लेख किया है।

कृष्ण परब्रह्म अक्षरातीत के रूप में स्वीकृत होने पर उनके जन्म की घटना साधारण न रहकर एक महान् एवं अभूतपूर्व घटना बन जाती है। उम समय के

३३३. वही, पङ्क्तु, प्र० १, चौ० ११

३३४. वही, प्र० ४, चौ० १५

३३५. वही, प्र० ४, चौ० १२

३३६. वही, किरतन, प्र० ११६, चौ० २

३३७. वही, प्र० ६२, चौ० १३

उत्सव का अभिषेक करने का प्रथम हरेक भक्त ने किया है। कृष्ण के जन्म से मागे ब्रजभूमि पुनर्जित हो उठी है—

सात्र वषाई ब्रज घर घर, प्रगट्या श्रीनंद कुमार ।
 दूध दधिग ऊभर घाणु, तोरण बाधे ब्रजनार ॥
 एक बीत्रीने छाटे नाचे, उमग घंग न भाणु ।
 घनेर विधना वात्रा रम बात्रे गृह गृह घोड्डर धाणु ॥^{३३८}

इस प्रकार हर घर में घानन्द ला गया, बाध ब्रजने लगे घोर ब्रजनार ने रग उगाने शुरू किया। घवीर गुवात का छटाकाव करने हुए सब नन्द के घर पहुँचने हैं—

नेदने वषावा साचरी, भवन भवनधी नार ।
 गाणु ने गीत मोटासगा, सात्रे मकल मणगाण ॥
 घवीर गुलाव उश्राग्नी घावे, छाया न मूभे गूर ।
 बाव चणु छवे नही भोमे, जाणु उमडयो माणर पूर ॥
 जुय जुजवे जुवनियो, उद्धरगतियो घणार ।
 घोड्डर कन्नी घावियो, बावा नद चणु दावार ॥^{३३९}

भाटधारणो ने आकर मागे वातावरण मगीननृत्य से भर दिया है—

वाह्यण भाट गृणीजन चाणु, मलया ते मायण नार ।
 निरत नटवा मघबं, रग मागीन घेई घेई कार ॥
 नाद दुद पडछदा प्रबने वरत्यो जै जै कार ।
 नद गोव महू गेहेला हरमे, मोलावे भटार ॥^{३४०}

कृष्ण के बालचरित्र का वर्णन राम के समय कृष्ण अन्तर्धान हो जाने हैं तब गोपिकाओं के अभिनय के महारे किया गया है।^{३४१} माता यशोदाजी ने कृष्ण मलन माँगने हैं और रोने जा रहे हैं लेकिन यशोदाजी की छात्रे शोध से लाल हो गयी क्योंकि इसी कारण नन्द पर रखा दूध लुढ़क जाता है। मलन न मिलने पर कृष्ण ने मटकी ही फोट डाली। यह देखकर माना कृष्ण को पकटने दौडती है लेकिन कृष्ण द्रागे निकल जाते हैं। आखिर रम्मी ने कृष्ण को बाधने का प्रयत्न किया गया।

३३८. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० ५१, चौ० १-२

३३९. वही, प्र० ५१, चौ० ३-४-५

३४०. वही, प्र० ५१, चौ० ७-८-९

३४१. प्राणनाथ, राम (हस्तलिखित), प्र० ३३, चौ० ९-२२

कृष्ण रोते जाते हैं और रस्मी में जुड़ाने के लिए बार बार जोर लगाते हैं। उम अपने लाल का चमत्कारिक स्वरूप देखकर माता बावरी बन जाती है और कृष्ण को छोड़ कर उसके मुग को चूमती रहती है।

सम्भवतः प्राणनाथ ने कृष्ण के बालचरित्र का वर्णन गतानुगतिक होकर ही किया है। जैसा भावनापूर्ण चित्रण रासलीला और नित्यलीला का उन्होंने किया है वंसा यह चित्रण नहीं बन पडा। शुष्क वर्णन के सिवा इस चित्रण में कुछ नहीं है। उसी तरह सम्प्रदाय ने जागनीलीला को भी महत्व दिया है और अपने गुरु देवचन्दजी के द्वारा सम्पन्न जागृति कार्य का वर्णन उन्होंने किया है।^{३४२} साम्प्रदायिक तत्वों का यह निरूपण भी प्रवाहित नहीं है। फिर भी गुरु की याद आते ही अपने आप, पर, अपनी नासमझ पर जो दुःख हुआ है और इसी बात को लेकर जीव, प्राण, कान आदि को संबोधन करते हुए फटकारा है वहाँ पर भाबुक्ता का अंश अवश्य ही मिलता है। सम्प्रदाय के तत्वों को अधिक स्पष्ट करने के लिए "श्री भागवत को सार" और "मठोतरसो पक्षका सार" प्रकरण अनग से दिये गये हैं। प्रगटवाणी और बेहदवाणी के प्रकरण क्षर, अक्षर और अक्षरातीत के तत्वों को लेकर लिखे गये हैं।

प्राणनाथ की सुधारवादी एव उदार दृष्टि में उन ही मनुष्य भक्ति को एक नया रंग दे दिया है। प्राणनाथ एवम् प्रणामी सम्प्रदाय जाति-पाँति के भेदों को नहीं मानता इस बात का प्रमाण उनके प्रारम्भिक ग्रन्थों में ही मिलता है।^{३४३} ससार के सभी धर्मों ने उसी एक परब्रह्म अक्षरातीत के तत्व का निरूपण किया है, लेकिन आज ससार "पंथ पंडोंकी खँवा खँव" कर रहा है। अस्तुतः यह खेल ही भूठा है और सबकी मजिल एक ही है—

जाहिर भूँठा खेल ही, हिरदे अति अघेर ।

कहे हम सावे और भूँठे, यों फिरे उलटे फेर ॥

पय मारोकी एह मजल, अनेक विध बंराट ।

ए जो विगत खेल की, सब रच्यो छलको डार ॥^{३४४}

प्रकाश-कलस ग्रन्थों में उन्होंने वेद के तत्वों का निरूपण करने हुए प्रकरण दिये हैं उसी प्रकार उन्होंने सनध, मिलवत, खुलागा, पत्रिकमा, मागर, सिनमागर, सिन्वी, मारफत मागर, छोटा कयामतनामा और बड़ा कयामतनामा रचनाओं में

३४२. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० २३, चौ० १-१०५

३४३. वही, कलस (गुजराती), प्र० ३, चौ० १४-१५

३४४. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० १५, चौ० १६-१७

इस्लाम, ईसाई और यहूदी धर्म के मुख्य तत्वों रहस्यों की तुलना एवम् समन्वय करने, यही मित्र बनने की योजना की है कि सभी धर्म एक ही मूल की भाषाएँ हैं। धन. वे सब आश्वस्त करते हैं कि सब कयामत आ गई है—

कयामत आई है साधजी. कयामत आई ।

बेट बनेव पुकारन घागम, मो क्यों न देखो भेरे आई ॥३४४

मैं ही उन्होंने यहूदियों के तीरेत धर्मग्रन्थ और ईसाइयों के इजिन धर्म-ग्रन्थ का नाम और उनके तत्वों की जर्बा की ही लेकिन विज्ञेयन. इस्लाम के मित्रानों को उन्होंने बार-बार प्रस्तुत करते हुए यही मित्र बनने का प्रयत्न किया है कि मुदा और परमेश्वर में कोई भेद नहीं है। वे यह मित्र करना चाहते थे कि ममार का उद्धार करने वाला हिन्दू ज्ञानि में ही पैदा होगा और बही समस्त मानवममुदाय को एक ही मूत्र में घड़ित करेगा और अज्ञानमय अंधकार को दूर करेगा। इन विदेशी धर्मों को स्पष्ट करने के हेतु एवं हिन्दू धर्म के तत्वों में तुलना करने के हेतु उन्होंने कुराने शरीफ नामून (मृत्युनोक), मन्कून (मननोक, बंदुष्ट), जलन (स्वर्ग), दोबन (नरक), जबरून (अधर धाम), धमर धजीम (परम धाम), मा (शर), इनाह (अधर), इल्लाहा (अधरातीत), तीहीद (अद्वैत), अमगशील (अधर की बुद्धि), जवराइन (अधरातीत की आवेशजानि), रब्बुन आलमीन (नारायण), अजाजील (विष्णु), मेकाइन (ब्रह्म), अजगाइन (रुद्र), बेनून (निगुंण), अरियन (कर्मकाण्ड), तरीकन (उपासना), हकीकन (ज्ञान), मारफन (विज्ञान), मुदाई नूर (अपोत्रिलिग), नूर जमाल (परब्रह्म), घादम (मनु), जकात (अनिवार्य दान), रोजह (उपवास), गहमानिरंहीम (वृषाशील), जिक्कस्ताह (परब्रह्मचिन्तन), तकवा (ईश्वरमय), तमवीह (पवित्रता), हम्द (महिमा), जिक् (स्मरण), अजकार (अप), इबादन (तपस्या), गुनाह (पाप), कयामत (प्रलय में अल्लह न्याय), काफिर (पानों), जिहाद (सत्सकल्प प्रयत्न), हनाल (पुष्प), लानन (शाप), हवाशून्य (निराकार), आदि शब्दों का प्रयोग किया है।^{३४६} वे विज्ञेयन: इस्लाम पर इसीलिए जोर देते हैं कि—

करना मारा एकरम, हिन्दू मुमलमान ।

घोम्ना सबका मानके, सब का कहूँगी ग्यान ॥३४७

मुमलमानों से वे यही चाहते हैं कि इस्लाम की सहाँ बातों को वे लोग ग्रहण करें। मन्वे मुमलमानों के प्रति मुन्ब प्रेम है और मेरे पाम इनाम का ज्ञान है उसके सहारे मन्वी बातें प्रस्तुत करूँगा—

३४३. प्राणनाथ, कुनजमशरीफ, किरतन, प्र० १०४ चौ० १

३४६. प्राणनाथ, कुनजमशरीफ, मुलासा, प्र० १२, चौ० ३८-४३

३४७. वहीँ सन्ध, प्र० ३, चौ० ३

अल्लजी मुस्लिम असलू, अनी मरा हवा कुंभ ।
अना हाकी हुकाईया असलू, माइ इमाभ इलम ॥^{३४८}

अजाजील (विष्णु) के फुरमान को जो मानता है और जो अद्वैत की राह पढ़ता है वही सच्चा मुसलमान है—

राह एकडे तीहीदकी, धरे मोहम्हद कदमो कदम ।
सो जानो दिल मोमन, जिन दिल अरस इलम ॥
कह्या सेजदा आदम पर, अजाजीलें फेरया फुरमान ।
सो लिखी सानत सबको, ओ औलाद आदम जहान ॥^{३४९}

अपने आपको मुसलमान कहनेवाले इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार नहीं चलते—

केहेलावें महंमदके, चले ना महंयद साथ ।
डारेंजु दागें दीन मे, कहे हम मुनत जमात ॥^{३५०}
कौन आप कौन और है, ऐसा छल किया खसम ।
सुध ना खसम रसूलकी, नही गिरोकी गम ॥
कौन रहें कौन फरस्ते, कौन आदम कौन जिन ।
पढ़ पढ़ वेद कतेब को, पर हुआ न दिल रोसन ॥^{३५१}

जो खुदा है वही परमेश्वर है और उन्हीं के प्रेम और हुक्म से हम कुछ कर सकते हैं—

“हुकमे इसक आवही, कदमो जगावे हुकम ।
करनी हुकम करावही, कछु ना बिना हुकम खसम ॥
हुकम उठावे हसते, रोते उठावे हुकम ।
हारजीत दुखसुख हुकमे, कछु ना बिना सुकम खसम ॥”^{३५२}

इसीलिए प्रणनाथ कहते हैं कि उस शराब का मजा लीजिए—

साकी पिलावें सराब, रहे प्याले लीजिए ।
हक इसकका आव, भर भर प्याले पीजिए ॥
हक आसिक रहनका, इन इमकका आव जे ।
इन आवमें जो स्वाद है, रस जानें पीवनवाले ॥^{३५३}

३४८. प्राणनाथ, कुलजमशरोफ, सनघ, प्र० २, चौ० १

३४९. वही, खुलासा, प्र० १, चौ० १९-२०

३५०. वही, प्र० १, चौ० ४४

३५१. वही, प्र० १०, चौ० ३-४

३५२. वही, खिलवत, प्र० १, चौ० ४३-४४

३५३. वही, प्र० ८, चौ० १-२

उस नूरजमान (प्रधारातीत) के दर्शन के लिए नूरजमान (प्रधार) हररोज घाते है—

नूर जमान के दीदारको, घावें नूर जलाल ।
 नूर जमान के धरगमे, दत्त रहें कमाल ॥
 नूरजमान दीदार बाहेरमे करके पीपीछे फिरत ।
 नूरजमान के बदमो, बढी रह रहे बमत ॥३५४

इसी नूरजमान (प्रधारातीत) के धरत धजीम (परमधाम) का वर्णन "परिक्रमा" ग्रन्थ में किया गया है। इस धरग धजीम में एक नूरजमान ही है और उसको प्राप्त करने के लिए इशक ही काफी है—

महामत बहे ऐ मोमनो, जो धरवा धरम धजीम ।
 इशक प्याले लीत्रियो, भर भर हलीम ॥३५५

डा० सावित्री सिन्हा ने "सागर" ग्रन्थ के सदर्भ में कहा है कि घाट सागर जल सागरो प्रथवा महासागरो के नहीं है वरन् अपने विचारो और भावनाओ के असीम सागर को उन्होने छोटे छोटे भागो में विभक्त कर दिया है। कुछ तरंगों में जहाँनूर और लूटो का वर्णन है वही कुछ में श्री राजगी के शृंगार के नाम से राधा और कृष्ण का शृंगार वर्णन भी है।^{३५६} वास्तव में उन्होने परमधाम (धरत धजीम) के घाट सागरो का ही वर्णन इस ग्रन्थ में किया है। इसमें जुगल त्रिशोर शृंगार का वर्णन किया गया है—

घातम चाहे वरनन करू, जुगल त्रिशोर विध दोए ।
 ए दोए वरनन करंगे करू, दोऊ एक कहावत सोए ॥३५७

उनके मोदर्य को रहू की आशो में देगना चाहिए तब वे प्यारे ही लगेगे—

रहू के नैना में देखिए, अति मीठे लगे प्यारे ।
 करंगे छवि इनमें, निमेष न होए न्यारे ॥३५८

पहला सागर नूरका, दूसरा लूटो की शोभा का, तीसरा रहू की एक दिलीका, चौथा जुगलत्रिशोर का शृंगार, पाँचवा इशक का सागर, छठा खुदाई इलम का सागर, सातवा निसबत का सागर और घाटवा सागर मेहेर का है। इन आठों

३५४. वही, प्र० ६, चौ० १२, ६३

३५५. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, परिक्रमा, प्र० ३२, चौ० ८५

३५६. डा० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियों, पृ० ८६

३५७. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ सागर, प्र० ५, चौ० १०

३५८. वही, प० ५, चौ० ४१

सागर के बरान में कहीं-कहीं पर इस्लाम के मिर्जातों का भी प्रतिपादन किया गया गया। इसी प्रकार "सिनगार" में भी इस्लाम को केन्द्र में रखकर महा श्रृंगार का बरान किया गया है। प्राणनाथ ने कहा है कि हक का रूप सौंदर्य जब दिलमें आकर विराजित होता है तब आत्मा जागृत हुई ऐसा माना जा सकता है—

जब पूरन सरूप हकका, आए बँठा माहे दिल ।

तब सोई भग आतमके, उठ खड़े सब मिल ।

बस्तर भूखन सब भगो, कंठ श्रवन हाथ पाए ।

नखसिख सिनगार साजके, बँटे भरस दिलमें आए ॥^{३५६}

सिनगार के घन्तमंत मुखाविद, नासून, कण्ठ, हक मामूक के श्रवण श्रंग हक मामूक के नेत्र श्रंग, हक मामूक की जुबान की सिफत, ब्रक मामूक का नासिका श्रंग, हक मामूक के बस्तर-भूखन आदि का बरान किया गया ।

सिन्धी मारफतसागर और कयामयनामा छोटा बड़ा में भी इस्लाम को ही दृष्टि समक्ष रखा गया है। 'सिन्धी' सिन्धी भाषा में ही लिखि हुई रचना है। उसमें उस परमधाम को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाने का उपदेश दिया गया है। मारफत सागर आदि में विशेषतः कई बातों का पुनरावर्तन मात्र है या उन्ही बातों का दूसरे ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इतना प्रबन्ध कह जा सकता है कि प्राणनाथ से पूर्व नानक आदि ने संबंधमंसमन्वय का प्रयत्न किया था, लेकिन प्राणनाथ ने हिन्दू मुसलमान के धार्मिक तत्वों का समान रूप से प्रस्तुत करके सबसे पहला एक सफल प्रयत्न किया। लेकिन कई ग्रन्थों में इस्लाम के इस विवेचन के कारण ही सभवतः प्राणनाथ एवम् प्रणामी सम्प्रदाय को हिन्दुओं ने इस्लामी सम्प्रदाय के रूप में समझ लिया गया है—

साहित्यिकता की दृष्टि से किरंतन के पद प्राणनाथ को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने की क्षमता रखते हैं। इन पदों में ज्ञान एवम् भक्ति को ही मुख्य विषय के रूप में रखा गया है। उपदेशात्मकता भी इन्हीं पदों में अधिक रुचिकर एवम् भावनापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त हुई है। साधु सज्जन वेपधारियों के लिए वे कहते हैं—

“श्रीध ग्रहमेव ममे नही, अने वेश धरो छो साध ।

लोभ लज्जा नमे नही, माहे मोटी ते श्री ब्राध ॥^{३६०}

लोभ बाहर से साफमुथरे लगते हैं लेकिन अंदर से मलीन रहते हैं—

ए जो दोए दिल राखत है, ए तो दुनिया की रीत ।

माहे मैले बाहर ऊजले, ए जीव सृष्टि की प्रीत ॥^{३६१}

३५६. वही, सिनगार, प्र० ४, चौ० ७०-७१

३६०. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरंतन, प्र० १२८, चौ० ८

३६१. वही, प्र० १०५, चौ० ७

मान घोर प्रतिष्ठा के लिए घर पर साधुता का स्वांग सजाया जाता तो साधुता ही बेकार है—

जो तू चाहे प्रतिष्ठा धराए बैरागी नाम ।
साथ जाने तोका दुनियाँ, वह तो साथी बगी हराम ॥^{३६२}

अतः अपने साथी-धनुष्यायियों को वे यही उपदेश देते हैं कि मेरी इस बाणी पर विचार करो तथा अपने दिल को परखो—

मुनो साथी मिरदारो, ए बीजो वचन विचार ।
देखो बाहेर माहे अंतर, लीजो मारको मार जो मार ॥^{३६३}

लेकिन उम परमधाम-प्राप्ति का रास्ता कोई सरल नहीं, साठे की धार पर चलने के समान है। उस राह पर शका-शुक्रका घोर कपट का काम नहीं। इसलिए पहले इनको दूर करो।^{३६४} वारव्रह्म की प्राप्ति श्रेम से ही हो सकती है और अनेक बसोठियों का सामना करना पड़ता है।^{३६५} इस प्रकार मोक्षमयम्कर के ही कदम धागे बढ़ाना अवश्यक है। लेकिन भावुक मत्त को इस बात का दुःख भी है कि अपने कारण साथी धनुष्यायियों को कितना सहन करना पड़ता है। अतः वे कहते हैं—

साथ जो मुनो मिरदारो, मुझ जैसी ना कोई दुष्ट ।
धाम छोड़ भूठी जिमी लगी, चोर खडाल चर्म दृष्ट ॥
अनेक अवगुन लिए मैं साथी, सोए प्रकामूं सब ।
छोड़ घटकार, रट्ट चरनीनले, तोवा खैचत हूँ अब ॥^{३६६}

वे अपने आप को इसी लिए गुनहगार बताते हैं कि उन्होंने अपने साथी धनुष्यायियों को उनके परिवार में अलग कर दिया, दर-दर मटकते कर दिये—

मृद्व मीतलमों अपने घरमे, कँ मातो करते प्यार ।
सो मारे कर दिए दुममन, जामो निमदिन करते बिहार ॥
बाल गोपान भाहे मूबी मुमाली, करते मिल नरनार ।
सो जेहेर समान कर दिए तुमको, छुटाए मीठो रोजगार ॥^{३६७}

-
३६२. वही, प्र० १०३, चौ० १
३६३. वही, प्र० ६४, चौ० १
३६४. वही, प्र० ६७, चौ० १,७
३६५. वही, प्र० ६४, चौ० ५
३६६. वही, प्र० १०१, चौ० १,५
३६७. वही, प्र० १२०, चौ० ५-६

अतः उन्होने यही उपदेश देना उचित समझा है कि—

‘तुम समझके सगत कीजो रे बाबा,
 मुझ जैसा दीवाना न कोई ॥
 मैं तो बात कसूँ रे दिवानी,
 दुनिया तो स्यानी मुजान ॥
 दुनिया को धमृत होए लागी,
 मोहे लागत है विल ॥’^{३६८}

अन्ततः माथ को धरने परमधाम के घर की याद दिलाते हुए यही कहते हैं कि^{३६९}—

अब हम धाम चलत हैं, तुम हुजो सवे हुसियार ।
 एक खिनकी विलम न कीजिए, जाओ धरो करें करार ॥

प्राणनाथ ने अपनी भावधारा में परब्रह्म के स्वरूप, उसके परमधाम, उसकी नीला, अक्षरब्रह्म का मायाविस्तार, परमात्मा की दया उनका घट घट में व्याप्त होने का वर्णन करके समावेश किया है। उनकी आध्यात्मिक भावनाएँ रचनात्मक एवम् आनोचनात्मक रूप में मिलती हैं। उनकी रचना के वर्ण्य विषय का दूसरा प्रमुख अंग सामाजिक एवम् धार्मिक भावनाओं का है। इसके अन्तर्गत समदृष्टि, राम-रहीम की एकता, विश्ववन्द्यत्व, उँच-नीच आदि का खण्डन, जैसे विषयों को अभि-ध्वस्त किया है। अपने दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक तत्त्वों की शुद्धता मिटाने के लिए रसानिर्घात का भी उन्होने यथाशक्ति प्रयत्न किया है। विशेषतः उनकी रचनाओं में शात और शृंगाररस का ही प्राधान्य है। फिर भी कहीं-कहीं पर अन्य रसों की भलक मिल जाती है। काव्यरस की शास्त्रीय कसौटी पर रसप्रक्रिया उनकी रचनाओं में अतिरिक्त होती हो लेकिन इनके कई पदों को हम भक्तिरम या शृंगार-रस की दृष्टि में सर्वांगपूर्ण पाते हैं।

भक्तिरस

डा० गोविंद त्रिगुणायत^{३७०} भक्तिरस की स्थापना करते हुए कहते हैं कि साहित्यचार्यों ने साहित्यक्षेत्र में जब ब्रह्म के सदृश ही अनिर्वचनीय साहित्यनुभूति की अभिव्यक्ति की तो उसे भी वे रस कहने लगे और ब्रह्मानन्द सहोदर अभिनन्दित किया। अगर ब्रह्मानन्द या आत्मानन्द ही वास्तविक रस है तो सत् काव्य का प्राण भी वही मानना पड़ेगा। हमें ब्रह्मानन्द से सम्बन्धित भक्तिरस को ही रस रासत्व प्रदान करना होगा। भक्तिरम का स्थायी भाव परमात्मा विषयक अनौकिक रतिभाव

३६८. वही प्र० २०, चौ० १-२-३

३६९ वही प्र० ६३, चौ० १

३७०. डा० गोविन्द त्रिगुणायत, हि० नि० का० २० पृष्ठभूमि, पृ० ६४५

परमात्मा, देवता, महापुरुष आदि उद्दीपन के रूप में, ज्ञानवैराग्य मार्गगत आदि उद्दीपन की सीमा में आवेंगे और भक्ति-भावमूलक अथु रोमांचादि अनुभाव होंगे। हर्ष, श्रोत्रमुक्थ, आवेग, चरलता, उन्माद, चिन्ता, दैन्य एवं स्मृति आदि व्यभिचारी भाव बहे जाएंगे। डा० विजयेन्द्र स्नानक, शान्त, दास्य, सरूप, वानमल्प एवं मधुर को भक्तिरस के पांच प्रकार बताये हैं।^{३७१} प्राणनाथ की रचनाओं में भक्तिरस का परिचाक निम्नलिखित पक्तियों में हुआ है—

मैं प्राण देऊ तिन सुखको, जो घाड़ी करे जाते घाम ।

मैं पिड न देखू श्रद्धाड, मेरे हिरदे बसे स्यामा स्याम ॥^{३७२}

× × ×

पुकार चले मेरे पीउजी, मैं तो नीद में उरभीष रे ।

धव हूँडे मेरा जीव रे, सो मजन धव कित पाईए ॥^{३७३}

× × ×

गुन केते बहूँ मेरे पीउजी, जो हमसो किए प्रनेवजी ।^{३७४}

× × ×

सखी री आतम रोग बुरो लाग्यो,

याको दारू ना मित्रे तबीब ।^{३७५}

× × ×

अल्ला आसक मामूक महमद, इसक दीजे हम ।

हम आसक नाम घराणके, मामूक करे हैं तुम ॥

तुम दुन्हा मैं दुलहिनी, और न जानूँ बात ।

इसक गो सेवा करूँ, सब अंगो माख्यात ॥^{३७६}

× ×

रम मगन भई सो क्या गावे ।

विचली बुध मन चित मनुआ, ताए सबद सीधा मुख क्यों आवे ।

३७१. डा० विजयेन्द्र स्नानक, राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और माहित्य, पृ० ३२३
३७२. प्राणनाथ, कुलजम, किरतन, प्र० ८८, चौ० १०
३७३. वही, प्रकाश (हिन्दी), प्र० ८, चौ० १
३७४. वही, प्र० ३६, चौ० १
३७५. वही, किरतन, प्र० १८, चौ० १
३७६. वही, प्र० ६२, चौ० १६-१७

विचने नैन श्रवण मुख रसना, विचले गुण पख इन्द्रो अंगे ।
 वीचली भांत गई गत प्रकृत, विचल्यो सग भई और रंग ॥
 विचली दिमा अवस्था चारो, विचली सुख ना रही सरोर ।
 विचल्यो मोह अहकार मूल ये, नैना नीद न आवे नीर ॥
 विचल गई गम धार पारकी और अंग न कजुए सांन ॥
 पिआरसमे यो भई महामत, प्रेम मगन क्यो करसी गान ॥^{३७७}

शान्तरस

प्राणनाथ की वाणी में यत्रतत्र शान्तरस ही छाया हुआ है। संसार की नश्वरता, उसमें दिखाई पड़नेवाले भौतिक पदार्थों की निस्सारता का उस परब्रह्म अक्षरातीत के स्वरूप का ज्ञान होने से मन एव हृदय को कुछ ऐसी शान्ति मिलती है कि उसके आगे सामाजिक सुखवैभव तुच्छ लगता है। वही शान्ति भावक के अन्तर में शान्तरस की उद्भावना करता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित पद्यांश दृष्टव्य है-

रे मन भूल ना महामत, दुनिया देख तूं आप संमार ।
 ए नाही दुनिया आप वावरी, ए रच्यो माया क्यात ॥
 असत तिनको भरम कहिए, होत है जिनको नास ।
 एतो चौदे चुटकी मे चली जानी, यो कहत सुकजी व्यास ॥^{३७८}

× × ×

मै देख्या दिल विचारके, चित्तसो अरथ लगाए ।
 इस मडल में आतमा, चल्या न कोई जगाए ॥
 मेहेनत तो बोहोतो करी, अहेनिम खीत्र विचार ।
 तिन भी धन छूटा नहीं, गए हाथ पटक सिर मार ॥^{३७९}

× × ×

बोहोत पुकार कलुं किस खानर, ए सब सपन सरूप ।
 बेहेद बनजका होएगा सायी, मो एक लवें होसी ठूक-ठूक ॥
 महामत ए सनमधे पाइए, ऐमा अण्ड सुख अपार ।
 गुह प्रमादे नाटक वेव्या, पाया मन मनका प्रकार ॥^{३८०}

× × ×

३७७. वही, प्र० २६, चौ० १-४
 ३७८. वही, प्र० २५, चौ० १, ६
 ३७९. वही, सन्ध, प्र० ५, चौ० ७-८
 ३८०. वही, किरंतन, प्र० ७, चौ० १६-१७

पडे मुने बिहार न छूटे, घाग न घ गये जाण ।
 घाय बदन चीन्हे शिना, तो सो जन दिन गोने गाण ॥
 ए मगे सब ममभाए के, कोई भंग करे उत्राग ।
 सो गुद मेरा मै सेबोताए, मुष चिन होए दाग ॥^{३८१}

× × ×

बनिहागी जाऊ बोगीन बेर, देहरी मंदिर द्वार ।
 वारने जाऊ इन शिमीने, जहा बगन मेरे घाघार ॥^{३८२}

शृंगाररम

वस्तुतः प्राणनाथ का दाम्पत्यप्रेम ईश्वरीयप्रेम का स्थान प्राप्त करता है । प्राणनाथ के मतानुसार उम परब्रह्म कायप्राणनाथ ही इम मृष्टि में धवनरित हुई है, अतः उन्होंने पद्मधाम सीता के सयोग शृंगार का वर्णन किया है उमगे अधिक धपने स्वामी मे बिजुड़ी हुई इन ब्रह्माण्डाधो के वियोग का वर्णन किया है । इम प्रकार उनके शृंगार में सयोग एवम् विप्रलभ की सपन अभिव्यक्ति हुई है । यह कहना आवश्यक है कि विप्रलभ शृंगार के चित्रण में भी पूर्वगत घोर मान का कोई स्थान नहीं है, सिर्फ प्रवास का परिपाक हुआ है । सयोग एवम् विप्रलभ शृंगार की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद्यांशो में हुई है—

अमृत पीजे ने चुवन दीजे, कठरे वानाने बनाइये रे ।
 हुमचहीमा त्रए रस लीजे, रहन रामतटी गाइये रे ॥
 ए रामतया विलास जे बीषा,ने बहेबाय नहीं मुष बाणी रे ।
 मगे मुग्धता लेई बगीने, रह्या कदमामा जाणी रे ।^{३८३}
 स्यामाजी स्यामके संग, जुवनी अति जोर जम ।
 करती पूरन रग, पर घातम परै ॥
 भंग भंग उधरग, सखी सखी मन उर्मग ।
 अलबेनी अति अभाग, मामनी रस भरे ॥
 छटके छैन कठ मेल, हाम सेन रगरेल ।
 बध बेल टमके बेल, कामनी बेल करे ॥
 कठ हार सजे मिनगार, नैन समार सोने मुन्वार ।
 मग घाघार, करे बिहार, महामति कात्र मरे ॥^{३८४}

× × ×

३८१. वही, प्र० २६, चौ० १३-१४
 ३८२. वही, प्रकाश (हिन्दी) प्र० २३ चौ० ४
 ३८३. प्राणनाथ, कुलजम, राम, प्र० १४, चौ० ६-७
 ३८४. वही, किरतन, प्र० १२३, चौ० १-४

एक बँठत पलंगें, पीउजी के संगें, खेलत पेम खुमार ।
 आप अपने भंगें, करत हैं जगें, कोई न देवे हार ॥
 एक भंग अपने भात पतगे, क्यों कहूं ए मनुहार ।
 अति उछरगे, होत न भगे, सत सुख संत भरतार ॥^{३८४}

× × ×

कोयलढी टहेंकार करे रे, खुलडा करे रे कलोल ।
 एणी ऋते हैं एकलढी, रोई नयणां कळं रग चोल ॥
 बादरं मोर श्रीडे वनमां, आनन्द देखी वनराय ।
 एणे सभे वालाजी विना, विरहमुं कालजडुं रे कपाय ॥^{३८५}

× × ×

विनता विनवे रे, पीउजी रसिया तमे केहेवाहो ।
 तो एकलडा अपने मूकी, अलगा केम करी थाओ ॥^{३८७}
 जेणी ऋते तमे मुने कीघा परदेशण, वली ते आध्या आपाढ ।
 हजी विद्योडो न भाजो रे वाला, जीवने थई वली बाढ ॥
 बाद वशेके थई जोरावर, ते ऊपर तींधू वली लोण ।
 अक्गुण मारा तमे आध्या चितसु, हवे खबर ते लेशे मारी कोण ॥^{३८८}

× × ×

पीउजी तमे शरदनी रुते रे सिधाव्या,
 हां रे मारा भंगडाया विरह वन वाख्या ।
 ए वन क्षण क्षण कुंपलियो मूके,
 हा रे मारुं तेम-तेम तनडूं सूके,
 हो श्याम पीयु पीयु करी रे पुकारुं ॥^{३८९}

× × ×

वाला मारा आवी रे रुतडी वसन्त,
 चन्द्रमुख अमृत रस से भरन्त ।

३८५. वही, परिक्रमा, प्र० ४२, चौ० ९-१०

३८६. वही, पडरुतु, प्र० ६ चौ० ५-६

३८७. वही, किरंतन, प्र० ४४, चौ० १

३८८. वही, पडरुतु, प्र० ७, चौ० १४-१५

३८९. वही, बारहमासा, प्र० १, चौ० १

वाना वनडु मोपुं रे कूपलियो करन्,
एणु ममे न घावो तो घावे भारो घत ॥^{३६०}

× × ×

वानो यजमा रम्या जे जुगते, धमे गहू वेप घमाते विगते ।
पीउडो तोहे न दीमे बघाहे, वामजहू कणाय माहे ॥^{३६१}

वीररस

“साहित्यदर्पण” बार ने वीररस के मक्षण बताते हुए कहा है कि “कार्या-
रम्भेषु सरम्यः स्वेयानुत्साह उच्यते”,^{३६२} शत्रु की सलकारों या धर्म की दुर्दशा
घादि को देखने में हृदय में उनको मिटाने का जो भावावेश या जोग उत्पन्न होना है
वही उत्साह है। अतः युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर के आधार पर
वीररस के भी चार प्रकार माने गये हैं। प्राणनाथ ने महाराजा छत्रमान को
उत्साहित करने के लिए त्रिम पद का उपयोग किया था वही वीररस के उदाहरण के
पर्याप्त होगा—

गजाने भलो रे रोणें राए तणों, धरम जाना बोई दौडो ।
जागोने जीधा रे उठ मडे रणो, नींद निगोडी रे छोडो ॥
छूटन है रे मडग छत्रियो में धरम जान हिन्दुमान ।
मन न छोडो रे मतवाडियो, जोर बडयो गुरकान ॥
कुनिए छत्राए रे दिलडे जुदे किए, मोस घह के मदमाते ।
धमुर माने रे धमुराई करे, नो भी न मिने रे धरम जाते ॥^{३६३}

× × ×

गुनियो पुकार रे स्थाने मतजनो, जो न दीडया जाते मत ।
गण ने भवसर पीछे बहा करोगे, बहा गई करामात ॥
ममकर धमुरोंका चहूँ दिस फँलाया, बाढयो अनिविस्तार ।
वन ने जगल रे हिंदू रहे और कर लिए सब घुंघकार ॥
हरद्वार दहाए उठाए तपमी तीरथ, गोवध कै भों विघन ।
ऐसा जुनम ह्रमा जगमें जाहेर, पर कमर न बाधी रे किन ॥^{३६४}

३६०. वही, प्र० ४, चौ० १

३६१. वही, राम, प्र० ३३, चौ० २६

३६२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३।१७२

३६३. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० ५८, चौ० १-२-३

३६४. वही, प्र० ५८, चौ० ११-१२-१३

कहरारस

“एको रसः कहर एव” कहकर भवभूति ने कहरारस को ही प्रधानता दी है। प्रिय वस्तु या व्यक्ति के कारण उत्पन्न केश ही कहरारस को उद्भूत करता है। प्राणनाथ की विशेषतः प्रारंभिक रचनाओं में कहरारस का परिपाक हुआ क्योंकि उनके दिन में गुरु देवचन्दजी की मृत्यु की चोट लगी हुई थी। वे उनकी वाणी-तारतम्यज्ञान आदि को याद करते हैं—

भव कहा कहरं कहां जाऊं, ए बानी घनी बूढ़ों कित ॥
 पीउ पहुंचाए मैं पीछे फिरी, करने विलाप रही इन ॥
 भव एतू बानी कहां सुनसी, मेरे घाम घनीके वचन ।
 धरनन करते जो श्रीमुख, सो भव काहूँ न पाईए ठोर किन ॥^{३४५}

× × ×

कर कर सोर जो बल्लभा, फिरे जो आप वतन ।
 चल जो मेरे देखते, केहे केहे अनेक वचन ॥
 दुलहा मेरा चल गया, मेरी बले न जुवा यो ।
 पल पल वचन पीउके, मोहे लगे कटारी ज्यो ॥^{३४६}

अद्भुतरस

अद्भुतरस का स्थायी भाव विस्मय है। विश्वनाथ ने विस्मय के सदर्म में कहा है कि विविध पदार्थों में लोकोत्तरता देखकर जो प्रसार होता है उसे विस्मय कहा जाता है।^{३४७} किमी असाधारण वस्तु के दर्शन मात्र से जो आश्चर्य भाव उत्पन्न होता है वही अद्भुत रस है। प्राणनाथ ने कृष्णवर्णन में अन्तर्गत इस रस की अभिव्यक्ति की है—

ए तो बाध्या दामणिए बध रे, जुओ काहावजी रूप अचम,
 तीहां रोतो रिखतो जाय रे, रह्यो वृक्ष उल्ले भराय रे ।
 तीहाथी निसरतां की धू जोर मे, पढ्यो वृक्ष धयो अतिशोर रे ।
 तेमा पुरस बे परगट घ्यारे अंग मोडीने उमा रह्या ॥
 कर जोडीने अस्तुत कीधी, तेने तरज वाले सीख दोधी ॥^{३४८}

बीभत्स रस

घृणा उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं के चित्रण से हृदय में एक प्रकार की म्लानि का प्रादुर्भाव होता है और उसी में बीभत्स रस उत्पन्न होता है। डा० गुलाबरायजी

३४५. वही, प्रकाश हिन्दी), प्र० ६, चौ० ३८-३९

३४६. वही प्र० ८, चौ० ६-१०

३४७. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३।१७६, १८०

३४८. प्राणनाथ, कुलजम, रास, प्र० १३, चौ० १७-७८-१९

ने इस रम के सदभं मे कहा है, मवार मे वैगम्प उत्पन्न करने के कारण यह भान्तरम का सहायक होता है। जहाँ पर समाग से घृणा विवेक के कारण होती है वहाँ पर जुगुप्सा, विवेकजा कहवानी है और जहाँ साधारण रूप मे होनी है वहाँ प्राय की कहवानी है। बीभत्स के निम्न यह आवरणक नहीं कि भांग और कृमि का ही वर्णन हो वरन् यदि कोऽनैतिक बुराई भी हो तो बीभत्स का प्रालंबन बन जाएगी। सुधार के लिए बीभत्स का वर्णन आवश्यक हो जाता है।^{३४६} प्राणनाथ ने दो-तीन स्थान पर इस रम की अभिव्यजना की है—

प्रव बगो करू गी मैं बातही, मामी बगो उठाऊंगी मोह ।
मेरे हाथ ऐसी भई, खलही उतारूँ मिर नोंह ॥
काटू तन तरवार मो, भूक करूँ हड्डिया तोर ।
खलही उतारू पेहेले उलटी, जीव काटू यो जोर ॥^{४००}
हडिया जाऊ घागमें, मांहे मास टारूँ मिर ।
ए भूमी दु ख बयोह ना मिटे, ए समया न घावे किर ॥^{४०१}

× × ×

निरमल नजरों न आवही, ने वंठी मग चढाल ।
उपजन ऐसी अगधें, उतारूँ उलटी खाल ॥
सत्र अंग काट चीरा करूँ, मांहे मरो मिरख और खून ।
कँ कोट वेर ऐसी करू, तो भी न छूटे ए खून ॥
हँडेमे ऐसी उलट, सब अग करू टूक टूक ।
हडियां सब जुदी करू मान करूँ मान करूँ भूक भूक ॥^{४०२}

कलापक्ष

भावतत्त्व भले ही काव्य का प्रमुख अंग हो लेकिन भावों की अभिव्यक्ति के लिए कलातरवों का इतना ही महयोग मिलना आवश्यक माना जाता है। शब्द और अर्थ के अभाव में भावघाग नहीं न वही विलीन हो जाती है। अतः प्रमूर्त विचारों एवम् भावनाओं का व्यक्त मूर्त स्वरूप देने के लिए कलापूर्ण अभिव्यक्ति प्रणाली का महत्त्व बना रहा है। लेकिन मध्यकालीन सन्तों एवम् भक्तों ने अपने दृष्टय मे उठने वाली भावचारा को उसी रूप मे अभिव्यक्त किया है। वहीं भी उन्होंने कलापूर्ण

३६६. डा० गुलाबराय, मिढान्त और अध्येयन, पृ० १४३

४००. प्राणनाथ, कुलजम प्रकाश,, प्र० ८, चौ० १५-१६

४०१. वही, प्र० ८, चौ० २२

४०२. वही किरतन, प्र० ४२ चौ० ५-६-७

अभिव्यक्ति के लिए आभास भी नहीं किया। फिर भी उनकी वानियों में अनायास ही कलातत्त्वों के दर्शन अवश्य होते हैं। काव्यकला के संदर्भ में प्राणनाथ ने एक स्थान पर यही कहा है कि अक्षर और मात्रा की लघु-दीर्घता का ध्यान रखना यह केवल कवियों का खिलवाड़ है। इस कविकर्म के वास्तविक अर्थ को मैं समझता हूँ, लेकिन मेरी इस भावनापूर्ण व्याख्यात्मक वाणी में ऐसा कविकर्म मुझे शोभा नहीं देता।^{४०३} अतः स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वाणी में कलापूर्ण अभिव्यक्ति की चमक प्राप्त नहीं होती। इस बात से यह समझ लेने की भूल नहीं होनी चाहिए कि उनकी समस्त वानी में कला का कोई तत्त्व ही नहीं। स्वाभाविकता से आने वाले कलातत्त्वों के दर्शन उनकी रचनाओं में ही होते जाते हैं।

काव्यशैली की दृष्टि से प्राणनाथ को सफल मुक्तककार अवश्य कहा जा सकता है, लेकिन प्रबन्धकार के रूप में उनको सफलता नहीं मिल सकती। प्रबन्ध के लिए आवश्यक अविच्छिन्न भावधारा के उनमें दर्शन नहीं हो पाते, लेकिन मुक्त के रूप में उनके घनीभूत भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक ढंग से हो सकी है। इस भावाभिव्यक्ति में अलंकार, संगीतात्मकता आदि ने अनायास ही योग दिया है।

अलंकार

भक्त या कवि अपनी भावाभिव्यक्ति की एक ऐसी चरमसीमा पर जब पहुँच जाता है तब उसकी अनुभूति तीव्रतम हो जाती है और उसको यथास्वरूप प्रगट करने पर भी आत्मसंतुष्टि के लिए अधिक प्रयत्न करता है। यही अलंकारों का संभवतः जन्मस्थान है। अनुभूति को ये अलंकार आभूषित करते हैं। हालाँकि प्राणनाथ ने ऐसे कई स्थान छोड़ दिये हैं। जहाँ पर वे अलंकार से अपनी भावधारा को अधिक सुशोभित कर सकते थे। उनके प्रिय अलंकारों में रूपक, उदाहरण दृष्टान्त, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और उपमा रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अलंकारों के दर्शन भी यत्रतत्र हो जाते हैं उनकी वानी में प्रयुक्त अलंकारों में से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—
अनुप्रास^{४०४}।

“सुन्दर सख मिएगार सोहावे, तहा नेहेरे भूषण कह आवे।”

“सुन्दर शोभा स्यामाजी केरी, निरखी निरखी ने निरखू।

अन्तर रालीजीने एक थया, इन्दावनी वहे हू हन्सू॥”

४०३. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), प्र० २, चौ० ३

‘लघु दीर्घ पिंगल चतुराई, ये तो किवनी छे बडाई’।

ए हनु अर्थ हूँ जाणूँ सही, पण आ निघमाते सोभे नही ॥”

४०४. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप, रास, प्र० ६, चौ० २७; प्र० ६, चौ० ३६; प्र० ६ चौ० ७१; प्र० ३०, चौ० १; प्र० ४०, चौ० १, कनक हिंदी, प्र० ३, चौ० १; (किरतन) प्र० ३ १४४, चौ० ४

"मृदग चंग, तंबूर रग, अति उमंग, गावती सखी स्वरकरी ।"
 "छिड़ी न छटके, लग न अटके, भरे पाऊं चटके, मानवती मटके ।
 लिए रग लटके, छुटाके अक्षुर घटके, बली बली सटके ॥"
 "दरद देहा जरद गरद रद करे, मैं कयो धरू धीर अम्बिर सरीरे ।"
 "नूर हक सहर मजकूर नूर महामत, नूर उरया बका नूर का सूर ।
 सब नूर रहे नूर हादी नूरमे, नूर नूर मे खँच लई इके हजार ॥"

उपमा ४०४

"रैल स्वैत सौभा धरे, वृन्दावन मम्भार ।
 सकल कलानो बद्रमा, तेज धरा धरे अपार ॥"
 "सील कहे सतोप सुनो, आपणो कीधा छे पाल ।
 परवत ताणै पूर सागरना, मोहे वेहेबट छे निताल ॥
 ग्रामलिया अलेखे दीमे, लेहेरो मेर समान ।
 मछ जारोवर मोहे छे मोटा, पाल करवी एने ठाम ॥"
 "वास्ना जीवका वेवरा एता, ज्यौ मूरज दृष्टे रास ।
 जावका अग सुपनका, वास्ना अग साख्यात ॥"
 "ए लीला होसी विस्तार, मूरज ठाप्या नारहे लगार ।
 ए लीला कयो टापी रहे, जाकी रास घनी एस अस्तुत करे ॥",
 "तरग बडे मेरसे होए, इन खडा ना रेहेने पावे कोए ।
 लेहेरें पर लेहेरें मारे धेर, माहे देत ममरिया फेर ॥"
 "मत असत पटतरो जँस दिन और रात ।"

रूपक ४०६

"भवसागरनां जल छे अपार, तैतां तने सेहेजे उतरया पार ।
 तमे भली पहेलीने कीधी मोटी बाहर, धणी लिए तेम ली धी सार ॥

४०५ वही, रास, प्र० १०, चौ० ३१, प्रकाश, प्र० २०, चौ० ११०-१११;
 कलम हि० प्र० २३, चौ० ६१, प्र० ८, चौ० ८, प्र० ३७, चौ० ८०;
 प्र० १०, चौ० १

४०६ वही, प्रकाश (गुजराती), प्र० १८, चौ० ३; कलम गु० प्र० १, चौ० ३७;
 प्र० ७, चौ० ४५; प्र० हि० प्र० १८, चौ० २; प्र० २०, चौ० ६०; प्र० २२,
 चौ० २ प्र० ३७, चौ० ७६; कलम हिन्दी, प्र० ६, चौ० ७; प्र० १०,
 चौ० १; किरतन, प्र० १७, चौ० १२, प्र० ३४, चौ० ३;
 प्र० १३३, चौ० १.

ऋतव चितवणी जे सेवा करे, प्रवला गुण मोहजल परहरे ।
 किहा यकी घने भाविषी, घने पडया ते घंधेरेमाहे ॥
 जीवनजोत प्रलगी पर्ई, मांहेथी न केमे निसराए ॥
 तारतम सूरज प्रगट्यो, सकल थयो प्रकाम ।
 लागी सिखरो पाताल भलक्यो, फाडियो प्राकास ॥
 सुखसागरमां भीलवी, विकार सधला धोऊं ।
 में पेहेले ना पेहेचाने श्रीराज, माहे घाडी भई माया की लाज ।
 भवसागर की किने पाई ना किनार, सो तुम सहेजे उनारे पार ॥
 तारतम जोत उदयोतके प्रागे, मये कबू ना होए ।
 प्रेम प्याला भर भर पीऊं, चंलोकी छाक छकाऊ ।
 चौदे भुवन में कहुं उजाता, फोड ब्रह्माड पीठ पाम जाऊं ॥
 मोहजलपूर तीखा घतिजोर नम्र घंगुरीको लेजाए तोर ।
 बिरहासागर होए रह्या, बीब भीन बिरहनी नार ।
 दौडत हूँ निसवासर, कहूँ बेट ना पाउ पार ॥
 सतसूर सब देखही, जब प्रगट भयो प्रमात ।
 दुख सब सुपनी होए गयो, अलण्ड सुखभोए भयो ।
 महामत खेले घपने लालसो, जो अक्षरातीत कहुं ॥
 रे जीव सरीर मंदिर सोहामनी, चौदह खने रे अचाम ।
 इनके भरोसे जे रहे, ते निकस चले निरास ॥
 प्रेमेमे भीगे रहिए, पीउमो घानन्दधन ।
 विसराई गिन्यो वेजे सूंजी सघारयो बजे ।
 रिणायर रैत्यो वेजे, मालम कर मोहाड,
 छाला पुंजे बदरपार ॥ (मिन्वी भाषा)

उत्प्रेक्षा ५०७

नामे जाको प्रपन्न, तिनमको मूल सरीर ।
 या बनयें बाग विस्तारयो, जानो भरया मृगजल नीर ॥
 नीर खारे भवसागर, और नेहेरा मारे भार ।
 बेटो बीच पछाडही, वार न काहूँ पार ॥

५०७. प्रागुनाय, कुलजमशरीफ, किरतन, प्र० ३४, चौ० २; कलम हिन्दी प्र० ४,
 चौ० ८-९; प्रकाश गुजराती, प्र० ४, चौ० १, रास प्र०-१, चौ० २;
 प्र० ७, चौ० ३

तान तीमे आडे उलटे और नेन भमरिया जल ।
 पिने मछ लडाइया यामे लेवें सारे निगल ॥
 न काई मनमा न काई चित, न काई मारे रहें एकडी भत ।
 एक वचन ममू न कहेवाए, एता आओ जाणे पूरतणी दरियाए ।
 विम्बने लागी जाणे ब्राध, माहे अग्नि बने अगाध ।
 कोटानकोट जाणे मूरज उदया, ब्रह्माड न माए भलकार ।
 प्रयलपूर जाणे मायण उलटयो, एक रम धई सयेनार ॥

दृष्टान्त^{४०८}

कठिन निपट घाटी प्रेम की भ्रंशक बको मूरो किनो न अगमाए ।
 धार तरवार बिनगार कर, मामी अ ग मागा रोमरोम भराए ॥
 मुच मरीर बिमरी गई, बिमरी गया घर ।
 कीडी कु जर गली गई, अचरज या पर ॥
 आगल एम कह्यु छे, आंधलो चाने मही ।
 ज्यारे भटके भीतनलाटमा, तिहा लगे देखे नहीं ॥
 तेना अमने अनुभवू, अमे तोहे न जाणी मनघ ।
 घन लाग्यो कथानमा, अमे तोहे अंधना अंध ॥
 आप थमम आहूँ गोण है, आगे होत प्रकार ।
 उदया मूर झिने नहीं, गयो निर्भर सब नाम ।
 कुकरम करो कुटिनगत चानों, आगे धीछे चौटी हार ।
 बल्लभकुंअर नितको वरजे, कँ उलटे मेवक ससार ॥
 दोम नहीं इन बामी केरो, ए तो दुष्ट दामीनी कमाई ।
 अघम मिष्य गुरु को बुरा कहावे, पर मोने न लागन स्याही ॥
 बीजा वचन भारे केन कहिए, ते ता अरथी बिना न अवार ।
 केमगी दूध कनकता रे, पात्र बिना न समाए ॥
 अत्र औरतकी मैं क्या बहूँ, जो बडको का ए हाल ।
 जल जैव तरण तैम, उठे माया मोह अहकार ॥

४०८. वही, कल्प (हिन्दी), प्र० ३, चौ० २, प्रकाश (गुजराती), प्र० ३१, चौ० १३२, राम, प्र० १, चौ० ६४-६५; कलम (हिन्दी), प्र० ९, चौ० ४५; किरंतन, प्र० १३, चौ० १७, प्र० १३, चौ० १८; प्र० १२८, चौ० ५६; प्र० २१, चौ० ५

उदाहरण ४०६

काल ना देखें इन फेरे, याही तिमिरके फ़िद ।
 ए सूरज घांभी देखिए, पर याही फ़द के वष ॥
 वाघो बादल बीजगाजही, जिमी जल न समाए ।
 ए पाचो घ्राप देखाएके, फेर ना पैदा हो जाए ॥
 या भात अनेक ब्रह्माडमे, देत देखाई दसो दिमा ।
 ए मोहजल लेहेरो लेवही, सागर सब एक रस ॥
 ऐसा खेल छलका छोडाए नही ।
 ब्रह्मांड को कारीगरी सारी करी सही ॥
 कबूतर बाजीगर के, जैसे कडियाभरिया ।
 तब ही देखे फूंक देहके, तुरत खाली करियां ॥
 ऐहेना पात्र हमे ए जोग, आ लीलानी ते लेमे योग ।
 केमरी दुव न रहे रज मात्र, उत्तम कनक बिना जेम पात्र ॥
 अथ सुनो रे तुम सैया, कहू सो बीचक बात ।
 पानी तो पीउजी ले चले, अथ तनफूँ मछनी न्यात ॥
 चोहोत देखें दुख अनेक होएमी, ताथें उठो ततकालजी ।
 जलके जीवको घटजल मे, ज्यों मकड़ी मोहे जालजी ॥
 हाडे हाड पिमाव हैं, चकी बीच जिय भात ।
 धाराम ना जीवडा होव ही, तो वषों कर उपजे स्वात ॥
 खेले सब देखा देखी, ज्यो चले चीटी हार ।
 यो जो अंधे गफलती, बाधे जाए कतार ॥
 खेल खेलें आप रवदे, मिनों मिनें करें क्रोध ।
 जैसे मछ गलामल, छोडे ना कोई क्रोध ॥

विनोक्ति ४१०

ब्रह्मा नही ब्रह्माड मे, बिना सुहागिन नार ।

४०६. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, प्रकाश (हिन्दी), प्र० १, चौ०-१७-१८-१९;
 प्र० ३१, चौ० १४८-१४९; प्रकाश (गुजराती), प्र० ३३, चौ० ३; प्रकाश
 (हिं), प्र० ८, चौ० ८, प्र० ३०, चौ० १३; प्र० ४, चौ० ३; सनघ
 प्र० १४, चौ० ३३; प्र० १५, चौ० २
४१०. वही, कलस (हिन्दी), प्र० ६, चौ० २३; सनघ प्र० २७, चौ० १३; किरतन
 प्र० ३३, चौ० ५; कलस (गुजराती) प्र० २, चौ० १६; किरतन प्र० २६,
 चौ० १३; प्र० ७६, चौ० २८; प्र० १०६, चौ० ३

मो बिना विरहाना जने, होए नहीं दिलपाक ।
 धिना पुरान प्रकाम न होई, साम्प्र बिना कौन माने ।
 एक भक्षर को भ्रय न भावे, तो पार ब्रह्म भरम में भावे ॥
 बिना भगनी पर जने, अंग काम क्रोध न भाए ।
 छली बिना केम रहेवाए, जा कार्दक भोवखाए ।
 मीनजलविण जेणी भदाए धनररह न समाए ॥
 पट्टे गुने विकार न घूटे, भाग न अंग घे जाए ।
 भाप वनन चोन्हें बिना, तोनोवन विन गोते खाए ॥
 कं भाए अनुभव नेघेके, मो पीछे दिए पटकाए ।
 धनी दया अ दूर बिना, किन मन मुष लियो न जाए ॥
 भत्र बिना मत्र नरक है, पच पच भरिये भाहें ।

विभावना १११

देखो अं नीन श्रद्धिया, हाय बिना ह्यियाय ।
 नौद बही है जागन, पिड बिना आकार ॥
 ओटा लेवे जिमी बिना, पाव बिना दोझे जाए ।
 जल बिना भवमागर, यामे गल चुए खाए ॥
 मूल बिना ए वृक्ष सदा, ताको फल चाहे मव कोए ।
 ए नरम बाजो रची रामन, बट्ट विवे मंमार ।
 ए जो नैन देवे श्रवन मुने, मव मूल बिना विस्तार ॥
 तेरे बीच वाट घाट न तत्व कार, तूं करे पाठ बिना पथ ।
 निरजन के परे न्याग, तहा हमारा क्य ॥
 गुंघो जाली दोरी बिना, भाप बांधो माहें अंग ।
 अंग बिना तमे तरफडो, कोटि ए रामनना रग ॥

मानवीकरण ११२

हवे फिट फिट रे भू ही बुध, तें नव दीर्घा जीवने मुष ।

५११. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलम (हिन्दी), प्र० २२, चौ० ६, प्र० २२, चौ० ६; प्र० २२, चौ० १६, किरंतन प्र० ८, चौ० ५ ८; प्रकाश (गुजराती), प्र० ११, चौ० ४

५१२. वही, प्रकाश (गुजराती), प्र० ४, चौ० ६१; प्र० २०, चौ० ५१; प्र० ३०, चौ० २२, किरंतन प्र० ८, चौ० १; प्र० २१, चौ० १; प्र० ७५, चौ० ६-१०; प्र० ७६, चौ० २८

महादुष्ट अभागणी तू, जाण जीवने कां नव करयूं ॥
 मद मत्सर अहंमेव अहकार, नमे दोड कीधी संसार ।
 प्रभात थासे अति वेगलो रे, रात छेडां केमे न आवे ।
 हो मेरी वासना तुम चलो अगमके पार ।
 अगम पार अपार नार, तहां हें तेरा करार ।
 तू देख निज दरबार अपनों, सुरत एही सभार ॥
 दुनिया मोह मदकी छाकी, चली जात वेसुध ।
 पहाड रोए टूटे टुकडे, हुए हें भूक भूक ।
 भवजल कोया सागर, सो गया सारा सूक ॥
 भोम रोई भली भांतसों, टूट गई रसातल ।
 नागलोक सब रोइया, सो पडया जाए पाताल ॥
 जब चडे विकट घाटी प्रेम, तब चैन ना रहे कछु नेम ।

अतिशयोक्ति ४१३

आपण माटे दीडा सही, पण आही जिम्पाएं केहेवाए नही ।
 भोम कहूवाकाए जो गणाए, साएर लेहेरे उठे जलमाहे ॥
 मेघ पण गाजे बली पडे, वनस्पाति पत्र कोई नव गणे
 जदिय तेहेनो निरमाण थाए, पण घणी तण गुण केमे न गणाए ।
 ए भोमनी रेत रंचकने, समान नही मूर कोटजी ।
 वरनन करूं एक पातकी, सो भी इन जुवा कही न जाए ।
 कोट ससी जो मूर कहूं, तो एक पाठ तले ढपाए ॥

अर्थांतरन्यास ४१४

साचूं कहे दुख लाग से, साचूं ते केहेने न सुहाए ।
 प्रगट कहिए मोहो ऊपर, त्यारे दोहेला सहूने थाए ॥
 चढवूं ऊंचूं चीरक थई, वाटें दु.ख दिए घणा दुष्ट ।
 प्रवाह उतरनां सोहेलूं, पण दोहेलूं ते चढता पुष्ट ।
 सोहेलूं देखी का उतरो रे, आगल दोष अनेक ॥

४१३. वही, प्रकाश (गुजराती), प्र० ११, चौ० ८-९; कलस (गु०). प्र० ९,
 चौ० १७, कलस (हिन्दी), प्र० २०, चौ० २०

४१४. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, किरंतन, प्र० १२८, चौ० ५; प्र० १२८, चौ० १६

मारु, घनाथी, घन्या मेवाडो, श्रीघानि, केदारो गौडी कालेरो, द्विडोल गौडी, बेराडो, केदारो, कल्याण, काफी, पचम, मिधुडो, वमन्न, मालव, मामेरी, घासावरी, मल्हार, बहार प्रादि प्रादि ।

सगीत मे भाव, लयकारी और रागो का वैविध्य समझने का ज्ञान होना चाहिए और प्राणनाथ मे ये सब होने का प्रमाण कई स्थानों पर मिलने है । उनके निम्नलिखित पद मे प्रियतम शृणु के माय राम मेलने वाली गोपिकाओं के हृदय की खुशी हूबहू अभिव्यजित हुई है—^{४२५}

- (अ) लटके गाए, लटके नाचे, लटके मोडे प्रथ ।
लटके रामत रेहेस लटके, लटके माई लिए संग ॥
- (ब) स्यामा स्याम जोड करता कल्लोल ।
रमे रग रोल, चाए भरुभोल, बने एक मतमूं ॥
- (स) छेक वाले छरुईमूं, त ता धेई धेई चाए ।
- (द) मृदग चग, तबू रग, अनि उमग, गावती सखी स्वर करी ॥

सम्भवतः प्राणनाथ को पिगलज्ञान से अधिक शुद्ध रूप से शास्त्रीय राग-रागिनियों का ज्ञान था और इसीलिए उनके ऐसे कई पद उत्कृष्ट बन पडे है ।

भाषा

भक्तो एवम् सगतो की भाषा के सदभं में निर्गुण्य करना टंडो खीर के समान है । उन्होने अपने भावो पर ही इतना जोर दिया है कि भाषा प्रादि कला के ग्रन्थ तत्त्वो के महत्त्व का स्वीकार ही नहीं किया गया । लेकिन प्राणनाथ भाषा की दृष्टि से ग्रन्थ भक्तो-सतो से कुछ विशेष व्यक्तित्व रखते हैं । देशाटन के कारण उन्होने भरबी, फारसी, सिन्धी, कच्छी, हिन्दी और उर्दू भाषा का ज्ञानार्जन किया और उसका पूर्ण समझदारी से उन्होंने उपयोग किया है । रास, प्रकाम, पद्मस्तु और कलस उनकी मातृभाषा गुजराती मे लिखी गयी रचनाएँ हैं, जबकि शेष सभी रचनाएँ हिन्दी-प्रधान रही हैं । सिन्धी रचना सिन्धी भाषा मे ही लिखी हुई है । "किरंतन" मे छोडे पद गुजराती मे लिखे हुए हैं । उनके विविध भाषाज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित पद हृष्टव्य हैं—

४२५. प्राणनाथ, रास (हस्तलिखित), अ, प्र० २४, चौ० ५; ब, प्र० २६, चौ० ५; स, प्र० २६, चौ० ६; द, प्र० ३०, चौ० १

गुजराती: ४२६

घन गधुं ते घाव्युं वली, गधो घंघकार सहू टली ।
सुखना सागर माहे गली, एने बीजो न सके कोए कनी ॥

जाटी भाषा ४२७

एक घोर अंधेरी आंखा नहीं, और ठीर नहीं बुधमन ।
विषम जल ऐसे मिने, पीउ आए मुक्त कारन ॥

खड़ीबोली ४२८

चैराट का फेर उलटा, मूल है आकास ।
डारें पमरी पाताल मे, यो कहे वेद प्रकास ॥

अरबी ४२९

अस्मा हिंद मुस्लिम, अनी कमन सिदक ।
मा कलम अनी किजबो, मा कुम्म कलमा हक ॥

फारसी ४३०

व लाल हुम्मा ऐयून, खारज बला दखल ।
वल हुम्म लेस इयान्, व ल हुम्म लेम अकल ॥

सिन्धी ४३१

रे विरोअम, मगा सो लाड करे ।
हेडो किंज का मुदमे, खिलंदडी लगा गरे ।

परिभ्रमण के माथ प्राणनाथ ने उन भाषाओं का स्वरूप परखा और समयानुसूल उसीका प्रयोग किया है । हिन्दी उर्दू का ज्ञान उनको प्रारंभ से ही रहा होगा क्योंकि उनकी गुजराती रचनाओं में भी उक्त भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है । साथ ही साथ इस बात का भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तरकालीन रचनाओं की अपेक्षा पूर्व कालीन रचनाओं में गुजराती भाषा का प्रभाव अधिक लक्षित होता है ।

इनकी भाषा का ध्वनि एवम् व्याकरण की दृष्टि से परीक्षण करने पर

४२६. वही, प्र० १, चौ० ७४

४२७. वही, प्रकाश (हिन्दी), प्र० ७, चौ० १०

४२८. वही, कलम (हिन्दी), प्र० १६, चौ० १

४२९. प्राणनाथ, कुनजमशरीफ, मर्तंध, प्र० २, चौ० २

४३०. वही, प्र० २४, चौ० ५

४३१. वही, सिन्धी, प्र० ४, चौ० १

इतना प्रवर्ण्य प्रतीक होता है कि उन्होंने जिन भाषाओं के शब्दों का उपयोग किया है उनको उसी स्वरूप में नहीं दिया, तद्भव रूप ही विशेषतः अपनाया है।

ध्वनि

महा प्राण ध्वनियों का ध्वन्य प्राणत्व यथा, मुञ्ज (मुञ्ज), पारकी (पारकी) । ममास (ममावेण), पोर (प्रहर) आदि । कहीं-कहीं "ह" का लोप किया गया है, जैसे ठंरते (ठहरते) धीर कय (कहूया) आदि ।

संज्ञा

मूल रूप "घ्रा" जोड़कर, जैसे बाना (बातें), धीरना (धीरों) तथा बहुपन के विहा रूपा में "घ्रा" "या" का प्रयोग हुआ है, जैसे हिन्दुघ्रा ।

परमर्ग—को, कं, सो आदि रूप ।

मवध—केरी, केरा, केरे आदि रूप ।

क्रियापद—भूतकाल में "घ्रा" ध्वन्यवाले रूपों के अनिर्दिष्ट "या" वाले रूप का प्रयोग किया है, जैसे बहुचान्या, जान्या आदि ।

स्थानवाचक, कहीं के लिए "का", यहीं के लिए "या" का प्रयोग किया है ।

उनकी भाषा तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों में युक्त है । लोचन, निकुंज, श्रीफल, सखर आदि तत्सम शब्द एवम् निरवि, पजर, बसन, जोति, विलोकि, जुवति जैसे तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है । कित, ग्योरा, निपट, मोकी, दोड आदि ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है । फारसी में इनाम, किस्सा आदि शब्दों का उपयोग किया है ।

प्रो० भानुप्रदल जायमवाल ने हिन्दवी के सदमं में चर्चा करते हुए ठीक ही कहा है, हिन्दवी मध्यकाल में ही ध्वन्यमानीय बोलचाल या व्यवहार की माया बन गई थी । ध्वन्य, हिन्दू-मुसलमान सब को संबोधित करने वाले निगुंण सतों ने खडीबोली का ही सहारा लिया है । उतरी भारत में हिन्दवी साहित्य परम्परा की दृष्टि से प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी प्राणनाथ तथा उनके शिष्य स्वामी लालदास का नाम ध्वन्य महत्त्वपूर्ण है ।^{४३२} खडीबोली का प्रारम्भिक स्वरूप ही हिन्दवी है । खडीबोली के इतिहास में स्वामी प्राणनाथ का नाम अवश्य ही अग्रतम होना चाहिए । आज की खडीबोली का प्रारम्भ करने का श्रेय प० लल्लू लालजी को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उनमें पूर्व प्राणनाथ ने ही खडीबोली को

बानीसाहित्य में स्थान दिया और उन्होंने ही इसका "हिन्दुस्तानी" नामकरण किया।

उनकी भाषा में सरलता और मधुरता है, लेकिन जहाँ वही उपदेश प्रधानता एवम् इस्लाम-हिन्दू धर्म तुलना की धर्चा की गई है वहाँ पर भाषा का स्वरूप भी कुछ रूखा-सा दिखाई पड़ता है। जहाँ पर तीव्र अनुभूति हुई है, वहाँ पर भाषा ने भी अपना सौंदर्य दिखाया है।

प्राणनाथ का भावपक्ष जितना गहरा और तीव्र है उतना ही कलापक्ष निबल-सा दिखाई पड़ता है। लेकिन कहीं-कहीं पर भावभूमि भी उतनी सबल नहीं बन पायी कि उस अनुभूति की अभिव्यक्ति हो सके। ब्रह्मज्ञान का विषय उन्होंने कई रचना में बार-बार कहा है और इसी कारण शुष्कता भी बार-बार दर्शन देनी है। न सिर्फ उनके विचारों का ही कई रचनाओं में पुनरावर्तन मिलता है, लेकिन कहीं-कहीं पर कई पंक्तियाँ भी वैसे ही पुनरावर्तित हुई हैं—

पतंग कहे पतंगको, कहां रह्या तूँ सोए ।

मैं देख्या है दीपक, चल देखाऊँ तोए ॥

के तो ए दीपक नहीं, या तूँ पतंग नाही ।

पतंग कहिए तिनको, जो दीपक देख भेवाए ॥

पतंग और पतंगको, जो सुघ दीपक दे ।

तो होवे हास तिन पर, कहे नाही पतंगए ॥

दीपक देख पीछा-फिरे, साबित राखे अंग ।

आए देवे सुघ और को, सो बयो कहिए पतंग ॥^{४३३}

ये पंक्तियाँ अन्य स्थान पर वैसे ही ढंग से मिलती हैं।^{४३४} इस तथ्य की पुष्टि के लिए चार-पाँच उदाहरण दिये जा सकते हैं।

साहित्यिकता की दृष्टि से उनके "किरंतन" के ही कई पद अच्छे बन पड़े हैं।

४३३. प्राणनाथ, कुलजमशरीफ, कलस (हिन्दी), प्र० ६, चौ० १७-१८-१९-२०

४३४. वही, संग्रह, प्र० ११, चौ० २०-२१-२२-२३

पंचम अध्याय

स्वामी प्राणनाथ के योगदान का मूल्यांकन

हमने स्वामी प्राणनाथ के जीवन, तत्कालीन धार्मिक-राजनीतिक-सामाजिक परिस्थिति में उनकी विचारधारा का प्रचार और प्रसारकार्य एवं उनकी बानियों का साहित्यिकता की दृष्टि में अध्ययन किया। यहां इस अध्याय में उन्हीं तथ्यों का समग्र रूप से अवलोकन करेंगे और प्राणनाथ के जीवन एवम् कृतिरत्न के सदर्भ में निष्कर्ष निकालेंगे।

भारत के धार्मिक इतिहास में प्राणनाथ की विचारधारा और उनके प्रणामी सम्प्रदाय ने अपनी विलक्षणता के कारण अलग स्थान बना लिया है। प्राणनाथ ने बचपन से ही भ्रमणकार्य शुरू किया था और उसीके फलस्वरूप विविध भाषा-भाषी प्रजा के सम्पर्क में आये, विविध धर्मस्थानों का भ्रमण और उनके दर्शन में जाना-जान किया तथा अपने मानसिक क्षितिज को विस्तृत और घरातल को उन्नत बनाने हुए विभिन्न अनुभवों को उन्होंने आत्ममात कर लिया। उनकी इस अनुभवजन्य मिश्रित विचारधारा में अपनी एक मौलिकता का माधुर्य है। उनकी समन्वयवादी निष्ठापूर्ण प्रवृत्ति ने तत्कालीन समस्याओं को मुलभूतने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और सफलता भी मिली। उनके अहिंसावादी और मानवतावादी विचारों के लिए पारिवारिक सत्कार एवम् परवरिश भी कारणवश हो सकती है। अपने धर्ममत की अभिव्यक्ति में भी वे अपने राष्ट्र और मनुष्यों को नहीं भूले हैं। बल्कि सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिकता को जीवित रखने का निष्ठापूर्ण प्रयत्न वे जीवन भर करने रहे।

स्वामी प्राणनाथ के योगदान को हम निम्नलिखित तत्त्वों पर से स्पष्ट कर सकते हैं—

- (अ) सामाजिक विचारधारा।
- (आ) धार्मिक दृष्टिबिन्दु।

(इ) राजनीतिक आदर्श ।

(ई) साहित्य एवम् भाषा की सेवा ।

हमने द्वितीय अध्याय में प्राणनाथ के सामने जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि जो परिस्थितियाँ थीं उन पर विचार किया है। यहाँ पर हम उपर्युक्त तत्त्वों को प्राणनाथ ने जिस रूप में देखा, परखा और समस्याओं को सुलझाने की क्या कोशिश की है वही विशेष रूप से देखेंगे।

(अ) सामाजिक विचारधारा

शासकों की धार्मिक संकीर्णता के कारण तत्कालीन भारतीय समाज हतोत्साही एवं उदासीन हो गया था। न सिर्फ हिन्दू मुसलमान के बीच ही वैमनस्य की दीवार खड़ी थी, लेकिन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि धर्मों के मानने वालों में आन्तरिक विष की धारा बह रही थी। इसी विपाक्त समाज को प्राणनाथ ने अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति से शुद्ध एवं प्रेमपूर्ण बनाना चाहा। उनके उदारतापूर्ण विचारों को तत्कालीन समाज ने अवश्य महत्त्वपूर्ण समझा और उनके विचारों को ग्रहण किया। अगर उनकी समन्वयवादी विचारधारा को लोगों ने उत्साह में स्वीकृत न किया होता तो संभवतः प्राणनाथ मुरत में दिल्ली तक न पहुँच पाते और आज तक प्राणनाथ एवं प्रणामी सम्प्रदाय का जो अस्तित्व है, न रहता। प्राणनाथ ने परम्परित वर्णव्यवस्था का इसीलिए विरोध किया और उसे अनावश्यक समझा की वर्णव्यवस्था ने समाज की स्वाभाविक गत्यात्मकता पर ही आक्रमण कर दिया था। सारा समाज अपने छोटे-छोटे वर्णों में कीड़े की तरह पड़ा रहे और मनुष्यजाति का पतन लाता रहे यह बात कोई भी समाज सुधारक महन नहीं कर सकता। प्राणनाथ मध्यकालीन भारतीय समाज के अग्रगण्य समाज-सुधारक नेता थे। उन्होंने वर्णव्यवस्था के कारण हिन्दू-समाज में खड़ी हुई दीवारों को तोड़ना ही मुनासिब समझा। उनकी यह प्रवृत्ति उनकी निर्गुण सन्तों के घरातल पर बिठा देनी है। वस्तुतः उनकी यह सुधारवादी प्रवृत्ति सगुणपरक भक्ति सम्प्रदायों में एक विलक्षणता प्रदान करती है। लेकिन आज उन्हीं के अनुयायियों में जाति-पाँति और बुघ्राहून की मान्यता के दर्शन अवश्य होते हैं। संभवतः वर्तमान साम्प्रदायिक स्वरूप में इन तत्त्वों ने इसीलिए प्रवेश कर लिया है कि सम्प्रदाय को विस्तृत हिन्दू-समाज से निरस्कार नहीं भोज लेना है। फिर भी प्राणनाथ के लिए यह अवश्य कहा जा सकता है कि कृष्ण के युगलस्वरूप की भक्ति में भी जाति और वर्णों के परदों को हटाना ही उन्होंने आवश्यक समझा, और अतः वे अपने समय के एक क्रान्तिकारी भक्त थे। डा० अम्बाशंकर नागर ने मध्यकालीन सन्तों के लिए जो विधान किया है वह प्राणनाथ के लिए सम्पूर्ण रूप से लागू होता है। उन्होंने कहा है, भारतीय संस्कृति की सब से

बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। दृग समन्वय सस्थापन का बहुत कुछ श्रेय मध्यकालीन सन्तों को है। इन सन्तों ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचकर, ज्ञान, भक्ति और प्रेम का असलव जगाया था और जाति तथा धर्म के भेदभाव को मिटा कर उन्होंने "एवेश्वरवाद" और विराट मानव धर्म की स्थापना की थी। ये लोग किसी एक प्रान्त के न होकर समस्त भारत के थे।^१

प्राणनाथ ने समाज के अग्रस्वरूप मनुष्य की महागता दी है और समभाव या सहस्रमिस्त्व का मूल्यवान उपदेश देकर समाज को निर्मल और गतिशील बनाने का प्रयत्न किया है। समाज में जो पारस्परिक वैरभावना घर कर चुकी थी, उसको तोड़ना उन्होंने आवश्यक समझा था। विशृंखल समाज की प्रतिक्रिया में ही उन्होंने अपने सम्प्रदाय को अधिक विकसित स्वरूप दिया। विपाक्त, पालड़ी और वैमनस्यपूर्ण भावना रखने वाले समाज की उन्होंने कटु आलोचना की है। उनका तो यह दृढ़ विश्वास था कि दया और प्रेम में ही द्वेष और वरष्कार में अधिक शक्ति है। उनके ऐसे जीवन-दर्शन में एक 'फूल की पाखुड़ी' की भी घोड़-सा कष्ट पहुँचाना अघर्म है।^२ यहाँ पर उनके प्रतिभा के आदर्श का भी स्वरूप मिल जाता है। यहाँ पर पू० गाधीजी के अहिंसा, सत्य और प्रेम के सिद्धान्त का स्मरण हो जाता है। जिस विश्ववन्धुत्व की वात पर उन्होंने जोर दिया था वैसे ही प्रवृत्ति प्राणनाथ की भी एक प्रमुख अंग बन गयी थी। प्राणनाथ भी पू० गाधीजी की तरह कुरान और पुराण को अपनी प्रार्थनामभा में—साधना कक्ष में—समान स्थान देते थे। उन्होंने मानव-मात्र एक है यही सूत्र जीवन में अनायास और उसीको आधार बनाकर वे प्रवृत्ति करते रहे। इस एकरव की भावना की पुष्टि के लिए मनीष, अहंकार त्याग, शूरवीरता, प्रेम आदि तत्त्वों को आवश्यक समझा है और स्थान-स्थान पर उन तत्त्वों को दुहराया है।

(धा) धार्मिक दृष्टिचिन्दु

व्यक्ति के अच्छे-बुरे आचार-विचार का प्रतिबिम्ब ही समाज है और उसी समाज का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध है ही। एक स्थान पर डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने कहा है, समाज की धारणा करने वाले तत्त्व धर्म है और समाज है स्व-कर्तव्य का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों का समष्टि स्वरूप। कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेचन करने वाला शास्त्र नीतिशास्त्र कहलाता है। नीतिशास्त्र धर्म का प्रधान अंग है। सामाजिक

१. डॉ० अम्बाशंकर नागर, गुजरात के हिन्दी गौरवग्रन्थ, पृ० २३

२. प्राणनाथ, कुलजमस्वरूप कलस, प्र० २३, चौ० ४

"दुःख न देऊ फूल पाखुड़ी, देखू सीतल नैन।

उपनाऊ मुख सब अगों, बुलाऊं भीठे बँन ॥"

व्यक्ति, का धर्म के इस अंग से पूर्ण परिचित होना परमावश्यक है। इस प्रकार व्यक्ति, समाज और धर्म दोनों का मिलन-बिन्दु है। यही कारण है कि जड़ धर्म का ह्रास होने लगता है तब समाज भी दूषित हो जाता है।^३ अतः समाज की विकृति की जड़ में धर्म की विकृति को ही प्राणनाथ ने देखा। धर्म तो धारण करने वालों की गुणगठित शक्ति है। प्राणनाथ का यही आदर्श विधान रहा कि धर्म अपने मही अर्थों में कभी भी परस्पर द्वेष-ईर्ष्या या शत्रुता का कारण नहीं हो सकता। फिर भी वे इतना स्पष्ट रूप में मानते थे कि समस्त मानव समुदाय के लिए किमी एक ही धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। परन्तु सभी धर्मों के आदर्शों और गिद्वान्तों में एक से ही तत्त्व पडे हुए हैं, इसी बात को केन्द्र में रखते हुए उन्होंने अपने सम्प्रदाय एवं विचारधारा का प्रसार और प्रचार किया था। डॉ० नगेन्द्र ने मतनामी, लालदासी, नारायणी, धरनीदास और प्राणनाथ के पयो-सम्प्रदायों का नामोल्लेख करने के बाद आगे कहा है कि समग्र रूप से विचार करते हुए इन पंथ-व्यवर्तकों को विशेष महत्त्व देना अनुचित होगा, क्योंकि इनमें से कोई भी मौलिक प्रतिभावान नहीं था। ...ये लोग तो दानियों के प्रचारक मात्र थे—सृष्टा नहीं। जगति और सुधार का वह दुर्दम उत्साह, अहित आत्मा की वह पुकार, जिमने १५वीं शताब्दी में सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी, इस पतन काल में संभव नहीं थी।^४ वास्तव में यही कहना उचित होगा कि सर्व धर्म-समभाव की बातों को सिद्धान्त रूप में प्राणनाथ पूर्व कबीर जैसे भक्तों एवम् भक्तों ने मान्यता दी, लेकिन व्यावहारिक स्वरूप देने का श्रेय प्राणनाथ को ही मिलता है। प्राणनाथ का सही मूल्यांकन करते हुए श्री क्षितिमोहन सेन ने यही कहा है कि प्राणनाथ द्वारा प्रसारित प्रणामी सम्प्रदाय नैतिकता की शुद्धि, महिष्णुता, कल्याण और मानवतावादी प्रेम की नींव पर खड़ा था। उनके प्रार्थना-स्थानों पर हिन्दू-मुसलमान एक साथ प्रार्थना एवं भोजन करते थे।^५ यही प्राणनाथ की मौलिक प्रतिभा का परिचयात्मक तत्त्व माना जा सकता है। प्राणनाथ मध्ययुग की उत्तरकालीन अवस्था के मही पथों में प्रमुख समन्वयवादी धार्मिक नेता

३. डॉ० गोविन्द त्रिगुणाचल, कबीर की विचारधारा, पृ० ३६८

४. डॉ० नगेन्द्र, रीतिकार्य की भूमिका, पृ० १८-१९

५. Ed. Haridas Bhattacharya, The Cultural Heritage of India, Vol. IV, p. 392.

Their religious life is founded on moral purity, compassion, service, and love of humanity. In their places of worship, both Hindus and Mohammedans pray and dine together.

थे। तत्त्वानीन भाग्य में प्रमुख रूप में प्रचलित हिन्दू मुगलमान धीर ईगार्ई धर्मों में एकता की आवश्यकता थी और प्राणनाथ ने मिद्वान्त एव व्यवहार में उमी एरता को घपनाया था। विशेषतः उन्होंने इस्लाम धीर हिन्दू-धर्म को एक ही मिद्वान्तो को रग्यन वाने धर्म के रूप में मिद्व किया है। लेकिन इम एकता को गहित करने वाले हिन्दू पड़िन धीर मुगलमान के मीरवी लोग थे। उन पंडितो एवम् मीनवी की उन्होंने मरमना की है। उन्होंने ज्ञानदीप में मगार में ध्यात्त माया रूपी ग्रन्थकार दूर करने का प्रयत्न किया धीर इम प्रकार धर्म के घन्नगंत ज्ञान का भी महत्त्व स्वोंबार किया। उन्होंने धार्मिक अथविश्वासो धीर बाह्यादयरो की प्रतिक्रिया स्वरूप तीपंत्रन, मूनिपूजा आदि का बड़ा विरोध किया है। इसी दृष्टि में उन्होंने प्रेम-नधगा भक्ति को ही भक्ति का आदर्श एव मर्यद माग बनाया है। उनके परब्रह्म अक्षरातीन कृष्ण (धीराजजी) निर्गण-मगुण में भी परे हैं। कवीर जैसे अन्व निगुंण मन्तो ने हिन्दू-मुस्लिम विरोध का नाश करने का धीर समन्वय का प्रयत्न किया था, लेकिन तुलसीदासजी की तरह प्राणनाथ ने मामजस्पृणं वातावरण को उत्पन्न करना ही अधिक उचित एव आवश्यक समझा। तत्त्वानीन धार्मिक वातावरण में उनकी इम प्रवृत्ति ने महदश में मफलता भी प्राप्त की थी।

प्राणनाथ ने न मिक विदेशी धर्मों में में नररतम्य पहण करके दिग्दगंत किया, लेकिन हिन्दू-धर्म के दा प्रमुख स्तभ शिव धीर विष्णु को लेकर चलने वाले धर्मो-मम्प्रदायो में भी एकता स्थापित की। ज्ञान, भक्ति धीर कर्म का मव में प्रथम समन्वय ध्रमद्भागवद्गीता में दृष्टा। उसमें वेद या एक्शवरवाद, ब्राह्मण ग्रन्थो का कर्मकाण्ड, उपनिषद् के ज्ञान एव भक्ति का समन्वित स्वरूप मिलता है। लेकिन इम समन्वय का किमी-न-किसी रूप में विरोध चलता रहा। भक्ति में भी प्रेमप्रधान धीर ज्ञानप्रधान भक्ति स्वरूपो में संघर्ष रहा। लेकिन प्राणनाथ ने भक्त को समन्वयवादी दार्शनिक पद्धति पर विवेचन किया।

उनकी इम समन्वयवादी धार्मिक मान्यनायो को लेकर प्रणामी मम्प्रदाय में कई विवादास्पद तत्त्वो ने भी प्रवेश कर लिया। आत्मा धीर अवनार को बार्ते विचित्र-मी लगती है और प्राणनाथ की दार्शनिकता को बिलक्षणता प्रदान करती है। प्राणनाथ ने अणन आपको निष्फलक बुद्ध अवनार, ममीहा, इमाम मेहदी अवनार घोषित किया है। आ० परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं, प्राणनाथ ने अणने को कल्कि अवनार अथवा ममार को मुधारकर एव मूत्र में बीधने वाला ममीहा बतनाया तथा इमके लिए पुराने धर्म-ग्रन्थो के प्रमाणनक उद्धृत किये।^६ डॉ० पीताम्बरदत्त

६. आ० परशुराम चतुर्वेदी, सतकाम्य, पृ० ३६३

बडध्वाल ने बताया है कि अपने को तो वे मेहदी, मसीहा और कल्कि अवतार तीनों एक साथ समझते थे।^७ डा० चतुर्वेदीजी का आधार लेकर ही डॉ० रतिभानुसिंह "नाहर" ने मध्ययुग के उत्तरार्द्ध के सन्तों की पन्थनिर्माण-प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए कहा है कि इनमें से कुछ तो इतने भागे बड़े या चेलों द्वारा बढ़ाये गये कि बिहारी, दरियादास दूसरे कबीर बन गये तथा प्राणनाथ ने स्वयं को पुराणों के कल्कि अवतारी तथा मसीहा कहना आरंभ किया।^८ अंग्रेजी विद्वानों में से प्राउज,^९ रसेल^{१०} और ग्रिस्वल्ड^{११} का आधार लेकर फकुंहर ने बताया है कि प्राणनाथ ने सभी धर्मों को अपने में समाहित बताया और उन्होंने अपने को एक ही साथ ईसाई के मसीहा, मुस्लिम के मेहदी और हिन्दू के निष्कलंक अवतार^{१२} घोषित किया था। आज के वैज्ञानिक युग में किसी एक ही व्यक्ति में सभी अवतारों का समाहित होना कभी स्वीकार नहीं किया जाएगा। लेकिन संभवतः इसीलिए वर्तमान प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी उनके निष्कलंक बुद्धावतार को ही आगे साते हैं। संभवतः गलतफहमियों से बचने का ही यह एक प्रयत्न है।

उसी प्रकार आत्मा के सदर्भ जो ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरो-सृष्टि और जीव-सृष्टि की दार्शनिकता लेकर बताया है कि उनके सभी अनुयायी ब्रह्मसृष्टि की आत्मा हैं। प्रश्न यही उत्पन्न हो सकता है कि ब्रह्मसृष्टि की आत्माएँ क्या सिर्फ भारत में ही अवतरित

७. डॉ० पीताम्बरदत्त बडध्वाल, हिन्दी काव्य में निगुण सम्प्रदाय, पृ० १३४
८. डॉ० रतिभानुसिंह "नाहर", भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० २३६
९. Grouse, Mathura, 230 FF.
१०. Russel, Tribes and Castes of the Central Provinces, London, 1916, 216 FF.
११. Griswold, Forman Christian College Magazine, July-Nov., 1905, 216 FF.
१२. Farquahar & Griswold, The Religious Quest of India, pp. 391-392.

Early in the eighteenth century Prannath taught at Panna in Bundelkhand, that all the religions of India were reconciled in his own person, since he was at once the christian Messiah, the Mohammedan Mahdi, and the Nishkalankavata, 'the stainless incarnation' of the Hindus and expressed the dogma in his Kuldjama Saheb.

हुई ? सम्भवतः इमका मुभाव यही हो सकता है कि ये आत्माएँ मारे विरक्त में अवतरित हुईं और जहाँ-जहाँ अवतरित हुईं वहाँ-वहाँ उनको जाग्रत करने का कार्य वहीं पर अवतरित महान् भक्तों एवम् मन्त्रों न किया होगा और कर्त्ते होंगे । ये ब्रह्मवासनाएँ परमधाम में किसी नाम में पुकारी जाती थी यह भी बताया जाता है, जैसे प्राणनाथ इन्द्रामनी की वामना, देवचन्द्रजी श्यामाजी की वामना, भुवुन्द-स्वामी नवरमबाई की वामना आदि-आदि । उन नामों के लिए कोई प्रमाण नहीं है और श्रद्धा के सिवाय इन तन्त्रों का स्वीकार नहीं किया जा सकता । लेकिन तत्कालीन समाज में धर्म-श्रेयसा एव एकता लाने के लिए प्राणनाथ ने उन बातों को आवश्यक समझा होगा । बल्लभसम्प्रदाय इनमें पहले "स्वरूप" की बल्यता कर ही चुका था । वहाँ श्रष्टछाप के बलि श्रष्टमत्ता है । आगे चलकर यह "स्वरूप" सिद्धान्त श्रत्यधिक समाहृत हुआ फलतः प्राणनाथ ने इसी के अनुरूप ब्रह्म "प्रियाओं की वामना" के तत्त्व को जन्म दिया ।

(इ) राजनीतिक आदर्श

प्राणनाथ अपने प्रारम्भिक जीवन में राजनीति से सम्बद्धित रहे और उन्हीं अनुभवों के फलस्वरूप उनके राजनीतिक आदर्शों को आकार मिला । राजनीतिक वैमनस्य, अनैतिक राजनीति और असमानता उत्पन्न करने वाली राजनीति के प्रति उनको निरस्कार था । तत्कालीन राजनीति में ये तीन तन्त्र थे और इसीलिए प्राणनाथ ने औरंगजेब के धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया था । इसी मदर्भ में ही उन्होंने भारत के हिन्दू राजाओं का एक मंगठन बनाने का प्रयत्न किया । उन्होंने महाराज छत्रमान को राजनीति प्रयत्नों में विजयी बनाने के लिए महान् आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की । इसी शक्ति के फलस्वरूप महाराजा छत्रमान ने हिन्दुत्व की रक्षा का सफल प्रयत्न किया ।^{१३} प्रो० मानाबदल जायसवाल कहते हैं,^{१४} भारतीय इतिहास में एन भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा, जिसे श्रीप्राणनाथ की भाँति देश के समस्त राजाओं को मंगठित करने का विराट प्रयत्न किया हो । उस

१३ प्राणनाथ, किरंतन, प्र० ५७, चौ० १६, २०

अमुर लगाए रे हिन्दुओं पर जेजिया, बाको मिले नहीं मानपान ।

जो गरीब न दे सके जेजिया, ताथ मार करे मुमलमान ॥

बात सुनी रे बुन्देने छत्रसालने, आगे आय खडा ले तलवार ।

सेवा ने लई रे मारी मिर खेचके, माश्ये किना मेनापनि मरदार ॥

१४ प्रो० मानाबदल जायसवाल, दूसरा प्रमाण, पृ० ६

गमय गिवाजी के ऐहिक जीवन की मशाल बुझ चुकी थी, किन्तु उस मशाल का प्रकाश अब भी छत्रमाल बुन्देला के मानसमंदिर में टिमटिमा रहा था और धन-जन, विहीन छत्रमाल पराक्रमी धर्म विरोधी श्रीरंगजेब की चतुरगिणी नेता का सामना कर रहा था। छत्रमाल को अपना गिप्य बनाकर प्राणनाथजी राष्ट्रीयता की इस चिनगारी को ज्योतिर्मय कर दिया। यह बिल्कुल सही है कि मध्यकालमें जन-ग्रान्दोलन का स्वरूप देनेवाला प्राणनाथ के सिवा अन्य कोई व्यक्ति नहीं निकला। संभव है कि अर्न्तिक मार्गों पर चलनेवाली राजनीतिक सत्ता को जनग्रान्दोलन से फुटाने का सर्वप्रथम सुभाव पू० गाधीजी को भी प्राणनाथ के उपदेशों से प्राप्त हुआ हो। क्योंकि प्रो० स्टीफन ने गाधीजी की माता को प्रणामी धर्म की अनुयायी के रूप में सिद्ध किया है।^{१५} स्वामी श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी मानते हैं कि पू० गाधीजी स्वामी नालदासजी के वैश्विक वंशजों में से ही हुए थे। माना जाता है कि गाधीजी की माताजी नन्हे गांधी को उस प्रणामी मंदिर में ले जाती थी और "कातणी" वाले प्रकरण का प्रभाव गाधीजी पर पड़ा था।^{१६} फिर भी यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि प्राणनाथ का प्रभाव गाधीजी पर किस सीमा तक पड़ा होगा। इतना अवश्य है कि गांधीजी के राजनीतिक आदर्श मध्ययुग में प्राणनाथ ने भी जनसमुदाय के सामने प्रस्तुत कर दिये थे। "त्रैलोक्य में रे उत्तम खण्ड भारत को" कहकर उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना का भी यत्रतत्र परिचय दे दिया है। प्राणनाथ के राष्ट्रीय आदर्श की नींव में समानता, अहिंसा, सहिष्णुता और अनुकम्पा के तत्त्व पड़े हुए थे।

(ई) साहित्य एवं भाषा का महत्त्व

हिन्दीसाहित्य के अन्य भक्तों या सन्तों की तरह प्राणनाथ ने भी अपना काव्यकौशल प्रदर्शित करने के उद्देश्य से रचनाएँ नहीं लिखी थीं। फिर भी सगुणों-पासक भक्तों की तरह उन्होंने अपने इष्टदेव के ही भुणगान नहीं गाये। व्यक्तिगत उद्गार और तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल उपदेशों के ही रूप में उनकी वाणी

१५. Prof. Stephen, Hoy, East Asian Research Centres, Harward University Cambridge, U.S.A. letter, Dec. 31, 1965.

Gandhi's mother come from a Pranami family in the village of Dantrana (Gujarat). Now it seems to me important to understand Gandhi's mother's religions ideas if we are to understand Gandhi's.

१६. श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी (संशोधक एवं संपादक), स्वामी लालदासकृत "छोटी बिरत" (हस्तलिखित), पृ० ३

प्रभृतिन हूँ थी, इसी दृष्टि में इसका मूल्य भी है। वास्तव में वे माहित्यिक नहीं थे और न उनकी रचनाओं को माहित्यिक मानदंड के अनुसार परम्पना ही उचित है। सा० परशुराम चतुर्वेदी ने मध्यकाल में इन मन्त्रों एवं भक्तों के मंदिरों में उचित ही कहा है कि उन्होंने वाच्यनिर्माण के समय अपना ध्यान वाच्यहीनता की ओर नहीं दिया था और न उममें कभी वे पूर्ण रूप में मावधान ही रहे। उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति एवं मिथ्याओं के प्रचाराय ही कुछ रचनाएँ प्रचलित गीतियों के अनुसार प्रस्तुत कर दीं। ... ये रचनाएँ मनोरञ्जन के लिए नहीं की गई थी और न इनका उद्देश्य कभी किसी प्रकार के धर्म या धर्म का उत्थान ही रहा। इनके रचयिताओं ने अपने सामने "कविता कविता के लिए" का भी आदर्श नहीं रखा और न अपनी उन्मुक्त कल्पना के प्रभाव में विविध भावनाओं की सृष्टि कर, एक अपना मनोराज्य स्थापित करने की कभी चेष्टा की। उनकी व्यक्तित्व "स्वानुभूति" में विश्वजनीन अनुभूति की व्यापकता थी और उनके आदर्शवाद की म्यिति ठेठ व्यवहार में कहीं बाहर न थी।^{१३} प्राणनाथ का भी बानीरचना के पीछे गुप्तउद्देश्य था अपने उपदेश को जनसाधारण तक पहुँचना और जाति-पाँति, धार्मिक मतभेद और गरीब-अमीर के बीच खड़ी दीवारों को जमीनदीप्त करना। फिर भी, उनके ग्रन्थों में वे "राम", "पद्मस्तु" और "किरणल" की कई चौसठियाँ एवं पद अनुभूति, इत्यादि और अभिव्यक्ति की दृष्टि में माहित्यिक कही जा सकती हैं। "प्रकाश", "कलम", "परिक्रमा", "विलवन", "मागर", "क्यामवतामा" आदि ग्रन्थों के लिए सा० मीताराम चतुर्वेदी का^{१४} मध्ययुग की इन कानियों के मंदिरों में कहा गया विधान ठीक लागू होता है कि वह मूलतः एकांगी ठेठ दार्शनिक पाश्चात्यिक शब्दों से लदी हुई अस्पष्ट उक्तियों का समूह है।

हिन्दी माहित्य के इतिहास में प्राणनाथ का नाम उनके भाषाकीय योगदान के लिए अक्षय्य ही बना रहेगा। हिन्दी या हिन्दुस्तानी का महत्त्वपूर्ण स्थान देकर मध्यकाल के भक्तों एवं मन्त्रों में उन्होंने अपना नाम प्रमुख स्थान पर रख दिया है।^{१५} वे सस्कृत, सिन्धी, गुजराती, जाटी, पारसी-पूरबी आदि भाषाएँ जानते थे, लेकिन

१७. सा० परशुराम चतुर्वेदी, मन्त्रकाव्य, पृ० ४८

१८. रा०प्र०म० वर्धा द्वारा संपादित "रत्न जयन्ती ग्रन्थ" अन्तर्गत सा० मीताराम चतुर्वेदी का लेख "हिन्दी माहित्य का इतिहास" पृ० २५२

१९. प्राणनाथ, मन्त्र, प्र० १, चौ० १५

बिना हिमाचे बोनिया, मिलें सकत जहान ।

सबको मुगम जानकें, कहंगी हिन्दुस्तान ॥

हिन्दवी-हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा को ही उन्होंने उच्चिन् माध्यम के रूप में समझा। खड़ीबोली गद्य के प्रारंभिक स्वरूप के सर्वप्रथम दर्शन उन्हीं की रचनाओं में होते हैं। यह उनकी मौलिक देन है और अतः आधुनिक हिन्दी गद्य के पिता के रूप में प्राणनाथ का नाम प्रागे रहना चाहिए। खड़ीबोली गद्य में पं० लल्लु लालजीकृत "प्रेमसागर" की रचना में लगभग दोढ़ मौ साल पूर्व औरमजेव के समय में स्वामी प्राणनाथ ने ही लिखना शुरू किया गया था। इतना ही नहीं, हिंदी साहित्यकारों में सबसे पहले प्राणनाथजी ने ही इस भाषा को "हिन्दुस्तानी" भाषा कहा हो, वैसे उल्लेख भी मिलते हैं। हिन्दी भाषा को गौरवपूर्ण स्थान देने का श्रेय प्राणनाथ को मिलता है, लेकिन हिन्दी साहित्य में इतिहासकारों ने इस तथ्य का उल्लेख करने का श्रेय अभी तक प्राप्त नहीं किया।

प्राणनाथ को किसी भूमि विशेष, किसी जाति से या किसी सीमित धार्मिक वर्ग से सम्बद्ध मान लेने से उनके आदर्शों एवम् जीवनदर्शन का सकीर्ण मूल्यांकन होगा। वस्तुतः वे विश्व की विभिन्न संस्कृति में एवं धर्मों के समन्वय के मूल प्रवर्तक थे ही, साथ-ही-साथ क्रान्तिकारी समाजसुधारक, आदर्शवादी राजनीतिज्ञ एवं भाषा के अग्रगण्य उत्क्रान्ता थे। मध्यकालीन भारत के इतिहास में स्वामी प्राणनाथ का नाम धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। अर्थात्, भारतीय संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी देन का स्वीकार करना पड़ेगा।

परिशिष्ट-१

प्राणामी सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र जामनगर (नवतनपुरी), सूरत (मंगलपुरी) और पन्ना (पद्मावतीपुरी) है। प्रथम दो केन्द्रों पर गद्दी परम्परा चलती है। प्राणनाथ जी के गुरु देवचन्द्रजी के पश्चात् जामनगर की गृहस्थ गद्दी तथा सूरत की गद्दी फकीरी गद्दी कहलाती है। गृहस्थ गद्दी के अधिकारी गुरु देवचन्द्रजी के पुत्र बिहारीलाल थे जब कि सूरत की फकीरी-गद्दी की परम्परा स्वामी प्राणनाथ से शुरू हुई। लेकिन आज जामनगर स्थित सम्प्रदाय के तीन मन्दिर—खिजड़ा मन्दिर, चालका मन्दिर और श्रीराज मन्दिर-की गद्दी परम्परा अपने-अपने ढंग से भिन्न समझी जा रही है। अतः तीनों परम्परा को यहाँ स्थान दिया गया है।

खिजड़ा मन्दिर (जामनगर) की गद्दी परम्परा

गुरु देवचन्द्रजी

आचार्य श्री १०८ केसरीबाईजी महात्मा
 |
 आचार्य श्री १८० तेजस्वी महात्मा
 |
 आचार्य श्री १०८ ब्रह्मचारीजी महाराज
 |
 आचार्य श्री १०८ ध्यानदासजी महाराज
 |
 आचार्य श्री १०८ मोहनदासजी महाराज
 |
 आचार्य श्री १०८ फकीरचन्दजी महाराज
 |
 आचार्य श्री १०८ अमरदासजी महाराज
 |

आचार्य श्री १०८ जीवरामदासजी महाराज

आचार्य श्री १०९ बिहारीदासजी महाराज

आचार्य श्री १०८ मुखलालदासजी महाराज

आचार्य श्री १०८ धनीदासजी महाराज

(वर्तमान आचार्य का नाम श्री धर्मदासजी महाराज है।)

उक्त गद्दी परम्परा लिजड़ा मन्दिर में लिखितस्वरूप में मिलती है। लेकिन रामजी भोज नामक साम्प्रदायिक भक्त ने (श्री प्रणामी धर्म प्रकाशना पुस्तक ने उत्तर अरजीभाग १, २, पृ० ४७) लिजड़ा मन्दिर की गद्दी परम्परा इस प्रकार दी है—

सतगुरु श्री देवचन्द्रजी

मूलशिष्य गागजीभाई तथा तथा गादीवारस गुरु बिहारीजी

दत्तकपुत्र परमानन्दजी

उसके शिष्य केसरवाई तथा तेजसीवाव

ब्रह्मचारीजी श्री ध्यानदासजी

मोहनदासजी

फकीरचन्द्रजी

शमरदासजी

जीवरामदास जी

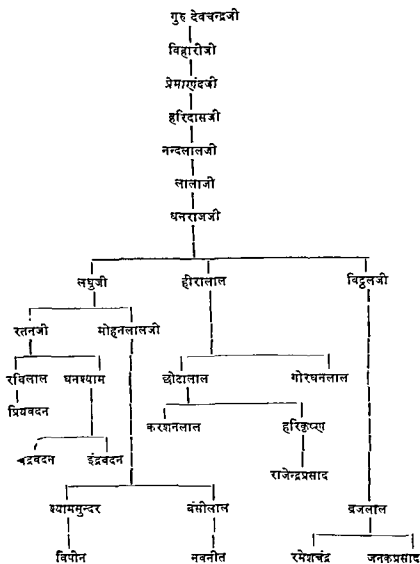
बिहारीदासजी

मुखलालदासजी

परमेश्वरदासजी

नेपान बाबाजी श्री दयाल दासजी के शिष्य बाबाजी
श्री धनीदासजी

घाकला मन्दिर की गद्दी-परम्परा



श्री कृष्णप्रियाचार्यजी के मतानुसार विहारीजी के बाद उनके पुत्र नागजीभाई और नागजीभाई के बाद प्रेमाणंदजी गद्दी पर रहे ।

श्री राजमन्दिर की गद्दी परम्परा

गुरु श्री देवचन्द जी

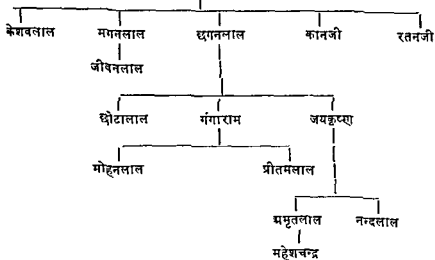
बिहारीजी

बालचन्द्रजी

नारणजी

करसनजी

सुन्दरलाल



भंगलपुरी (सुरत) फकीरी गद्दी परम्परा

स्वामी प्राणनाथ

बाबा श्यामदासजी

गोपालदासजी-महाराज

मोहनदासजी महाराज

पीताम्बरदासजी महाराज

रघोदामजी महाराज

गोपालदामजी महाराज

मिहिरदामजी महाराज

लेकिन मणिशरर कर्मनजी स्वै ने (महागुरुगणना सनों-महनों धने महामाषो, पृ० ७२-७३) मूरत की गरी वरम्परा बताया है वह इस प्रकार है—

स्वामी प्राणनाथ

गावर्धनजी भट्ट (गोवर्धनाचार्य)

मामजी मेहता (गामलाचार्य)

धमरेकराचार्य

मूलचन्द्राचार्य

जटागंकराचार्य

कुतनाचार्य (नानाजी)

श्यामदामजी

गोपालदामजी

मोहनदामजी

पीताम्बरदामजी

रंगीनाचार्य

गोपालदामजी

श्री कृष्णाप्रिदाचार्यजी

मिहिरदामजी

उनके कथानुसार अतिम आचार्य की नियुक्ति अल्पसमय के लिए हुई थी, क्योंकि तुरन्त ही सन् १९५६ में श्री कृष्णाचार्यजी उस स्थान पर पुनः आ गये। वस्तुतः वर्तमान गद्दी अधिरति श्री मंगलदामजी महाराज हैं।

परिशिष्ट-२

साम्प्रदायिक मंदिर "श्री कृष्ण प्रणाम मंदिर" के नाम से ही, विशेषतः अभिहित होते हैं। इन मंदिरों की यथाप्राप्त सूची इस प्रकार है--

सौराष्ट्र-गुजरात

जामनगर, हर्षदपुर, चेलाचामा, जोड़िया, धाका, चित्रावड़, राजकोट, मेमणी, उपलेटा, तरणसवा, पोरबंदर, जूनागढ़, दाश्राणा, आबलीवा, मैयारी, अवाणिया, मेदरडा, गीरहडमतिवा, साजीभावदर, चाडोघा, भ्रमृतपुर, हीपावडली, भ्रमृतबेल, वण्णाकवाडा, दीवबंदर, मार्गरोल, बंगला, भंजार, सिनोगरा, भद्रेश्वर, भेजपुर, मुद्रा, मूरत, खंभात, लाखावाड, खेडा, वरशोला, लीगड़ा, पीपलता, कणजरी, चीखोदरा, टीम्बा, गोधरा, हरकुडी, सुदलपुर, जंसापुर, सीहोरा, बेचरी, कालोल, अजुपुर, माघरोनी, अजरपुरा, अरेरा, महेमदावाद (माकवा), बड्याल, जाणिया, सिहूज, दद्रणा, वासणा, महेमदावाद, सोजीत्रा, बालिगटा, भिलोडा, मालावाडा, सोडपुर, अघारी आमली, मित्राल, रास, अलिद्रा, ओह, नार, धमंज, बडोदरा, हेरफतेपुर, (सोनामण), सीमरडा, माधेल, जसपुरा, कुंडिशल, बांगोदरा, गणदेवी, भरोडा, बमसाड, नानूदमण, बंबई, सोनगीर - धुलिया।

राजस्थान

जयपुर, हूंगरपुर (तलोद स्टेशन), पदमपुर, सूरतगढ, चूनावड, श्रीकर्णपुर, मेडता, नागौर, उदयपुर, कुडावड, ईसरवास, अजमेर।

मध्यप्रदेश

पन्ना, रानीपुर, मुकरवा, महेवा, भाडेर, सतना, ग्राम दुवगमाफुटी, गूडा, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम।

पंजाब

भ्रमृतसर, भ्रम्वाला, फाजिलका, करनाल, फिरजपुर, जलधर।

उत्तरप्रदेश

मन्नाहिन्दपुर, शेरपुर, महारनपुर, हरद्वार, हृषीकेश, जालीन, मुगल, मिर्जापुर, मान्हेपुर, वृंदावन, मथुरा, पागरा, जालपुर, इमौली, गिगरोली, मनिहाबाद, उम्राव, कचनपुर, बजमौरा, मोनाई, बेचीगञ्ज, शोषवापुर, बाराबकी, (मुंजीगञ्ज), बनारस, संभाई, भैया, इनाहाबाद, धात्रमगञ्ज, ककरामी, रजनवली, विगुनपुरा, जगदीशपुर, धुरिया (गोरखपुर) ।

बिहार

पटना, गोशुला, गगापुर, तरही, धरघापुर, मूर्शी, परमाही, गोशुला, बजडा, धमुई ।

बंगाल

बानिमुग (दाज्रिलिग), पुबगाबस्ती, पोम्बरेबु ग, मिश्रनामकमान, निरपुरकमान, पोगकमान, पुलु गदु ग बस्ती, खैरवारी बस्ती ।

घामाम

रागमाली बस्ती, घुलावारी चार मादन, कमालिया, मुहनाछूटी, घगडावारी ।

बिस्ली

दिस्ली

नेपाल

घाठराई ईवा, छपर फलेक, काठमाडू, हुबमे, भागामोली, बानीमाटी, घापाग्राम, निगाऊं, जिंलि, बन्धूम, काशीपोधरा, जनकपुर, घोम्ना दूगा, घाहानि, ग्राम मल्लिम, मक्कीम, पाकीन बस्ती ।

परिशिष्ट-३

प्रणामी सम्प्रदाय की साहित्यनिधि को समृद्ध करने वाले सन्त भक्त कवि एवं विद्वानों की इस सूची में उनके जीवनकाल के अनुसार क्रम रखने का प्रयत्न किया गया है।

नाम	रचनाएँ
(१) गुरु देवचन्द्रजी	मूल तारतम्य
(२) स्वामी प्राणनाथ	<p>रास, प्रकाश(गु०), कलश(गु०), पट्शतु(गु०), प्रकाश (हिन्दी), कलश (हिन्दी), सनन्व(हिन्दी), किरन्तन (गुजराती, हिन्दी), खुलासा (हिन्दी), खिलवत (हिन्दी), सिनगार (हिन्दी), सिन्धी (सिन्धी), सागर(हिन्दी), मारफतसागर(हिन्दी), क्यामतनामा - छोटा और बड़ा (हिन्दी)।</p> <p>शेखमीरांजी का सवाद, कुरान के सवाल-जवाब तीसरा क्यामतनामा, कुरान की पत्रिकाएं, सुन्दर साथ के नाम पत्रिकाएं, निगमभाग्यम तन्त्र संहिता, जाभिलमारफन, छत्रसाल प्रबोध, बीर गिरोह की हकीकत, किताब बानी मा; नज्जुल भरवाह, मध्दारखंजुनवर्दन, तरकुदुनिया आदि।</p>
(३) तुलजाराम भट्ट (करुणावती सखी)	तारतम्य सागर, पच्चीस पक्ष।
(४) स्वामी लालदाम	<p>बीतक, बड़ी वृत्त (पद्य), छोटी वृत्त (गद्य), मोहम्मदमाहब की बीतक अर्थात् मांजजा, बड़ा</p>

मनोहा (गद्य), श्रीमद्भागवतकी टीका-अनुवाद, स्फुट छन्द ।

(५) स्वामी नवरग
(मुकुन्दशाम)

राम, रमनागर, लीलाप्रकाश, विद्विनाम, छोटा और बड़ा, महाकाव्य की त्रिती, मुदर नागर, बीतक, कृतमिद्विनागर, पद्महस्तावरी प्रकरण, तारनम्य की प्रणतिना, भागवत की टिप्पण तारनम्य (गद्य), तत्रमार, गुरु गिण्य संव.द, पद्मनाम्न, गीतामार, बृहदारण्यमार, छादोप्योपनिषदमार, योगारम, मिद्वान्त मुक्तावली, प्रेममञ्जरी, गोज के कीर्तन, गेजत नामा, जरडी, काम जकडी, धवन घागमवाणी के, चाद्रायण प्रथ, कीर्तन, अष्टपदी, गुजराती केदारो, श्रीकृष्ण जन्म कीर्तन, श्री राधा जन्म कीर्तन, वमत घमार दोल के कीर्तन, श्रीधाम की वृत्त (गद्य), श्रीधाम की वृत्त (पद्य), रामतमूलरी, पावमके हिंदोना, प्रकीर्ण कीर्तन, प्रभावनी (मन्वृत), प्रणावनी (हिन्दी) ।

(६) छत्रमान महाकाव्य.

श्रीकृष्ण कीर्तन, श्री रामयजुर्विद्विना, हनुमद्विषय, अक्षर अतन्वद के पत्र और तिनकी उमर, नीतिमञ्जरी, राजविनोद, छत्रविनाम, महाकाव्य छत्रमानकी काव्य, स्फुट पद ।

(७) अदरामदान

बीतक, स्फुट कविता ।

(८) अक्षरभूषण

शृङ्गारमुक्तावली (बीतक), परागान्दीपक (गद्य) श्री प्राणनाथकीका जीवन (म), स्फुट पद ।

(९) पञ्चमसिद्ध

कविता-अर्थदे ।

(१०) जीवनमन्नाता

पञ्च-दोहे ।

(११) अक्षर

बीतक, स्फुट पद ।

- (१२) बरुणी हसराम
सनेहसागर, श्री कृष्णरूकी पाती, श्री जुगल-
स्वरूप परिवर्ह पत्रिका, फागतरगिनी, चुरहा-
रिनलीला, मिहिरराज चरित्र, विरहविलास,
रामचन्द्रिका, बारहमासा
- (१३) महात्मा प्रेमदाम
बानी ।
- (१४) स्नेहसखी
बीतक, स्फुट कवित्त ।
- (१५) एहदी मुकुन्द
बानी ।
- (१६) लल्लूजी महाराज (लालसखी)
वर्तमान दीपक, ईश्वर बोधसागर, जीव-
चेतावनी, आत्मबोध, श्रुतिविवाह ।
- (१७) वेणुवती
पद ।
- (१८) लेखराज पजाबी
पचम दोहे ।
- (१९) भट्टाचार्यजी
निगमार्थप्रदीप, विद्वद्मनी ।
- (२०) राजा धर्जुनसिंह
बानी ।
- (२१) मुकुन्द
साखियाँ, पद, अथज्ञानतिलक, अथजागनी-
लीला, परमधामवर्णन बोधसागर ।
- (२२) लाडवाई महाराज
बानी ।
- (२३) जुगलदासजी महाराज
परमधाम की बड़ी वृत्ति, मनमोहन रसानन्द
सागर, छोटी और बड़ी मन्त्री, तारतम्य की
प्रणालिका, वैराटनिष्पण, महाकारण ।
- (२४) गोविन्दराय
बानी ।
- (२५) रणछोड़दास महाराज
गुरुगीता पद ।
- (२६) चेतनदास
साखियाँ, पद ।
- (२७) साहेबदासजी
बानी । बख्तबली देवका चरित्र, कव्यामत-
नामा की टीका ।
- (२८) चंद्रसखी
पद ।
- (२९) गोपालदास
पद ।
- (३०) मोहनदास
कीर्तनबानी ।
- (३१) मेहरदासजी
स्फुट पद ।
- (३२) ज्ञानदासजी
कीर्तन, पद ।
- (३३) दर्शनदाम भगत
बानी ।
- (३४) महन्त गोपालदास
प्रदेशी-समाचार, कविताबली, शब्दाबली ।

- (३५) गुलाबदाम पदकीर्तन, ब्रजनीला, रामनीला, शौर चैतावती के पद, बागमयी ।
- (३६) मेषामती पद ।
- (३७) मुरलीदामत्री शक्ति, पद ।
- (३८) मुखनानदाम बानी ।
- (३९) हरिकेश श्रजनीला ।
- (४०) हृदयगाह हृदयप्रकाश ।
- (४१) रमंगत्रा बानी ।
- (४२) हिम्दनदाम पद ।
- (४३) शिवनाथ रमरञ्जत ।
- (४४) कृष्णदाम मक्षिण प्रणामिका ।
- (४५) शीतलदाम बानी ।
- (४६) आनन्दमागर ब्रजविज्ञान भास्वर ।
- (४७) छवीनदाम स्फुटपद ।
- (४८) कृष्णदत्त मूर्ति विराटपटदर्शन ।
- (४९) मदानन्द गोम्बामो पद्मावती दर्शन ।
- (५०) दीनकृष्ण भिमारी निजानन्दमागर, स्फुट पद ।
- (५१) प० मिथ्रीनान शास्त्री मुक्तिरीठ, पद ।
- (५२) रामरतनदाम "रत्न" प्रेमरत्नावली ।
- (५३) कन्हैयादान भट्ट दीन मेवक श्री राजनाम स्तोत्र, स्फुट पद ।
- (५४) कविगमत्रीमाई प्रणामीगौता, श्री प्राणनाथत्रीनु' जीवनचरित्र ।
प्रणामी
- (५५) पं० प्यारेनाम भजन रत्नावली, समस्तमुखमर्दनम् ।
- (५६) मोहनमुकुन्द प्रणामी स्फुटपद, पट्टश्रुतु (म०), श्री प्राणनाथ वचनामृत (सकलन-श्री० मानाबदन जायम-बाल के महयोग में) ।
- (५७) श्यामदाम पद ।
- (५८) चर्मदाम महाराज स्फुट पद प्रणामीमन मिद्वान, विविधनिषेध, सेवापूजा आदि ।
- (५९) राजबन्ध प्रेमपाठ (संकलन) ।

- (६०) रणछोडदास वीरजी परमधाम प्रणालिका, सृष्टिविज्ञान वर्णन, पातालधी परमधाम (गुजराती) ।
- (६१) श्रीकृष्णप्रियाचार्यजी स्फुट पद, श्रीमतारतम्यानी प्रणालिका (गुजराती), लालदासजी की बीतक (सं०), नवरंगकृत बीतक (सं०), करुणावतीकृत बीतक (सं०) ।
- (६२) भंगलदासजी महाराज बीतक दर्शन, आत्मसोपान, आत्मपरिचय ।
- (६३) कृष्णदत्त शास्त्री निजानन्द चरितामृत, सम्प्रदाय मिढांत, प्राणनाथवाणी (सं०) आदि ।
- (६४) मुरलीदास घामी धर्म अभियान, मुक्तिमार्ग ।
- (६५) राजदास घामी स्फुट पद ।
- (६६) विमलदेवी मेहता वाणीपरिचय, छत्रमाल ।
- (६७) टीकानद स्फुट पद ।
- (६८) चिमनलाल मेघा निष्कलंक बुद्ध ।

प्रमुख सहायक ग्रन्थ सूची

(अ) संस्कृत

- | | |
|------------------------|-----------------------------|
| १. ऐतरीय उपनिषद् | २. ऋग्वेद |
| ३. कुलाणंबतन्त्र | ४. केनोपनिषद् शंकरभाष्य |
| ५. छान्दोग्य उपनिषद् | ६. तन्त्रमूत्र |
| ७. तैत्तिरीय उपनिषद् | ८. दशश्लोकी |
| ९. देवी भागवत | १०. धम्मपद |
| ११. न्यायशास्त्र | १२. नारद-भक्तिमूत्र |
| १३. निगमार्थप्रदीप | १४. बादरायण वेदान्तमूत्र |
| १५. ब्रह्मवैवर्तपुराण | १६. ब्रह्ममूत्र-शांकर भाष्य |
| १७. बृहदारण्यक उपनिषद् | १८. भक्ति-रामामृत-मिन्धु |
| १९. भक्तिरसायण | २०. भविष्यपुराण |
| २१. महेश्वरी तन्त्र | २२. मूण्डक शांकराभाष्य |
| २३. लकावतरमूत्र | २४. विवेक चूडामणि |
| २५. श्वेताश्वतरोपनिषद् | २६. शाण्डिल्य भक्ति-मूत्र |
| २७. श्री भाष्य | २८. श्रीमद्भगवद्गीता |
| २९. श्रीमद्भागवत | ३०. साहित्य दर्पण |
| ३१. सुबोधिनी । | |

(आ) हिन्दी

- | | |
|-------------------------|-------------------------|
| १. अरब और भारत के संबंध | अनु० रामचन्द्र वर्मा |
| २. अलकुरान | सेल |
| ३. अशोक के फूल | आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी |
| ४. आईने अकबरी | अबुल फजल |

- | | | |
|-----|---------------------------------|---------------------------|
| ५. | धर्मसंस्कृति के मूलधार | डी० बलदेव उपाध्याय |
| ६. | इंजील (धर्मग्रन्थ) | — |
| ७. | इस्लाम धर्म की रूपरेखा | राहुल सांकृत्यायन |
| ८. | उत्तरी भारतकी सन्तपरम्परा | धा० परशुराम चतुर्वेदी - |
| ९. | श्रीरगजेव के उपाख्यान | जदुनाथ सरकार |
| १०. | कबीर | आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी |
| ११. | कबीर ग्रन्थावली | डा० श्यामसुन्दरदास |
| १२. | कबीर की विचारधारा | डा० गोविन्द त्रिगुणायत |
| १३. | कला और साहित्य | डा० गोवर्द्धन शर्मा |
| १४. | कविवर विहारी लाल और उनका युग | डा० रणधीर, सिन्हा |
| १५. | काव्य और सगीत का परस्परिक संबंध | डा० उमा मिश्र |
| १६. | काव्य के रूप | डा० गुलाबराय |
| १७. | काव्यशास्त्र | डा० भगीरथ मिश्र |
| १८. | कुरान (धर्मग्रन्थ) | — |
| १९. | कुरान और गीता | प० मुन्दर लाल |
| २०. | गुजरात के हिन्दो गौरवग्रन्थ | डा० भ्रमशाशकर नागर |
| २१. | गौरखवाणी | डा० पीताम्बरदत्त बड़ध्वान |
| २२. | चिन्तामणि | प० रामचन्द्र शुक्ल |
| २३. | छत्रपति शिवाजीचरित्र | वामन सीताराम मुकादम |
| २४. | छत्रप्रकाश | लालकवि |
| २५. | छत्रसाल ग्रन्थावली | स० विपोगी हरि |
| २६. | जैनधर्म | कैलाशचन्द्र शास्त्री |
| २७. | तौरेत (धर्मग्रन्थ) | — |
| २८. | दर्शन-दिग्दर्शन | राहुल सांकृत्यायन |
| २९. | दूमरा प्रणाम | प्रो० माताबदल जायसवाल |
| ३०. | धर्म और दर्शन | डा० बलदेव उपाध्याय |
| ३१. | धर्म और समाज | डा० राधाकृष्णन् |
| ३२. | नाथसम्प्रदाय | आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी |
| ३३. | निर्गुणकाव्यदर्शन | मिदिनाथ तिवारी |

१ साहित्य : सांस्कृतिक

भूमि

प्रापत्र संग्रह

पद्माराज्य का इतिहास

पाहुड दोहा

१८. प्राण सगली भा० १-२

३६ बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास

४०. बुन्देल वैभव

४१. बौद्धदर्शन

४२. भक्तिआंदोलन का अध्ययन

४३. भागवत सम्प्रदाय

४४. भारतवर्ष का इतिहास

४५. भारतीयदर्शन

४६. भारतीयदर्शन शास्त्र का
इतिहास

४७. भारतीय संस्कृति

४८. भारतीय संस्कृति और उमका
इतिहास

४९. भारतीय साहित्य की
सांस्कृतिक रेखाएँ

५०. मध्यकालीन धर्मसाधना

५१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ

५२. मध्यप्रदेश का इतिहास

५३. महाकवि भूपण

५४. महाराजा छत्रसाल बुन्देला

५५. मिश्रबन्धुविमोद भा० १-२

५६. मुगलकालीन भारत

५७. रहस्यवाद और हिन्दी कविता

५८. राजस्थान का इतिहास

५९. राधावल्लभ सम्प्रदाय . सिद्धान्त
और साहित्य

डा० मोती सिंह

महाराजा का संग्रहालय, पन्ना

बानू नगेन्द्रनाथ

मुनिरामसिंह

नानक

गोरिलाल तिवारी

गोरीशकर द्विवेदी

डा० बलदेव उपाध्याय

डा० रतिभानुसिंह "नाहर"

डा० बलदेव उपाध्याय

ईश्वरीप्रसाद

डा० बलदेव उपाध्याय

डा० देवराज

शिवदत्त जानी

मत्यकेतु विद्यालकार

प्रा० परशुराम चतुर्वेदी

प्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

ड० सावित्री सिन्हा

डा० हीरालाल

भगीरथप्रसाद दीक्षित

डा० भगवानदास गुप्त

मिश्रबन्धु

शागीर्वादीलाल श्रीवास्तव

डा० गुलाबराय और

डा० शम्भुनाथ पाडे

कर्नल टांड

डा० विजयेन्द्र स्नातक

- | | | |
|-----|--|------------------------------------|
| ६०. | राष्ट्रभाषा प्रचार समिति | रजत वयन्ती ग्रन्थ (वर्धा प्रकाशन) |
| ६१. | रासलीला—एक अध्ययन | सेठगोविन्ददास, अग्रवाल |
| ६२. | विश्वधर्मदर्शन | श्री सावलिया विहारीलाल वर्मा |
| ६३. | वैष्णवधर्म | भा० परशुराम चतुर्वेदी |
| ६४. | सन्तकाव्य | भा० परशुराम चतुर्वेदी |
| ६५. | सन्त-वैष्णवकाव्य पर तान्त्रिक प्रभाव | डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय |
| ६६. | सन्त साहित्य | डा० सुदर्शनसिंह मजोठिया |
| ६७. | संस्कृतके चार अध्याय | रामधारीसिंह "दिनकर" |
| ६८. | सिद्धांत और अध्ययन | डा० गुलाबराय |
| ६९. | सूर सागर | सूरदास |
| ७०. | सिद्ध साहित्य | डा० धर्मवीर भारती |
| ७१. | सूफीमत : साधना और साहित्य | रामपूजन तिवारी |
| ७२. | हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १ | स० श्यामसुन्दरदास, बी० ए० |
| ७३. | हिन्दी-काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति | डा० श्यामसुन्दर शुक्ल |
| ७४. | हिन्दीकाव्य में निर्गुण सम्प्रदाय | डा० पीताम्बर दत्त बड़वाल |
| ७५. | हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि | डा० गोविन्द त्रिगुणायत |
| ७६. | हिन्दी कृष्णकाव्य पर पुराणों का प्रभाव | डा० शशि अग्रवाल |
| ७७. | हिन्दी कृष्णकाव्य में माधुर्योपासना | डा० श्यामनारायण पाडेय |
| ७८. | हिन्दी गद्य का विकास | डा० प्रतापनारायण "गीतम" |
| ७९. | हिन्दी वीरकाव्य | डा० टीकमसिंह तोमर |
| ८०. | हिन्दी सन्त साहित्य | डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित |
| ८१. | हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) | सं० धीरेन्द्रवर्मा, अज्ञेश्वरवर्मा |
| ८२. | हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | डा० रामकुमार वर्मा |

श साहित्य : सांस्कृतिक

भूमि

पद्मनाभ संग्रह
पद्मराज्य का इतिहास

पाहुण दोहा

१८. प्राण सगती भा० ?

३६. बुन्देलखण्ड का स

४०. बुन्देल वंभव

४१. बौद्धदर्शन

४२. भक्ति

४३. भा

४४.

४५.

४६.

उत्कल की कहानी (संक्षिप्त)

गुजराती

गुजराती संस्कृति दर्शन

गुजराती धर्वाचीन इतिहास
गुजराती प्रोए हिन्दी साहित्यमा
प्रपेती फाली

४. गुजराती साहित्य-परिपद-२० मुं
सम्मेलन-ग्रहेवाल

५. गुजराती हाथप्रतीनी सकलित यादि

६. चरोतर सर्वसंग्रह भाग १-२

७. जामतमाची

८. धर्मवर्णन

९. धर्मानु मिलन

१०. नव-दशमी गुजराती साहित्य
परिपदनो ग्रहेवाल

प्राचीन कवियो तथा तेमनी
वृत्तिप्रो

प्राचीन काव्य मजरी

पद्मनाभ : संप्रदाय

डा० रामचन्द्र

जार्ज विपरी

डा० नगे

जान मंडल प्रकाश

डा० मरोजनी कुलश

डा० राधाकृष्णन्

प्रो० रामदास भोज

प० जवाहरलाल नेहरू

प्रो० कुंजविहारी महेता, प्रो०
रमेश शुक्ल

गोविन्दलाल हा० देसाई

डा० ह्याभाई देरासरी

साहित्य परिपद, ग्रहमदावाद

प० के० का० शास्त्री

स० पुष्पेत्तम शाह,

चन्द्रकान्त शाह

गुणवन्तराय आचार्य

आ० प्रानन्दशकर ध्रुव

डा० राधाकृष्णन्

साहित्य परिपद, ग्रहमदावाद

रमणिक श्रीपतराय देसाई

जेठालाल त्रिवेदी

१३.	प्राचीन काव्यसुधा भा० १-२-३	सं० छद्मनलाल रावण
१४.	बृहद्काव्यदीहन	सं० इच्छाराम मूर्धराम देसाई
१५.	भारतनी धार्मिक इतिहास	शाह देबजी लल्लुमाई
१६.	भारतमां अंग्रेजी राज्य	पं० सुंदरलाल
१७.	मध्ययुगनी साधनाधारा	क्षितिमोहन मेन
१८.	महागुजरातना संतो, महन्तो घने महारमाप्रो	मणिशंकर करसनजी दवे
१९.	महोत्सव ग्रन्थ	फार्वंम साहित्यसभा, बंबई
२०.	वैष्णव धर्मनो सक्षिप्त इतिहास	दुर्गाशकर शास्त्री
२१.	श्री प्रणामी धर्मप्रकाश	पोपटभाई शाम्त्री
२२.	श्रीमद्भगवत् गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र	दासगंगाधर तिलक
२३.	श्री यदुवंशप्रकाश	कवि भावदानजी
२४.	सौराष्ट्रनो इतिहास	शम्भुप्रसाद देसाई
२५.	हिन्दीना विकासमां गुजरातीघोनो फालो	जनकशंकर दवे
२६.	हिन्दी साहित्यनो इतिहास	किमनमिह चावडा
२७.	हिन्दुवेद धर्म	भा० धानन्दशंकर ध्रुव

(ई) अंग्रेजी

1.	A Brief History of Indian people	Sir W. W. Hunter
2.	A Dictionary of Islam	Zuhirruddia Ahmed
3.	A History of Indian Literature	Winternitz
4.	A History of Indian Philosophy	Das Gupta
5.	Alberun India	Suchan
6.	An Advance History of India (1950)	R. C. Majumdar

History of the
Literature of Hindustan

H. G. Keene

A Study in the Theory

Dr. Bhagvandas

of the Avatars

Aurangzeb

Lane Poole

10. Bombay Gazetteer Vol 1

11. Bombay Gazetteer, Cutch, Vol. 5

12. Bombay Gazetteer—Kathiawar, Vol. 8

13. Bombay Gazetteer Vol 9, Part II

14. Castes and Class in
India

G. S Ghurye

15. Cultural History of
Gujarat

M R Majumdar

16. From Akbar to Aurangzeb

W. H Moreland

17. Gorakhnath and Kanphata
Yogies

Briggs

18. Gujarat and its Literature

Dr. K. M. Munshi

19. History of Aurangzeb,
Vol. III

Jadunath Sarkar

20. History of Buddhist
Thought

Edward J Thomas

21. History of India (1000 to
1707)

A L Shrivastava

22. History of India, Vol. I

Elliot

23. Indian Philosophy, Vol II

Dr. Radhakrishnan

24. India's Past

Macdonell

25. India—What can it
teach us ?

Max Muller

26. India—Since 1526

V. D Mahajan

27. India History—A Review

Baijnath Puri

- | | |
|--|----------------------|
| 28. Influence of Islam | Dr. Tarachand |
| 29. Kabir and Kabir Panth | H. G Westcott |
| 30. Leviticus | — |
| 31. Lord Prannath | P. Krishnamurty Iyer |
| 32. Mathura District Memoir | F S Grows |
| 33. Medieval Jainism | Dr. Bhasker Anand |
| 34. Medieval Mysticism of India | K M. Sen |
| 35. Mughal Administration | Jadunath Sarkar |
| 36. Mughal Government and Administration | Shri Ram Sharma |
| 37. Mughal Painting | Percy Brown |
| 38. Mulbar, Vol. I | Logan |
| 39. Muslim Rule in India | Dr. Ishwari Prasad |
| 40. Mysticism—Old and New | A W. Hopkinson |
| 41. New Testament | — |
| 42. Our oriental Heritage | Will Durant |
| 43. Obscure Religious Cults | S. K. Gupta |
| 44. Panna Gazetteer | — |
| 45. Religions of India | Barthe |
| 46. Religious Sects in India among Hindus | D. A. Pai |
| 47. Religious Systems of the World | Edward C. Brown |
| 48. Shakti and Shakta | John woodreoffe |
| 49. Sikh Religion, Vol. 1-2 | M. A. Macauliff |
| 50. Six system of Indian Philosophy | Max Muller |
| 51. Studies in Islamic | R. A. Nicholson |
| 52. The Cambridge History of India, Vol. I | Ed. Richard Burn |

प्राणनाथ : सम्प्रदाय एवम् माहित्य

Cambridge History of
India, Vol. III

Ed Richard Eurn

The Cambridge History of
India, Vol. IV

Ed. Richard Burn

55. The Comparative Study
of Religions

A. G. Widgery

56. The Cultural Heritage
of India

Ed. Haridas Bhattacharya

57. The Emperor Akbar Etc.

Frederick Augustus

58. The History and Culture
of the Indian People,
Vol. 5

Bharatiya Vidya Bhavan,
Bombay

59. The Khash-Al-Mahjub

A. L. Hujwiri

60. The Medieval India

Dr. J. E. Carpainter

61. The Mystics of Islam

Nicholson

62. The Oxford History of
India

V. Smith

63. The Preaching of Islam

T. W. Arnold

64. The Religions of India

A. P. Karmarkar

65. The Religions Quest of
India

J. N. Farquhar

H. D. Griswold

66. The Shaktas

Payne

67. The Story of the Cultural
Empire of India

P. Thomas

68. Tribes and Castes of the
Central Provinces, Vol I

R. V. Russel

69. Vaishnava faith and
Movement

Shushilkumar De

70. Vaishnavism, Shaivism
and other minor Cults

Dr. Bhandarkar

71. Why Religions die ?

Pratt

(उ) हस्तलिखित ग्रन्थ

- | | |
|------------------------------------|--|
| १. कुलजमस्वरूप | स्वामी प्राणनाथ |
| २. प्राणनाथ की होशवाणी के ग्रन्थ | सं० श्री कृष्ण प्रियाचार्यजी
महाराज |
| ३. स्वामी लालदासकृत वीतक | सशोक श्री कृष्णप्रियाचार्यजी
महाराज । |
| ४. स्वामी लालदास की "छोटी
बिरत" | सं० श्री कृष्णप्रियाचार्य जी
महाराज |

(झ) पत्र-पत्रिकाएं

हिन्दी

१. कल्याण-सन्त अंक, भक्ति अंक, उपदेशांक, तीर्थीक, सन्तवाणी अंक
२. गंगा-पुरातत्वाक
३. धर्मयुग, ५ सितम्बर, १९६५
४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१५, व० ६३, अं० २, मार्च,
१९६५, अंक १
५. श्री सर्वेश्वर-वृन्दावन अंक
६. सप्तसिन्धु, अगस्त, १९६४
७. सम्मेलन पत्रिका, मा० ४१, अं० १
८. साहित्य सन्देश, सन्त अंक
९. हिन्दी अनुशीलन, व० १०, अं० ४-५
१०. हिन्दुस्तानी (त्रैमासिकी), अप्रैल, १९३२

गुजराती

१. अखंड आनन्द, जुलाई, १९५६
२. श्री प्रणामी धर्म पत्रिका, उपदेशांक, भजनांक, मुकुन्दवाणी अंक, रस
सागर अंक, नौदूनतुरी महात्म्य अंक ।

प्राणनाथ : सम्प्रदाय एवम् साहित्य

३. श्री प्राणनाथ मन्देश, रामाव, प्रणामी साहित्य ग्रंथ, जागृति ग्रंथ, पद्मावतीपुरी महात्म्य ग्रंथ ।

ग्रंथेजी

Journal of Royal Asiatic Society of Bengal

(ए) अप्रकाशित शोध प्रबन्ध—

(१) गुजरात की हिन्दी सेवा डा० अम्बाशंकर नागर ।

(२) हिन्दी साहित्यको गुजरात के सन्त कवियों की देन डा० रामकुमार गुप्त ।

